्रव्यः स्त्रीहरिः॥

श्राद्धपितृमीमांसा

् जिसको

"वेदसंज्ञाविचार" और "आधु-निक महिंपें की पोल" नामक पुस्तकों के रचयिता

(सिन्ध) करांची सनातनधर्म मण्डलके संरक्षक पण्डित ग्रीकुल चन्द्र श्रम्मां ने निर्माण किया

Printed by B.D.S. at the Brahm Press Fiawah- city (विकास) प्रवसकार विक संवत् १९६९ (= अ०.स)-

१०००) ई० सन् १८१२ (डा० ए०

श्राद्धपितृमीमांसा

जिसको

्रेस्ट्रे

त शीवीरभानु शम्मात्मज, करांची "च-नातन धर्म मण्डलके,, चरहाक

पं गोकुल चन्द्र शम्मां ने मुति (वेद), स्मृति-मीतसूत्र पुराण गादि भर्म शाख एवं त्रीरामायग-महाभारतादि भर्म इतिहासीं के प्रवल प्रमाण ग्रीर सहुश्कियोंचे

श्रलंकत करके सर्च श्रास्तिकजनों के विविधसं-देह निवारकार्थ रचा ॥ स्नीर

श्रीमान् छत्रिय कुलदिवाकर धनातन धर्मे प्रचारोत्साही (लुहाचा वग्र तिलक)ठट्टादेशी-य एक उदारिकसच्यक्ति ने सर्व वेदमतानुया-इयों के उपकारार्थ खपाकर मसिद्व किया ॥

प्रवत्तवार विक्रम सं० १८६८ हिपालवर्ष १००० वें० सन् १८९२ सलग १८ श्राहु कर्म में योग्य (श्रिपिकारी) छीर श्रयोग्य (श्रनिधकारी) ब्राष्ट्रमणों का निर्णय छीर श्राहु भोका तथा कर्ता की श्राहु दिन में श्रवश्य ग्रास्त्रोक्त नियम से रहने की विधि॥ प्य १९ किल्युगर्ने समयानुकूल श्राहुदि कर्मकैयोग्य

सालयुगम समयानुकूल आहाद कमक्याय्य स्रापत्र आस्मर्थों का अत्युक्तम निर्णय । ८२ ८९ समयानुकूल स्रापत्र आस्मर्थ के न मि-काने में, आपत्ति काल में तथा तमाम दरिद्रता यानी कंगालयने की हालत में भी गीक आहु करने की अत्यन्त आ-सम्प्रम अध्याय में ॥ १ भिय आर्य्य समाजी महायगों से आहु

विषयक ३० तीस प्रश्नों का सभ्यता पूर्वक सप्रमास युक्तियुक्त शीघ्र २ उत्तर निस्तृते के लिये प्रार्थना। १०२

नम्रतया सूचना !

मेरे क्रिय सभ्यगलों को नखता से सूबित किया जाता है कि मेरी जन्म भूमिसिन्धु देश होने के कारण मेरा हिंदी भाषा लिखने का ऐसा सरल अभ्यास नहीं है इस लिये क दाचित कहीं हिन्दी लिखने में अक्षर-सब्द-या भाषा शैली

११५

की गलती मालून हो जाय तो लवा करके शमा करें श्रीर हम वृत्ति से इस पुस्तक में सेतन्त्र रूप दूध को ही ग्रहण करें भवदीय लवाभिलायी—गीकुलवन्द्र ॥ यह पुस्तक सनातनधर्मेमएडल करांची की सहायतार्थ-)।

यह पुस्तक सनातनधमनरडल कराचा का सहायताय") पांच पैसा धर्मार्थ लेकर विना मूल्य दिया जाता है॥



त्रत्पुरुपाय विद्महे 'त्रकृतुग्रहाय घीमहि, तन्नी दन्तिः प्रचीद्गात् ॥ कृ० गजु० आरुपक प्र० १० अनु० ५ ॥ स्रीगजीयायनमः । स्रीविद्रीतृरायनमः ॥ स्रीविद्रानास्थायनमः ॥

॥ भूमिका ॥

मिय पाठक वृन्द ! ध्यान में रहे कि इस ह-मारे मनातनधर्म के विरोधी वितर्दावादी दुरा-ग्रही अशास्त्रीय सम्प्रदाय के जन पूर्वकाल से चले श्राते हैं और अपनी माया रूपी बंचना शक्ति से उक्त धर्म के प्रबंधों को अपत्य मानकर अनेक प्र-कारं के उपद्रवीं से झाझानत [पीड़ित] करते र-हते हैं परन्तु उन पद्मपातियों के विधातों से यह मनातन धर्म ऋद्यावधि सनविच्छन्न अग्निदम्ध सु-वर्ण की न्यांई अपनी कीर्ति रूप निर्मल कान्ति मे प्रकाशवान् ही रहा, प्रत्युत वेही द्वे पी निर्मूल हुए। सीर समय २ के अनुसार अनेक मत तथा पंच जो श्रुति स्मृति विरुद्ध प्रचरित हुये वे भी घोर रजनी में खद्योत (खुब् खुबीरे) के तुल्य अपना चम-त्कार चमकाय झणिक ख्रंधकारके गाय ही लय हो

गये। अब इस वर्तमान काल में आधुनिक नविध-िमत प्**वक जन समाजी माई** जिन्हों की बुद्धि में विपरीत भावका खानेश हो रहा है वे सनातनधर्म निवंध ग्रंथ कृत्य रीतियों की केवल कल्पित मान-कर अपनी प्रमत्त उक्ति युक्ति कपोश करपना की सत्य मान रहे हैं, खीर शास्त्र विरोधी जनों के मि-य्या प्रलाप क्रुष्ट निवंधों को सार्चक मानकर प्रत्यय कर बैठे हैं, प्रत्युत उन्हीं अघटित घटनाः प्रंपञ्च निबन्धों को वार २ मुद्रायन्त्रों द्वारा प्रवर्तन कर रहे हैं तथा यत्र निबद्ध रिशों ने देश दिया वा नि-इत्तर किया उन पंक्तियों की छोड़ंकर[ी] स्वकल्पित उक्ति युक्ति स्वापित कर रहे हैं। महा घोक हैं? कि इसी सनातन धर्मावलिवंदी के वंश में उत्पन्न होकर प्रथम अपने ही चनातर्न धर्म रूपी वन की व्यर्थ वितंडा वान्जाल फुठार में छैदन कर रहे हैं? सीर पूर्व ग्रंथ कर्ता चिपिगण तथा निज पूर्वज आं-चार्यों को ग्रल्पन्न मानकर अपने ही विशिष्ट वृद्धीं का उपहान कर रहे हैं। वद्यपि अनेक वार मत्येक मनातनधर्म सभागीं से ये वितंडावादीं निरुत्तर हों चुके हैं तथापि-"जानत हैं बूभत नहीं लानत ऐसी जिन्द। तुलवी इच गंगारको हुता मोतिवा विंद" इत्यादि केवल हठ मात्र स्वित होकर अनिभन्न मा-धारण जन समूह को सन्नार्ग से च्युत करने की

कोशिश कर रहे हैं को अब इन्होंके अस्विर जुनर्क

(3) ह्म वाग्जील को शुति स्मृति स्रादि धर्म शास्त्रींके प्रवल प्रमास प्रीर प्रकाटन युक्ति युक्त इस "ग्रा-द्ध पितृमीमांमा" नाम पुस्तक रूप वजू से निर्मूल

क्षेद्रन करने के लिये श्रीमान् सचिय कुल भूपण स-द्धमी प्रचारोत्साही उदार चित्त सेठ जी पते निज प्रेम पूरित प्रवंध करने में कोटिशः धन्यवाद देकर १ * गुप्त नाम में चन्मान पत्र अर्पच किया जाताहै। स्त्मानपत्रम् ॥

सुटुर्ममार्गं परिपोपविधावतन्द्रः । ठहु। ब्रजाऽधिपति किश्चत् क्षत्रिवीरः ॥ सत् श्राहु मण्डन मकार यदाज्ञ्यादः।

सच्छास्त्रसिद्धनयसंहतसर्ववादः ॥१॥ अर्थात-प्रेष्ठ धर्म मार्ग के पालन विधिमें आ-

लस्य रहित "ठहा" नाम ब्रजके अधिपति खिंक्कुल में बीर किसी एक पुरुष ने पूर्ण प्रेम से, सम्पूर्ण कु-तर्की के निवारण करने वाले ग्रेष्ट ग्रास्त्रों से विद्व किये गये बुक्तियुक्त इस "श्राह्-पितृ-मीमांबा" नाम पुस्तक के रचनार्च (सर्वीपकार होने में) ला-

चा की पाश सी- श्वास क्षेत्रय सीर चेठ जी ने ऐसे परमार्थ कर छ। क्षम दान में अथना नाम प्रसिद्ध (प्रगट) न कराने में पूर्ण

उदारता दिखलाई है, आर्थात् "गुप्तदान महापुराण का डी अनुमृत्या किया है। इन लिये बेठ जी के कहे अनुवार नाम प्रगट नहीं किया गया है।

दुस्तर्कमानव पराकृतशास्त्रसिद्धश्राद्वप्रयोग सम नुष्टितसिद्धिसाधुम्। संदर्भमेतदखिलंरचयामिनूनं ठठ्ठाव्रजाधिपतिक्षत्रिवरेणयुक्तः ॥२॥

शास्त्र विरुद्ध खोटे तर्क करने वाले मनुष्यों से हूर किये गये जो वेदादि ग्रेष्ठ शास्त्र सिद्ध "श्राद्ध कर्म प्रयोग" उन के अनुष्ठान को पुनः चिद्ध

करने वाले इस संदर्भ अर्थात् व्याख्यान रूप लघ् यन्य को ठठठा नाम बजके । अधिपति श्रेष्ठ सविय की आज्ञा से निश्चय पूर्वक रचता हूं * ॥२॥ सो यह-

"ठठ्ठाव्रजस्थितसुधर्म समास्यंसम्य-विप्रेणवीरभानवात्मज तद्विलेखि ॥ श्राह्वीयकर्मणि कुतर्किकृतानुयोग-स्तस्योत्तरभवतु आस्तिकवर्यतुष्ट्यै" ॥३॥

ठठठा नाम ब्रजमें स्थित ,सनातन धर्म सभाके संरक्षक सभ्य श्रीवर पं० वीरभानु शर्मात्मज श्री-स्मण करके लिखा गया (ब्राह्म कर्ममें सुतर्कि लोगों * यदापि मेरे प्रिय सिंधी श्वाताओं की शुगनता से स-

गफने के कारण यह पुस्तक मैंने सिंधी भाषा में ही रचा या विषकी सूचना मेरे बनाये "आधुनिक महर्पिकी पोल और "येद संज्ञा विचार" इन दोनों ट्रैक्टों से पिछारी में छपाई गई घी परन्तु यन्त्रालय वालों से सिंधी भाषा की भाषा शै-सी ठीक पुढ़ न छाप सकते के कारण पुनः ग्रह हिन्ही में ही

होना ठीक धमफ कर दिन्दी में छपाया गया है इस लिये मेरे सिंधी भाई मुक्ते चना करें।।

में किये गये मिण्या कुतकों का) सत्य समाधान रूप उत्तर श्रास्तिक जनों के प्रसन्नतार्थ होय ॥ ३ ॥ हे श्रीमान् ! श्राप सनातनधर्म एसक के कर कमलों में श्रीनंदनन्दन के प्रसाद रूप, तथा श्राशी-र्वाद की कुसुमाञ्जली रूप यह ''श्राद्ध पितृ मीगांसा' नामक ग्रन्थ श्रापित है। जैसा है श्राप का है लीजिये ॥ श्रानिएस्तु ! आरोजनस्तु !! आयुव्यनस्त !!!

तदीय सार्वदिक गुभचिन्तक गोकुलचन्द्र।



ม 🧙 ม

उत्तिष्ठतजाग्रत प्राप्यवरान्निवोधत ॥ नहिसत्यात्परोधर्मी नाऽनृतात्पातकंपरम्॥

सत्यमेव जयतिनाऽनृतम् ॥

"एकं विवेकं नुमः"

॥ प्रार्थना ॥

जीइम् नमेः श्रीराम्बसदा शिवाय ॥ जीइम् सहनाबीबतुसहनी युनक्तुसहवीर्थकरबाबहै। तेजस्विनावधीतमस्तु माविद्विपाबहै ॥ १॥

ॐ स्रुतिनिर्गाद्दतधर्माकः स्मृतिगतधर्मार णोद्यःशस्वत् । पौराणिकधर्मोढः पाखण्डध्या न्तनाशनीजयत् ॥२॥

शुक्कांब्रह्मविचारसारपरमामाद्यांजगद्वव्या-पिनीम् । वीणापुरुतकचारिणीमभवदांजाड्याः ऽन्धकोरापहास् ॥ हस्तेरफाटिकमालिकां विद्-धतींपद्वमासने संस्थिताम् । वस्देतांपरमेश्वरी-

दोहा धन बीवन उड जांबने, जैसे उड़त कपूर। मन मृत्य गोविन्द भज क्यों चाटे जगधा।

म्भगवतीं वृद्धिप्रदांशारदाम् ॥ ३॥

(c) सभयो ! आज में आप महोदयों के सन्मुख शास्त्रोक्त क्राद्ध कर्म पर विचार करने के निमित्त उपस्थित हुआ हूं। आप इस बातको उत्तमता से जानते हो कि मैं न कोई ऐसा व्याख्यान दाता हूं फ़ीर न महामहीपाध्याय हूं तथान कदापि इस कार्य को पूर्णतया करने में समर्थ हूं, परन्तु आप धर्म वीरों के उत्साह और [परब्रह्म सञ्चिदानन्द कंद श्रीकृष्णचन्द्र जी की सहायतासे साधारण शास्तिक जनों के सदेह निवृत्त्यर्थ धर्मरक्षक कतिपय क्षत्रिय-वरों की आजाको शिरोधार्य करके, अपना ही क-र्तव्य समभ कर प्रश्न-उत्तर रूप में विविध गहन सं-

देहोंके निर्मल करने वाले इस "त्राद्ध पितृ मीमांसा" नाम ग्रंथ को ग्रीसद्गुर निखिल शास्त्र निष्णात [ग्रीबालराम जी] (उदासीन) एवं विद्यावाच-स्पति विद्वद्वर पं० [थी भीमसेन धर्मा जी] धास्त्री विद्यावारिधि विद्वद्वर पण्डित [श्री ज्वालामसा-

द जी] मिग्र तथा कूर्मचिल भूषण अपिकुल सं-स्यापक वाग्मिवर पंडित [श्री दुर्गादत्त पन्त जी] मादि महामहोपदेशकों की पूर्ण कृपाचे एवं उन्हों के युक्ति युक्त विद्धान्तानुसार अलंकृत करके आप धर्म रक्षकों के फर कमलों में प्रेम से खर्पण किया

जाता है आया है कि हर्ष पूर्वक इस रत्नकी आदि से जन्त तक ज़बश्य देखकर (पढ़कर) सद्वर्म पूर्ण लाभ लेकर दीन की कृत कृत्य करेंगे। प्रार्थी-गोकुछचन्द्र शर्मा ।

11 350 11

नमोऽन्तर्यामिणे अथ श्राद्धपितृमीमांसा ।

प्रथमोऽध्यायः ।

"धर्मे शिक्षासमानानां प्रसासं परमं श्रुति." सनुव ॥ प्रश्नकर्ता समाजी महाशय और

समाजी-ग्री परिडत जी महाराज ! द्यापाले मेरे इस संदेह का निवारण करी कि "ब्राह्म" क्या है ? अर्थात् ग्राह्ध किस-कर्मका नाम है और इस का रहस्य क्या है ?

उत्तरदाता सनातनी पण्डित

मनातनी-महाशय जी ! आप यदि सनातन एवं वेदोक्त ग्राह्म समझने की सञ्ची श्रमिलापा क-रते हो तो मैं आप को प्रवल प्रमाण एव अकाटण

युक्तियों से श्रेष्ठ शास्त्रोक्त श्राद्ध का भावार्थ और उनका रहस्य भी सुनाना चाहता हूं। जिसको सु-नकर् और पूर्णतया समक्षकर तथा अपने अन्य मित्र समाजी भाइयों को भी समफाकर इस ग्राह्म कर्म [वितृयद्य] का घास्त्रानुकूल ग्रद्धा से अनु-ष्ठान करके सद्धर्भ एवं नील का पूर्ण २ लाभ लेकर

दुर्लभ इस मनुष्य देह की साफल्य करें, यही मेरी दूढ़ आया है। अर्थतन्मनु:--(श्राहुमिति शब्दो बाच-को यम्य तत्कर्म श्राद्वशब्दम् इति-मदनपारि जातः) श्राह्म शब्दं कमे प्रोत्राच प्रजातिः श्रे यसार्थं तत्र पितरो देवता ब्राह्मणस्त्वाहवनीया-र्थं मासि मासि कार्यमपरपक्षस्याऽपरोह्णः श्रेयान्। इत्यादि ज्ञापस्तम्बीय मनु सम्मत वचनों से मृत पितरों के निमित्त पितृ देवों के पूजनार्थ होम, पिराडदान ज्ञाद बाह्मण भीजन रूप जो सत्कर्म, यही घास्त्रोक्त बाह्म घन्दका मुख्य भावार्थ है। तात्वयं यह कि प्रजाक करवाणार्थ वेदार्थ ज्ञाता श्री महर्षि मनुमहाराजने एक ऐसे ग्रुभ कर्मका उ-पदेश किया है कि जिसका नाम ''ब्राह्म" वा ''पि-तृयज्ञ" है। सो जिसे देवयज्ञ में इन्द्रादि देवताओं

का पूजन सत्कार होता है और आहवनीय अग्नि उन के तृष्ट्यर्थ होन का आधार है-तेंगे इस पितृ यद्म में पितर देवों का पूजन सत्कार और इन्होंके तृष्ट्यर्थ होन का आधार अग्नि के जगह ब्राह्मणों का मुख है। यह कर्म महीने २ करना चाहिये और इस कर्म के अनुष्ठान में कृष्णपष्ठ का अपराह्न (म-ध्यान्ह) काल अत्यन्त श्रेष्ठ है। तथा—"अपर पह्ने

भ्यान्ह) काल अत्यन्त श्रेष्ठ है। तथा- "अपर पत्ते श्राद्धं कुर्वीत" दित कातीयश्राद्धमूचे। कातीय श्राद्धं सूचमें कहा है कि कृष्णपत्त में श्राद्धं करे। तथा श्रातप्य श्राद्धण में लिखा है कि जिस दिन न पूर्व में और न पश्चिम में चन्द्रमा दीखे उसी दिन पि॰ तरों के निमित्त पिण्डदान करे। एवं—

"अमावास्यायां यदहश्चन्द्रमसं न पश्यन्ति तदहः पिण्डपित्यज्ञं कुरुते"॥

आपस्तम्बीय श्रीत सूत्र तथा कात्यायन श्रीत सूत्र १।१।१---प्रथम प्रश्न, तृ० परल ७ क्० ॥

"अपराह्मी पिगडपित्यज्ञश्चन्द्राऽदर्शनेऽमा-वास्याम्"। अर्थात्-दो महरों के वाद जिस दिन चन्द्रमा

देखने में न खावे, उस ख्रमावास्या में पिएड पितृ यज्ञ करे। मयोजन यह कि विवाह ख़ौर यज्ञोप-वीतादि के तुल्य एक खास कर्म का नाम "श्राद्ध" वा पितृयस है। इसी ब्राद्ध में जो जो कृत्य जिस

२ प्रकार करना चाहिये और इस ग्राद्ध के जितने .प्रवान्तर भेद हैं वे सब ज़ुति स्मृति जीत गृह्मसूच फ़्रीर इतिहास पुराणादि में ख़ित प्राचीन समय से विस्तार पूर्वक लिखे हुए हैं जिन्हों के अनुसार अ-मादि काल से पद्धतियां भी चली खाती हैं। जिस कृत्य में अद्युपर्यन्त किसी भी आस्तिक को कदापि

मंदेह महीं होता कि श्राद्ध किसको कहते हैं ? परन्तु श्रव अनुमान ३० वर्षों से किन्हीं श्रासुरी सम्प्रदायों के मन्दरों ने स्वधर्म मर्माउनिभन्न स्वयं भी धर्म से च्यत स्त्रीर सन्य सास्तिक साधारण जन समृह की भी कलिकालके प्रभाव से अधीगति में पहुंचाने के लिये प्रत्यक्ष नेवीमें धूलफॉकते हुए केवल धींगा धींगी से यह प्रकट किया है कि जीवित माता पिता की सेवा करने का नाम ब्राह्म है। परन्तु इसके लिये लेख प्रमाख वा प्रवल युक्ति इन्हों के पास कोई नहीं। सो खब यह कटता भी जाता है। सारांग यह है कि

जैसे विवाह यद्योगवीतादि एक २ विशेष विधियहि-त कर्म के नाम हैं वैसे ही श्राह्म-भी एक कर्म का नाम है-श्रीर जो (श्रद्धपा क्रियते तच्छाहम्), श्रद्धासे किया जाय वह श्राद्ध हैं " ऐसा अर्थ करके समाजी

लोंग ब्राद्ध को यौगिक मानते हैं वे लोग यह तो

बतार्षे कि वे अश्रद्धां अपने कीन र काम करते हैं? विद समाजीत्मव व्याख्यानादि सभी काम श्रद्धा से करते हैं तो तुम्हारे सभी कामों का नाम श्राद्ध हो गया फिर यह क्यों कहते हो कि, जीवित माता पिता की सेवा का नाम श्राद्ध है"। क्या मद्यामां खाने पीने वाले आर्थ्य समाजियों का मांच मद्य खाना पीना आदि काम तुम्हारे मत में श्राद्ध नहीं है ! क्या उन कामों को वे अश्रद्धा से करते हैं ! तथा यदि कोई आठ समाजी महाश्रय किसी, समय

मारव्ध कर्मानुसार रोग ग्रसित हो जाय तो फिर जय वह महाग्रय अपने रोग के गान्त्यर्थ द्वा औ-पथ) या नान्य कोई उपाय करें तो क्या वो अथ-द्धा से करेगा ? क्या अपने श्ररीर के आरोग्यतार्थ उपाय करने में उसको यद्धा मेम न होगा ? अर्घात् यह रोगी समाजी अयश्य ही ब्रद्धा से अपने श्ररीर ग्रद्धा प्रेम से किये हुये उस उपाय को भी "श्राद्ध"

कहना पड़ेगा। क्योंकि उसने ग्रद्धा में उपाय किया एवं आ० समाजी अपने शरीर पोपणार्थ जो भोज-न करते हैं- मो वह क्या अग्रद्धा में करते हैं। तथा निद्रा (नींद) करना पायखाने में जाना छीर शास्त्र नियमानुशार चेन्तान उत्पत्ति के लिये स्व-स्त्रीचे मंभीग करना इत्यादि सब कुछ वे श्रद्धा ंश्रीर पुर्ण चाहना से करते हैं-तो फिर इन उपरोक्त मब कर्मी का नाम ब्राह्म हुआ! फिर "ब्रह्मचा क्रियते तच्छाद्वम्" इस पत्तिका स्रक्षरार्थं करके चरंत ए-नातनी मनुष्यों की क्यों नाहक भ्रमाते हो । श्रीर "जीवित माता पिना की सेवा" यह अर्थ उपरोक्त संस्कृत वावय में से किन सक्तरों का है और कहां मे निकालते हो ! यदि कही कि हम अनुमान से यह अर्थ निकालते हैं तो अन्य कर्म जो जपर दि-खलाये गये, (उन्हों को भी श्रद्धा से होने के का-रण ब्राह्म कहना) ऐसा अर्थ आप लोगों के वि-शाल वृद्धि में नहीं समा सक्ता ? अर्थात् अनुमानसे जींसा यह अर्थ कि श्रद्धा से जीवित माता पिताकी सेवा का नाम श्राह्म वैसा शृह्मा से उपरोक्त अन्य कर्मी को करने का भी नाम भाद्ध ही सकता है। फिर यह क्यों वेद गास्त्र विरुद्ध अर्थ करके ठगीने

सरल आस्तिकों को पन्मार्ग से गिराने के लिये

पितादि की सेवा का ही नाम गुद्ध है। इसके लिये

ग्रापके पास कोई वेदादि शास्त्रों का प्रमाण है कि जिससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाय कि जीवित माता पितादि की सेवा को ही ग्राह्म कहना और न कदापि मृतकों के निमित्त दिया जाय उसकी। यदि कोई ऐसा (मृतकों के निमित्त पिएडदान के निषेध रूप) वेदशास्त्रों में से प्रमाण ज्ञाप जिद्दि-यों के पात हो तो कृपाकरके शीप्र स्पष्ट (जाहिर) करके अपना मुख उज्बल करी, अयवा ऐसा साबि-त करदेने के लिये यदि कटिबद्ध न होगे तो क्या सनातनी धर्मात्मा जन यह नहीं समर्भेंगे कि-इन न्ना॰ समाजियों का वेदोक्त धर्म ग्रीर जीविनों का गाद्ध भक्तना मिच्या हल्ला ख्रीर ख्रास्तिक संप्रदाय को धोखा देना मात्र ही है! परन्तु शास्त्रोक्त शुद्ध कर्म जिस किसी को भी देखना हो तो वह पार-स्कर गृह्यसुच आखलायन गुीत सूच, तथा परिधि-पृ कातीय गुद्ध सूत्र खाखलायन गृह्यसूत्र में एवं शांखायन श्रीत, ज्ञापस्तम्ब श्रीत इत्यादि श्रन्थोंमें दे-खे तो स्पष्ट चात हो जायगा कि "ब्राह्स" किसको कहते हैं और उनका रहस्य क्या है "श्राद्व" कोई श्रमिद्ध (खिपा हुसा) कर्म नहीं है जिसके लिये ममाण देने की जावश्यकता पड़े, तथापि वेद विक द्ध मतावलम्बी जिट्टी मनुष्यों के मद श्रहंकार रूप

(84) श्रंधकार को सत्शास्त्र रूपी श्रखरड सर्घ्य के प्रखर तेज से निवारण करने के लिये दिग्दर्शन मात्र इस प्रथम अध्याय में और विस्तार पूर्वक द्वितीर्य अ-ध्याय में यथायीग्य समाधान किया जायगा कि श्राद्ध ग्रब्द्का शास्त्रों में कैश अर्थ दिखाया गया है और उस का रहस्य क्या है ॥ यथा महर्षि मरीचि मुनिजन स्पष्ट करते हैं कि-मेतं पित्रंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत् प्रियमात्मनः। श्रद्धया दीयते यत्र तच्छुद्धं परिकीर्तितम् ॥ सर्थ-सात्विक भोजन जो स्रपने को प्रियहोय वह प्रेतयोनि में गये उस मृतक के निमित्त यथा नाम उच्चारण करके श्रद्धारे जो कुछ दिया जाय उसकी ही श्राद्ध कहते हैं वा उसी कृत्य का ही नाम श्राद्ध है। तथा महर्षि पुलस्त्य मुनिजनभी स्पष्ट कहते हैं कि संस्कृतंव्यंजनाद्यंच पयोद्धिवृतान्वितम्। श्रद्वयादीयतैयस्मात्तेन श्राद्वनिगदाते ॥ देशेकालेचपात्रेच श्रद्वया विधिनाचयत् । पित्नुदिश्यविप्रेभ्यो दत्तंत्राहुमुदाहृतम् ॥ भावार्थ-हुध दही और घी से पकाया हुआ अन आदि, मद्धा और ग्रास्त्रं विधि पूर्वक देश कालं

द्याकालचपात्रच श्रद्धया विचनाचपत्।
पितृनुद्दिश्यविमेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम् ॥
भावार्य-दूध दही और पीचे पकाया हुआ सन्न
श्रादि, श्रद्धा और श्रास्त्र विधि पूर्वक देश काल
एवं भुपात्र बाह्यवीं का ठीक २ विचार करके पितरीं
के निमित्त श्राद्ध के योग्य ब्राह्यवीं को जो कुछ दिया
जाय उसको ही श्राद्ध कहा गया है॥ तथा श्री योगी
यास्त्रवल्वय मुनिजी ने साचाराध्याय में भी-

वसुरुद्गाऽदितिसुनाः पितरःश्राहदेवताः । े प्रीणयन्तिमनुष्याणां पितृन्श्रीहेनतपिनाः २६०॥

आयुःप्रजांधनंबिद्यां स्वर्गमीक्षंसुस्वानिच । प्रयच्छन्तितथाराज्यं प्रीतान्णांपितामहाः। २००॥

अर्थ-वसु तथा रुद्र एवं अदिति सुत ये तीनों पितर जो ब्राह्मके देवता हैं वो ब्राह्म करके स्वयं तृप्त हुए मनुष्यों के! पितरों को भी तृप्त करते हैं। और ब्राह्म कर्ता के प्रतिभी ब्रायु, प्रजा, धन, विद्यास्वर्ग

मोसयमा योग्य सुख प्रदान करते हैं। इन वाक्यों से भृत पितरों का श्राद्ध चिद्ध किया है। तात्पर्य यह कि जैसे परमात्मा के सृष्टि में देवलोक श्रादि श्रम्य लोक

हैं और उन्हीं के अधिष्ठांता इन्द्रादि देव हैं तैंचे कर्म-णो पितृलोकः वृहेदारययक॥ दक्षिणाप्रवणो वे पित्रलोकः शतपृथु—-१३। दार्शणा

इत्यादि मुतियों के प्रमाण में एक पितृलोक भी स्वतन्त्र लोक है जिसके अधिष्ठाता अर्प्यमा अग्निप्वान एवं वसुरुद्राऽदिति सुतादि पितृदेव हैं। पितृणामर्थ-माचाहिम श्रीमद्भगवद्गीता अ० १० प्रलो० १०५

भर्मात्-पितृलोक निवाची जो सर्वमा नामक पि तर है वद मेरा स्वरूप हैं। यो ये जो सर्वमादि पितृ-देव हैं वेही इस आड कर्म में पूजनीय देवता हैं स्वीर इन्हों को ही घेद में देवगन्धवीं में सत्वस्त्वित अधिक आनन्द की भागी कहा है। * और मरण श्रनन्तर पुरुष किस योनि में गया है-और कीनदेश में है और उसके नाम पर उंच के वंशीय पृथ्वों ने क्या २ शास्त्रानुकुल कृत्य किया है, इत्यादि सब कर्म के वह समालोचक हैं ? और वही पितृ देव वैदिक मन्त्रोंसे लाहत हुये मृत पितरों के वंशीय पुरुषों करके किये हुये ब्राद्ध कर्म में उपस्थित होते हैं और ब्राद्ध प्रदत्तन्त्राहुति तथा भश्व भोज्य स्नादिशामग्री के मारांग(तत्व)को वासना रूपसे ग्रहण करके शाह कर्ताके मित प्रसन्नता पूर्वक स्नाधीवदि देकर वैदिक्ष मंत्री से विसर्जित हुये मृतपुरवों को यथा योंग्यं सुख का भागीकरते हैं। (यह सब आगे सममाण स्पष्ट होगा) यदापि उन पितरीं का स्वरूप हम इन चर्म चन्न-

यदापि उन पितरों का स्वरूप हम इन घम चतु-श्रों वे सबलोकन नहीं कर चकते हैं तथीपि शास्त्रीय

असर्वी सं, सार्वभी मं, कार्ववर्ती, निष्कंटक राज्य भी को, निखिल कलाविशिष्ट को अति बिखेष्ठ राजा है उसके की जी आनम्द है (जिसको मनुष्यानम्दकी चीमा देही जाती है) उस मनुष्यानम्द से अत्युचित अधिक आनम्दमनुष्य गंधवीं को , है। और उन्हों से अत्युचित अधिक आनम्द देवगंथवीं को

, हैं। और उन्हों से शत्युणित अधिक आनन्द देवगंथवाँ को है और उन से शत्युणित अधिक आनन्द विद्लोक निवा-सी पितरों को है, यह सब तैत्तिरीयारस्यक तथा एडदा-रस्यक में स्वष्ट है। इस लिये वे विद्योक निवासी विद्रदेव

महान् वेभव आते समर्थ और सर्वेश हैं।

पुरुष (अत्यन्त सत्यवादी पूर्णरीति से शास्त्र मर्या-दा पालन करने वाले टूड़ यद्धालु पुरुष) के मन में पितरों का ऋदूष्य होकर स्नाना स्रयवा यों कहें कि उस पूर्ण ब्रद्धावान पुरुपको ज्ञानचक्षु से पितरों का दर्शन होना कुछ असंभव नहीं है। क्यों कि योग ग्रास्त्र में यह विषय स्पष्ट है कि यदि काय किपमें पुरुष संयम करे तो वह पुरुष अन्यों से सदूष्य हो कर यावत् व्यवहार कर असकता है। ('योग' दर्शन

के तृतीय विभूति पाद के २१ वें सूत्र में यह स्पष्ट है।) तथा श्री वाल्मीकि रामायण में सती श्री सी-

ताजी ने अपने मृतं ऋगुर श्री दशरय जी का श्रा-द्धभोक्ता मुनी खरों के देह में दर्शन किया यह प्रसंग आगे चतुर्थ प्रध्यायमें स्पष्ट खोला गयाहै।इति॥

महाश्य जी । अव आपंकी निःसदेह'स्पष्ट ज्ञात हुआ होगा कि त्राद्ध गव्द का ग्रास्त्रोक्त अर्थ क्या है और किस कर्म का नाम श्राद्ध है। तथा उसका रहस्य क्या है सो भी मालूम हुआ होगा॥ इति ग्री ग्राद्धपितृ मीमांगायां ग्राद्धगन्दार्थ तत्स्वरूप रहस्यंच प्रदर्शने प्रवमोऽध्यायः ॥

स्रय द्वितीयोऽध्यायः।

समाजी-भी प्रिङ्त जी ! यह ब्राह्म शब्द का शास्त्र सम्मत शुद्ध सूर्य तो अच्छी तरह मेरी सम-भ में आवा प्रन्तु अब कृषा करके देस विषय में मुभे कुछ और ज्यादा वेद शास्त्रों के प्रवत प्रमा-शों से स्पष्ट करके बतलाओं कि श्राह्म मृतकों का ही होता है वा कभी जीवित माता पितादिका भी !

सनातनी-महायय जी ! यदि आप जिज्ञासु होकर इस विषय का पूर्ण रीति से वेदादि शास्त्रों द्वारा निर्णय कराता चाहते हो तो मैं भी इस तु-म्हारी शंका का वेद शास्त्रों के प्रवल प्रमाण व सद्युक्तियों से निवारण करता हूं आप अब साव-धान होकर और पद्मपात रूप जिद्द की लाठी को कोडकर भेमसे सुनो !

"श्राह्म" जिय कुर्म का नाम है वह तो सदेव मृतकों का हो होता चला आया है और हो एका है-जीवित माता पिता आदिकों की धेवा धर्म श्रा-स्त्रों में लिखे अनुसार अवश्य करना, चाहिये वह पितृ मातृ धेवा एवं गुरु थेवा बाद्ध से भिन्न एक धर्म सम्बन्धी कर्म है जीवितों की ख्राद्ध पद्धति अद्यापर्यन्त विका आयेसमाजियों में भी न बनी और न बनी देखने में आती और न कभी जीवि-तों का श्राद्ध होना कहीं देखने में आता है। तथा याद्ध कर्म की पद्धतियें जिन ब्राह्मण्यायं प. मंत्र तथा श्रीत गृह्मपूत्रों से बनी हैं उन सबों में मृतकों का ही श्राद्ध सिंद है। इस लिये जीवितों का श्राद्ध कहना निर्मूल केवल हठ मात्र हैं॥ श्रवह्म विषय को सिद्ध करने के लिये प्रथम मंत्र संहिता (वेद) के ही प्र-माण दिये जाते हैं। सचेत होकर सुनी।

अधर्वेवेद कां० १६ अनु० २ मंत्र १८॥
"उदन्वतीचौरवमापीलुमतीतिमध्यमा ।
तृतीयाइम्रसौरितियस्यां पितरआसते"॥

अर्थ-ब्रह्मायड के तीन लोकों में बीच का अ-न्तरिक्ष (भुवः) लोक कहाता है इस मध्य लोकके मंत्र में तीन भाग किये [उदन्वती द्यीरवमा] सूर्य चन्द्र नक्षपादि ज्योतियों का मकाश जिसमें फैल-ता है इव लिथे वह (अन्तरिस द्यी) कहाता है। उस में पृथ्वी की श्रीर का भाग जल वाला अर्थात् र्ज्ञतरिस (स्नाकाय) में जो नीलापन द्याया हुआ दीखता है यह चूदम जल है इस जल वाले अन्त-रित भाग का नाम "उदन्वती द्यी" है। (पीलुम-तीति दध्यमा) और जल ने ऊपरी श्राकाण का मध्यम भाग "पीलुमतीद्यी" कहाता है। श्रीर (तृ-तीयाह मधीरिति) [सब से जपरी अन्तरिक्ष का तीवरा भाग मूर्व्यादि के प्रखर प्रकाश वाला होने से "प्रद्यीः" कहाता है (यस्यां पितर खोसते) इसी "मद्यी" नामक अन्तरिक्ष के तृतीय भाग में पितृ-

(२१) देव रहते हैं। प्रिय महाश्रय जी ! इन्हीं पितरींका याद्ध होता है। मंत्र में कहे तीसरे आकाश में रह-ने वाले स्यूल देहधारी जीवित पितर विद्व नहीं हो सकते । स्यूल देहधारी पितर पृथ्वीमें रह सक-ते हैं तृतीय खाकाश में नहीं। इससे जीवितों का पितर होना ख़ौर उनका ब्राद्ध मानना दोनों संग्र खिएडत हो जाते हैं। हमारा पक्ष केवल यह नहीं है कि हम मृतक का ही ग्राद्ध सिद्ध करें किन्तु ह-मारा मुख्य पक्ष यह है कि स्थल देहधारी अपने

विद्यमान माता पितादि की सेवा का नाम ब्राह्म नहीं है। जीवित और मृत शब्दों में कई कुतर्क हो सकते हैं जो मृत हैं वो भी जीवित हैं और जो जीवितहैं वे भी मृत हैं। क्यों कि जो मरे हैं वे कहीं नकहीं किसी योनि में जन्म लेकर जीवित कहे जा सकते हैं। देव तथा पि-तरों की भी योनि हैं उन में जीवित कहना बन स-कता है। और जी मनुष्यादि जीवित हैं वे भी पूर्व जन्मान्तर में भर चुकने से मृत कहे जा सकते हैं.। मृत शब्द की भाषा मुर्दा नहीं है क्योंकि मुर्दा शब्द का संस्कृत शब है। इस लिये शब नाम मुर्दा शरीर का ग्राह्म करना शास्त्रों का चिद्धान्त नहीं। मुद्दीं

का श्राद्ध कहना उन कुतर्की लोगों का प्रलाप माच है। स्नात्मा वा क्षेत्रज्ञ न मरता है न जन्म लेता है किन्तु भूतात्मा मरता जन्मता है इस लिये [अधा मृताः पितृषु सम्भवन्तु । श्रयर्व० १८ । ४८ ॥]

हों। इस अथर्ववेद के मनाग से भी सिद्ध है कि मृत नाम मुद्दं का नहीं किन्तु भूतात्मा का है। शुभ प्र-गुभ जन्म भरण भूतात्मा के होते हैं यह अंश मेन्यु पनिपद् के तृतीय प्रपाठक में अच्छी तरह से वरान किया है। याद मृत शब्द का भाषानुवाद कोई लोग करते हैं तो यह उनको समभ है किन्तु शास्त्रानुकूल नहीं है। इस खिखने से मेरा प्रयोजन यह है कि यदि कोई सुतर्की हमको पकड़े (कि जो लोग पि-तादि मर गये उन्होंने किसी योनिमे जन्म ले लिया तो वे जीवित हुये उन्हों का ब्राद्ध तुम करते मानते हो इस लिये जीवितोंका ही ब्राह्म तुम ने भी माना वा मान लिया) इस लिये इर्प कुतर्क की पहिले से ही निर्मल काट देने के लिये हम प्रपने साध्य पक्ष-स्य प्रतिचा का स्पष्ट व्याख्यान कर देते हैं कि हम उन पिता मातादि का श्राद्ध शास्त्रानुकुल मानते हैं ज़ीर करते हैं कि जिस भौतिक गरीर से वे हमारे माता पितादि कहाते ये उन शरीर को छोडकर फ़ान्य किसी योनि में 'परिशात (प्राप्त) हो गये हो। यही उनका मरना वा मृतक कहाना है। तया-मंत्रसंहिता शु० यजुबैद अ० १८। ६० मंच में स्रशिष्वात सनिष्वात दी प्रकार के पि-तर लिखे हैं। यथा--चेअग्निष्यात्ताचे अनिनिष्यात्ता मध्येदिवः स्त्र वयामादयन्ते० ॥ यजु० १६ १ ६०

चे अग्निदग्धाचे अनग्निदग्धा मध्येदिवः स्त्र-धया मादयन्ते०॥ ऋग्वेद मगडल १० सू० १५ मं० ११ तथा अधर्व० १८। २। ३५

कपर लिखे पतों पर उक्त मन वेद की तीन चंहिताओं में है, यजुः चंहिता में (अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त) पद हैं उन्हीं दो पदों के स्थान में

(अग्निदग्ध अनग्निदग्ध) पद सम्बेद अथर्ववेदमें लाये गये हैं (मध्येदिव स्वध्या मादयन्ते) इत्यादि पाठ तीनों वेदों में एकचा ही है इससे सिद्ध होता है कि सम्बेद तथा अथर्व० में जिनको (अग्निदग्ध अन्ध्रि

स्पेष कहा है उन्ही की यजुर में (अग्निष्वास अन-ग्निष्वास)कहा है। क्योंकि च्यवेद तथा अयुर्व में अग्निष्वास अनिन्द्यांस ग्रन्द उन मनों में नहीं आग्निष्वा अग्निद्य अनिग्नदम्ध पद यज् में नहीं

साय तथा स्नाग्नदम्ध सनाग्नदम्ध पद यनुष् म नहा
स्नाये इस से सिद्ध होता है कि स्नाग्नद्वास स्नीर सगिनदम्ध का तथा स्नाग्नद्वास स्नीर सनग्नदम्ध का
एक ही स्नर्थ है ।
पाणिनीय व्याकरण के संनुसार इन ग्रव्हों का संर्थ
यह है कि—

"आंग्रना + स्वादिताः = अग्निप्वात्ताः १ अग्नि-ना + दग्धाः = अग्निदग्धाः । जलाते हुए अग्निने जिनका स्वाद से लियांचा अग्निने जिनको जलाया वे पितर अग्निष्वात्तवा स-ग्रिदग्ध कहाते हैं। इसीप्रकार तृतीया समासमें वेदों सें- लिखा अन्तोदात्तस्वर[यायघञ्क्ताजवित्रकाणाम् ॥ पा० ६ । २ । १८४ सूत्र ॥ (गत्यादिभ्यः परेवां यादि प्रत्ययान्तानामुत्तरपदानामन्त उदात्तो भवति ॥)

इस सूत्र से सिद्ध होता है। सूत्रार्थ यह है कि-गति कारक ज़ीर उपपदसे परे य, अय, घज्, क्त, अस्, अप्, इब, और क प्रत्ययान्त उत्तर पदों को अन्तो-

दात्त हो, इससे अग्निकरण कारक से परे ज्वात औ-र दग्ध 'इन ता प्रत्यवान्त उत्तर पदीं को अन्तीदात्त स्वर हुला है। यदापि ऐसी दशा में जब कि पाणि-नीय व्याकरण के अनुसार तथा संहिताओं के पर-

स्पर मेल से आग्निष्वात्त पद का अर्थ सिद्ध होगया कि जो अग्नि से जलाये गये वही पितर अग्निष्वात तथा अग्निद्ग्ध हैं तब हमको अन्य प्रमाण की अ-पेक्षानहीं। तथापि (ग्रधिकस्याधिकं फलम्)के

अनुसार ग्रतपथ ब्राह्मण वेंद का भी प्रमाण देते हैं। "यानग्निरेव दहन्त्स्वद्यति ते पित्रगेऽग्निष्वा-त्ताः ॥ शतपय ब्रा०२ । ५ । २ । ३ ॥ "सर्यात् – जला-

ता हुआ अग्नि ही जिनका स्वाद से लेता है वे पि-तर अग्निष्वात कहाते हैं। इस शतपथ ब्रा० वेद के प्रमाणने भी सिद्ध हो गया कि मरने पद्यात् जो श्र-ग्नि से जलाये गये वेही मृतपितर पितृयत्ते वा ग्रा-

द्ध में किये जाते हैं, मरने परही मनुष्य के गरीर अगिन से जलाए जाते हैं, तथा जो जलाए गये वे जीवित नहीं रह सक्ते हैं इससे ब्राह्म में मृत पितरों

(२५) का ही ग्रहण मन्त्र संहिता के प्रमाणों से सिद्ध हो चुका। सम्वेदादि भाव भूमिका पुस्तक के पितृयद्य प्रकरण में स्वामीदयानन्द जी ने अग्निष्वात्त शब्द का अर्थ यह किया है कि "अग्नि की अच्छे प्रकार जिसने ग्रहण किया है वे अग्निष्वास कहाते हैं"। यह अर्थ चंहिताओं के परस्पर मेलने तथा शतपय ब्रा० वेद से और पाणिनीय व्याकरण इन तीनों से विरुद्ध है। उक्त स्वामीजी की प्रतिचा उसी भूमिका पुस्तकमें यह यी कि महीधरादि भाष्य-कारों का किया हुआ वेदार्थ शतपथादि से विरुद्ध है और हमारा किया अर्थ गतपवादि ब्राह्मण भाग के अनुकुल होनेसे सर्वया याह्य होगा सी वह मित-चा अब निर्मूल हो गई, स्वमुखमे स्वात्मारलाचा करनी मानो विद्वताको धर्माना है स्वामीजीकी च-त्यप्रतिचाकी, एवं संस्कृत में विद्वत्ता की छीर सत्य-वादीपने की तो बात ही क्या कही जाय! स्नापती पूर्ण संस्कृतज्ञ, सत्यवादी और पूर्ण त्यागी महर्षियों में मुक्ट ये इसीलिये तो छाप ऋषिजीकी सेवा में "छा-धुनिक महर्षिकी पोल"नामक एक ट्रैक्ट मेंट की ग-ई है कि जिस में आप ब्री की विद्वत्ताका पूरा २

तान किया है अस्तु तात्पर्य यह कि स्वा० द० जी का किया अग्निष्वात्त शब्दका अर्थ शतप्य आर्
है, संहिता हे तथा पाणिनीय व्याकरणहे विकृद्ध वा अग्रुद्ध अवस्य है जिसका समाधान वर्तमान आर्यमन्यों

में से कोई भी नहीं कर सकता ख़ौर जो कोई गिरा पड़ा समाधान करेगा वह युक्ति प्रमाणों से झवश्य कट जायगा और अग्निष्वात्त तथा अग्निदग्ध आ-दि मंहिता के मत्रों से मरे हुए पितरोंका ब्राद्धवापूजन होना अवश्यसिद्ध है जिसमें लेश मात्रभी सन्देह नहीं। मनुष्यके मरने परदो प्रकारकी क्रिया होती है। एक तो मरें हुए मुर्दा को खरिन में जला देना द्वितीय दो वर्षके भीतर जिन बालकों को वा कुष्ठादि (कोड़) रोग वालों को वा जिन संन्यासी आदि के लिये शास्त्र में अग्निदाह नहीं कहा है उन को तथा जिनका अग्निदाह किसी खास कारण से न क्षी सके उन सबको जल वा बन में फैंक देना वा खोद के गाढ़ देना यह दो प्रकार की क्रिया होती है। ये सब अ-निग्निष्वात्त वा अनिग्नदम्ध कहाते हैं। (अनिग्न-दग्ध) वा (अनिग्नष्वात्त) का यह अर्थ होगा कि जो र अग्नि से नहीं जलाए गये। उनके विषय में वेद का यह मंत्र ममाण है कि ख्रयर्व कां १८।२।३॥॥ येनिखातायेपरोप्ता येदग्धायेचोद्धिताः। सर्वो स्तानमुभावह पितृन्हविपेअत्तवे॥ अर्थ-मरने पर जिनको खोदके गाढ़ दिया, जो बन वा जंगल में छोड़ दिये गए, जो श्रीय में जलाए ग-र तथा जो युधिष्ठिरादिके तुल्य इसी ग्ररीरचे स्वर्ग को चले गए, है! अग्रिदेय उन सब पितरों को हविष् कानेके लिये इस बाद्वादि पितृकर्ममें ब्लासी।

इस मंत्रके निर्विकल्प सीधे रख्नतरार्थसे स्पष्ट ही सिद्ध है कि मरने पश्चात् ही पृथ्वीमें गाढ़देना ख़ादि हो सकता है इस से ग्राद्ध में मृत पितरीं का शावाहन करना चिद्ध है। वर्त्तमान पार्वणादि श्राद्धोंमें---आयन्तुनः वितरः से।म्यासे।ऽग्निष्वात्ताः प-थिभिर्देवयानै:०॥ अग्निमें जिनका दाहकर्म होचुका है ऐसे सीम गुणों वाले हमारे पितर देवयान अन्तरिक्ष मार्गसे इस ग्राह्म में ख़ावें। इस मन्त्रके ख़र्यसे भी मरे हुए पितरींका ग्राह्म सिद्ध है। तथा---

ये पूर्वापरागताअपराःपितरस्र ये । तेभ्या षृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥ अथर्व**०** कॉ० १८ अनु० २। मं० १२॥ अर्थात् पूर्व जो गये और जो जा रहे हैं उन पितरोंके लिये चृतकुल्या शतधारा होकर प्राप्त होवें।

यहां मृतकग्राद्ध निन्दकाँ रे प्छना चाहिये कि वे यह तो वतावें कि उक्त मन्त्र में वो आपके कीन जी-वित पितर हैं जो पूर्व चलेगये और जा रहे हैं? स्रीर किस तरहसे स्नाप उन चलेगए पितरींकी घत की ख़ाहुतियें दे क्ती हो ! क्योंकि वे तो गए और आहुति लेने वाला तो जब समझमें अर्थात् सामने हाजिए होता है तव ले सक्ता है सो तो उक्त मन्त्र

के "ये पर्वापरागता" इस पक्ति में वर्त्त मान क्रिया है ही नहीं वहां तो पूर्व चलेगये पितरोंका जिकित है-िफर आप किस रीति से उन आपके चले गये जी-वित पितरों को चृतकी आहुतियें देकर मन्त्रको साः र्थक करोगे! नहीं तो इस वेद मन्त्रको मिस्रम (यानी किसी ने मिला दिया होगा ऐसा भुठा) मानो। तथा—

इदं पित्रस्या नमे।ऽस्त्रवा ये पूर्वासे। यउ-परोस ईयु: । ये पार्थिने रजस्यानियत्ता ये वा नूनं सुनूजनासु विक्षु ॥ ऋग्वेद अप्टक् श्र अध्याव ६ वर्ग १७ मराइल १० अनुवाक १ सूक्त १५ मंत्र २ । शक्रवर्जेट अध्याय १८ मंत्र ६८ ॥ ऋव यजव

६ वर्ग १७ मराइल १० अनुवाक १ सूक्त १५ मंत्र २। शुक्रयजुर्वेद अध्याय १८ मंत्र ६८ ॥ कृ० यजु० कां० २ प्रपाठक ६ अनु० १२ मं ० ६ ॥ प्रम्वयार्थः—ये (पूर्वाचः) पूर्वेपितरः (ईयुः) स्वर्भेमात्राः, ये च (उपराचः) उपरतव्यापाराः कृ

स्वर्गमाप्ताः, वे च (उपराचः) उपरतव्यापाराः कृ-तकृत्याः चन्तः परं माप्ताः, यहावे (पूर्वाचः) यज-मानोत्पत्तेः पूर्वमेवोत्पन्ना ज्येष्ठश्चातृपितामहादयः, वेच (उपराधः) यजमानजन्मन उपर्युत्पन्ना कनि-ष्टमातृस्वपुत्रादयः (ईयुः) पितृलोकं माप्ताः, वे-प्यन्वे (पार्थिवे रजिष) पृथिवी संवन्धिन रजोग्-

णकार्थ्येऽस्मिन् पितृयज्ञाख्ये कर्मणि (झानिपत्ताः) हितः स्वीकर्तुमागत्योपियद्याः, ये या(मुवृजनामु) अ धनसमृद्ध्या श्राद्धादिकर्मपरामु (वित्तु) वन्धुक्रपामु मजामु (नूर्न) निद्ययेन (झानिपत्ताः) श्राद्धादिस्वी-कारायागत्योपिविद्याः, तेम्यः सर्वेभ्यः पितृभ्यो (झ-* « वृज्यते-परित्यज्यते दारिद्रयननेनेति वृजनं धर्न

तत् शोभनं यासां ताः सुवृजनाः, तादृशीयुण्दति सायणः।

द्या) अस्मिन् पितृयज्ञाख्ये कर्मणि (ननोऽस्तु) श्र-यमाहुतिपदानपूर्वको नमस्कारो भवतु ॥ भाषा—(ये पूर्वामः) जो हम मे पूर्व हुए ज्येष्ठ भावा पिता पितास्त श्राहि पितर स्थीर जो (स-

भ्राता, पिता, पितामह आदि पितर और जो (उ-पराशः) हमसे पश्चात् हुए किनष्ठ भाता बन्धु आदि (ईयुः) भरकर पितृलोकको माम हुए हैं, और जो

(पार्थिवे रजिस) पृथिवी संबन्धी रजोगुणपुक्त इस पितृयज्ञरूप कर्म में (फ्रानियत्ताः) छद्य्य रूप से हिवः ग्रहण करने को उपस्थित हुए हैं, स्रीर जो(सु-

हिनः ग्रहण करने को उपस्थित हुण्हें, ग्रीर जो(सु-चुजनासु विक्षु) ग्राद्ध कममें निष्ठावाले बन्धुवर्गोंमें (नूनं) निश्चय कर (ग्रानियत्ताः) ग्राद्धके स्वीकारार्थ उपस्थित हुये हैं, तिन सब पितरों के प्रति (ग्रद्ध) इस ग्रारव्थ पितृयद्ध कमें में ग्राहुति प्रादनपूर्वक मेरी नमस्कार होय तथा—

भारत्यात हात तथा "आच्याजानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञम-भिगृणीत विश्वे, माहिंसिष्ठ पितरः केनचिन्नो, यद्व आगः पुरुपता कराम,"। ऋग्वेद अ०६ व० १८ मण्ड० १० अनु० १ सूक्त १५ अष्ठ७ मन्त्र ६ युक्त यजुर्वेद अध्या० १९ मन्त्र ६१॥ अन्वयार्थः—हे विश्वे चर्चे पितरः, यूर्व (जानु-

सन्वरार्धः —हे विश्वे धर्वे पितरः, यूर्य (जानु-स्नाच्य) वामजानु भूमी पातियत्वा (दक्षिणतो नि-पदा) दक्षिणपार्थे उपिष्य दममस्मदीयं यद्धं (स्न-मिगृणीत) साधुर्यं यद्घ इत्येवमिष्टुत स्रिप्य (द:) युष्माकं, यत्किच्चिद् (स्नागः) कर्मवैगुरय- जनितमपराधम् (पुरुषता) मनुष्यत्वेन हेतुना (कः राम) वर्षं कृतवन्तः, हे पितरः तेन केन विद्पराधेन (नः) अस्मान् मा (हिंचिष्ट) विधिष्ठ ।

भाषार्च-है (विष्के) निखिल पितरो ! स्राप(जा-नुस्राच्य) बाम जानु यानी बार्ये चाँटु को भूमि पर निपात (खोर जगाकर) कर (दक्षिणतः निषदा) इस स्राग्न से दक्षिणकी छोर स्थित होकर (इमं यज्ञम्ं) इस हमारे यज्ञ को [स्राभगृणीत] स्तवन यानी अंगीकार की जिये, और [पुरुषता] चाञ्चल्य स्थभावरूप मनुष्यपने से, स्रापका [यद् स्रागः] [कराम] जो कुछ कर्म वैगुषयपुक्त [स्रयात् इस यज्ञ कर्म में कुछ कमी वा चुटि होजाने रूपी] स्रपराध किया हो तो तिस किसी स्रपराध है [नः] हमको [माहिसिष्ट] हिं-सन मत करो। इत्यादि

दिग्दर्शन मात्र दिखायेदन वेद मंत्रो द्वारा मृत पितरों के ही निमित्त बाद्धादि यक्त कमें में पितृ-लोक के प्रधिष्ठाची देवों का प्रावाहन-नमस्कारा-दि स्तुति ग्रीर पूजन सिद्ध है। तथा---

"तिरइव वै पितरो मनुष्येभ्यस्तिर इवैतद्गः वति" ॥ शतपण बा० २ । ३ । १ । ११ ॥

स्रायंत्-पितर लोग मनुष्यों से सदूर्य होते हैं श्रीर पितरों का भोजन भी सदूरय सूक्ष्म होता है। इस कथन से भी सिद्ध हैं कि स्यूल देहधारी पितर होते तो सद्श्य नहीं कहें जाते। इसलिये पियखदा- न संबन्ध में प्रदृश्य पितर कहने से वे ही प्राण श-रीरी वायुकाय सूक्ष्म झद्रश्य पितर लेने हैं। इस से भी जीविनों का खरडन तथा मृत पितरों का ग्राह्म चिद्ध है। तथा-*शतपथ ब्राह्मण में पितशें के लिये म-त्येक महीने में एक बार और मनुष्यों के लिये प्रति दिन सार्य प्रातःकाल दोवार भोजन प्रजापति ने नियत किया। यदि जीवित पितरों को मानें तो वे मनुष्य ही हुए तब बताओं कि वे ऐसे कीन मनुष्य

हैं जो महीने में एक बार ख़मावास्या के दिन ही भोजन करते हों ? ऐसा मनुष्य कोई न हो सकने के कारण मनुष्यों से भिन्न मरणानन्तर पितृयोनि गये पितर ऐसे समर्थ होजाते हैं-जिनको महीने भर में एक वार ही भोजन मिलने से तृप्ति रहती कष्ट नहीं होता। इषषे भी मृतकों का ग्राह्म सिद्ध है। शांखायन श्रीतसूत्र पिण्डपित्यज्ञ प्रकरण में "न जीव पित्रस्ति," अ० १ कं०१ सू० ०॥

श्चर्यात्--जिनका पिता जीवितं ही वह पिषड पितृयज्ञ न करे उसं के लिये पिगडपित यज्ञ नहीं है। इस प्रमाण से भी जीवित का निष्धे करने से मरे पितरों का ब्राह्म अर्थापत्ति से सिद्ध है। अर्थात् जि-सका पिता जीवित हो वह ग्राद्ध न करे तो यह ग्रा-या कि जिसका पिता मर गया हो वह । पिएडपित

 शतपथ ब्रा० कां०२ प्र०३ मं०२ ख्रीर ३ ये संघ्र स्प-ष्ट रूप से आगे अध्याय ५ में वर्णन किये गये हैं वहां देखी।

यज्ञ करे तथा शांबायन श्रीत सूत्र साकमेध पर्वस्य महापितृयर्च प्रकरण छ०३ कं० १६ सूच २।

[पित्रभ्यो वा सोमवदुवः पित्रभ्योवर्हिष

द्वभ्यः पित्रभ्योऽश्निष्वात्त्रभयः 🗍 । सोमवान्, बर्हिषद् और अग्निष्वात्त इन तीन नाम वाले वितरों के लिये महापित्यज्ञ में भाग

दिये जाते हैं। इन में अग्निष्वातं पितर बोही हैं जो

मरणानन्तर अग्निदाह की प्राप्त हुए। इस से भी मृत पितरोंके लिये बाद्ध होना सिद्ध है तथा पिएंड पित यं ज मकर्ण कात्यायन ग्रीत सूच २३ छ० ४ कं०१।

ि प्रेतेभ्योददाति] मेत नाम मरे हुए पिता पितामहादि के लिये

पिएड देता है अर्थात् देने चाहिये। अर्थापत्तिने आया कि जीवितों के लिये नहीं। इस से भी मरे हर्जा के

लिये पिरछदान देना सिद्ध है तथा आपस्तम्ब श्रीत सुम पिएडपित्यज्ञ प्रकारण ।

यदि जीवितपिता न दद्यादाहीमात्कृत्वा विरमेत्॥ यदि जिसका पिता जीवित हो वह पिएउदा-

न न करें तो होस पर्यन्त ही पिएड पितृ यच्च करके

ठहर जावे । इससे भी मरे हुआं के लिये पिरडदान चिद्ध है। तथा मानव कल्प चुत्र में लिखा है कि।

यदि ददाद येभ्य एवं पिता ददात् तेभ्यो

ददात्॥

तो जिन पितामहादि मरों के नाम से पिता देखें उन्होंके लिये पुत्र भी पिराडदान करे सर्थात् स्रपने जीवित पिता के नाम से पिराडदान न करें। इससे भी मरे हुए पितादि के लिए पिराडदान सिद्ध है।

जिसका पिता जीवित हो वह यदि पिएड देवे

भा भर हुए पितादि के लिए पिएडदान विद्व है।

तथा--यजुर्वेदीय कठ शाखा के काठकश्रीत
यूच में लिखा है कि-

्रिता पुत्री चेदाहिताग्नी स्वातां येभ्यः पिता तेभ्यः पुत्री दद्यात्। पिता प्रेतः स्वात् पितामहो जीवेत् पित्रे पिण्डं निधाय पितामहा त्पराभ्याम् द्वाभ्यां दद्यादिति ॥

यदि पिता पुत्र दोनों ने विधिपूर्वक श्रीत स्मा-र्म अग्नियों का स्वापन किया हो तो अत्येक अ-मायास्या के दिन दोनों को पिषड पितृशच्च करना चाहिये। इस दशा में जिन तीन के नाम ये पिता पिणसदान करें उन्होंके लिये पुत्र भी पिणड देवे किन्तु पुत्र अपने जीवित पिता के नाम ये पिणस-

दान न करे। और यदि पिता मर गया हो पितामह (दादा)जीवित हो तो पुत्र को चाहिये कि पिता के नाम से पियछदान देशे जीवित पितागह (टादे) को छोड़ उपसे पूर्वके प्रपितामह मुद्ध प्रपितागह दोनों के लिये पियछदान देये। यह यिषय रेजाही ज्यों

का त्यों सन्० अ० ३ प्रती० २२० । २२१ में भी शिखा

है जिस से सिद्ध है कि मृत पितादिके लिये पिण्ड-दान होता है इसीका नाम श्राद्ध है। प्रयोजन यह कि प्रमाणां से तो अच्छी प्रकार सिद्ध है कि "श्राद्ध" मरे हुए पितादिका होता है जीवितों के सत्कारका नाम "श्राद्ध" किसी श्रंथ से कदापि सिद्ध नहीं हो सक्ता है, इत्यलम् विद्वतसु॥

इति स्त्री स्नाहृषित्रमीमांसोयां मृत पितृणाः मेव स्नाहृसिद्ध प्रदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ ऋष तृतीयोऽध्यायः॥ समाजी-भ्री पण्डितजी महाराज ! मृतकोंकी ब्राद्धिसिद्ध में ये अत्यन्त प्रवल, बास्त्रप्रमाण और सद्युक्तियां सुनकर स्रव मेरे हृद्यके संशय रूप क-पाट खुल गये हैं फ़ीर मुक्ते दूढ विकास हुआ है कि "म्राद्ध" मृतकों का ही होना निःभंदेह मत्य एवं घेदानुक्ल है। इसलिये हम-अब इन आपके दिये शास्त्र ममाग्र रूप अस्त्रोंको लेकर अपने आर्ग्यस-माजी महाश्रयोंको ख्रविद्या-हट ख्रीर पक्षपात रूपी महाश्रचुश्रोंके पञ्जेषे खुड़ाने की एवं वेदोक्त सन्मार्ग पर लाने की यथार्यभव को शिश करते रहेंगे। परन्तु है परिखतजी! मुभे यह तो बतास्रो कि पिता पुत्र का संबन्ध शरीरों के साथ है वा जीवात्मा के साथ ?। यदि ग्रारीर के साथ मानो तो यह ग्र-रीर यहीं जला दिया राख भस्म होकर मट्टी में मिल

गया अर्थात् रहा ही नहीं उस ग्ररीर रूप पिताका भाद्ध पुत्र करही नहीं सकता। श्रीरजीवाल्मा किसी का पिता वा पुत्र होता ही नहीं। क्योंकि जैसे जी-

वात्मा न स्त्री न पुरुष और न न पुंगक होता [श्रुति:नैव स्त्री न पुमानेष नचें वायं न पुंगक: 0] वें में ही वह
किसीका पिता वा पुत्र भी 'नहीं होता। फिर तुम
पिगडदान का फल किम को पहुंचाते हो ?। अर्थात्
भरने पद्यात् उस २ पितादिको मुख पहुंचाने के लिये
याद्धकरना व्यर्थ समभा जाता है।

सनातनी—प्रिय महाशयजी ! क्या आप गुरु शिष्य पिता पुत्रादिका संवन्ध नहीं मानते ! यदि मानते हो तो शरीर के साथ वा जीवके साथ, किस के साथ मानते हो ! यदि कहो कि हम मत्यक्ष वि-द्यमान संवन्ध मानते हैं मरने पश्चात् किसी के साथ नहीं मानते तो यह बताओं कि स्वा० द्यानन्द की

द्यमान संबन्ध मानते हैं मरने पद्यात् किसी के साथ नहीं मानते तो यह बताश्रो कि स्वा० दयानन्द की स्वर्गवास हुआ कहने में प्रसन्न और नरक हुआ कह-ने में अप्रसन्न क्यों होते हो ! तथा स्वा० द०को कोई बुरा कहे वा लिखे तो उसके साथ|लडने को तथ्यार

ने में ग्रमसन्न क्यों होते हो ? तथा स्वा० द०को कोई बुरा कहे वा लिखे तो उमके साथ लिखने को तथ्यार क्यों होते हो ? क्योंकि स्वा० द० का ग्रारीर भस्म हो के पंचतत्व में मिल गया उमके साथ तुम्हारा कोई संवन्ध हो ही नहीं सकता रहा जीवात्मा को जैये ,वह किसी का पिता वा पुत्र नहीं वैसे ही वह किसी का ग्रार वा पुत्र नहीं वैसे ही वह किसी का ग्रार वा उपदेशक भी नहीं ठहर सकता । इसलिये

तुन को स्वा० द्यानन्द का कभी नाम भी नहीं लेना
चाहिये। छोर यदि तुम अब उन की प्रश्रमा में सन्तुष्ट प्रस्त्र होते छोर उन को दुरा कहने वाले पर
अपम्बद्ध होते हो तो तुम्हारे मन ये ही मरे जीवींके
साथ संबन्ध सिद्ध हो गया। यह उत्तर तो वैसा ही
है जैसा प्रश्न था अब आगे आप जिज्ञासु महाण्य
को तत्यांश सम्भाने के लिये इसी अंश पर कुछ वि
चार लिखते हैं वह प्रश्नका समाधान भी होगा और
शास्त्रानुकृष सिद्धान्त ज्ञान का हेतु भी होगा। परन्तु इस गहन विषय को आप पूर्ण ध्यान लगाकर
चैर्य से सुनेंगे तो आशा है कि आप प्रीप्र ही इस उच्च
सिद्धान्त को ठीक २ सम्भ कर पूर्ण लाभ से सकेंगे॥

अवीय वाजीयात्मा स्था है "इस विषय पर अ-

नेक विचार ग्रंथों में मिलते हैं जिनका व्याख्यानं यहां छेड़ा जाय तो एक यही बड़ा व्याख्यान चर्ल जावे। इस लिये प्रधिक शास्त्र सम्मत सिद्धान्त जो वास्तव में वेदानुकूल है वही यहां कहते हैं कि—

घेदेके (द्वासुपर्णा०) मन्त्रमें दो आत्मा कहे हैं इन दोनोंमें (अनम्बन्यो अभिषाकणीति) जो गुभागुभ फल सुख दुःखभोग नक्तता हुआ केवल मकाण करता साक्षीरूपने स्थित है जिसके लिये उपनिषदोंमें (साक्षी-चेताकेवलो निर्मुण्यु) इत्यादि कथन लिखा गया है। गो जैसे जपा पुन्पकी छाया (फलक वा शामास) स्व-च्छ फांच छादि में सभीप होने के कारण पड़ने से कांच आदि ठीक उसी पुष्पके रंग से रंगा दीखता है। उसी के अनुसार ऊपर लिखा गया साक्षी आ-त्मा का आभास अन्तः करणमें पड़ता है। वास्तबमें अन्तः करण जड़ है पर चेतन के आभास से चेतन ही अतीत हुआ करता है। अपने आभास हारा अन्तः क-रण को सचेत करता है इसी लिये उपनिषदों में इस आत्मा की चेता कहा गया है। इसी चेता का नाम

फ़ात्मा की चती कहा गया ह। इस चता का नाम सेवज है यही साक्षात् ईखर परब्रह्म परमात्मा है। श्री गीता में लिखा है कि— "होवजं चापि मां विद्वि चर्वक्षेत्रेषु भारत!" अर्थात् चब सेव रूप शरीरों में सेवज मुक्ते परमेखर को ही जानो। तथा मनुष्य्रष्ट से लिखा है कि—

्रयीत्स्यात्मनः कार्रायता तंक्षेत्रज्ञं प्रचक्षते । यः करातितु कर्माणि समूतात्माच्यते वुधैः १२ जीव संज्ञीऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम् ।

येन वेद्यते सर्वं सुखं दुःखं च जनमसु ॥१३॥
ताबुमी भूतसपृक्ती महान्क्षेत्रज्ञ एवच ।
उञ्चावचेषु भूतेषु स्थितंतं व्याप्य तिष्ठतः"॥१४॥
प्रर्थ-जो इस सर्वेत ग्रारिये कर्म कराने वाला
है उसको परिडत लोग सेवच कहते हैं, और जो

अय-जा इस स्वत शरारस कम करान वाला है उसको पण्डित लोग खेवज कहते हैं, और जो सुभाशुभ कर्म करता है यह भूतात्मा नाम शरीर क-हाता है। तथा शरीर के साथ ही आविर्भूत प्रकट होने वाला जीव बंजक तीसरा आत्मा उन दोनों

से भिन्न है। शरीरधारी इसी जीव रूप साधन से श-रीर धारण के समय सब मुख दुःख को जानता है। वे दोनों जीव नाम महत्तत्व वा बुद्धि तथा क्षेत्रज्ञ पंचभूत रूप स्यूल मूक्त शरीर में मिले हुए सब छोटे बड़े गरीरों में व्यापक परमात्मा के महारे से उहरे हुए हैं। जैसे कृर्य्य वा दीपकादि का वाहरी प्रकाश आंखों से दिखवाता है वैसे ही सेत्रज्ञ सासीहर से अपनी चेतना द्वारा स्थ्ल मूक्त गरीर से कर्मक-राता है। इसी लिये उपनिषदों में ईखरको [चेतन-श्वेतनानाम्] चेतनोंका भी चेतन कहा है। जाननेका साधन जिससे मुख दुख जानते हैं वही जीव है फ़ौर जानने वाला वा करने वाला भूतात्मा है। भूतात्मा फ़ीर गरीर एक ही के नाम हैं। ग्ररीर तीन मकार का है-एक स्यूल द्वितीय यूदम तया तीयरा कारण गरीर है। यद्योपि मत्यस में स्यूल गरीर कमं करता हुं ग्रा दीखता है। परन्तु स्यूल वास्तव में कर्त्ता नहीं किन्तु सूक्ष्म श्ररीर सुख्य कर कर्म करने वाला है। स्युल गरीर का नाम अनुमयकोप है। प्राणमय और मनीमय कोप का मुख्य संवन्ध सूक्ष्म ग्रारीर के साथ है। मैं ज्युपनिषद् में भूतात्मा शब्द में इसी सूक्ष्म श्र-रोरका गमनागमन जन्म भरण के साथ माना है। यह पर्वतन्त्र नियम है कि जो पदार्थ जैसा स्यूल दीख-ता है यह वैशा ही उवों का त्वों मुदम दया में भी समय होता है। क्योंकि मूदम में ही सब स्यूल प-

दार्थ वृद्धिको प्राप्त हो जाते हैं और स्यूल के अंदर मूक्म रहा करते हैं। जैसे स्यूल वृक्ष अपने सब अंशों , महित प्रत्येक बीज (फ्राम की गुठली फ्रादि) में विद्यमान रहता है और ख़ाम ख़ादिके पेड़ (युर) में आम के फल और बीज का भी सूदम कारण वि-द्यमान है वैसे ही मनुष्यादि के स्यूल ग्ररीरों के भी-तर मूक्त और कारण भरीर विद्यमान हैं। यही मुक्त शरीर नामक भूतात्मा देव-मनुष्य और तिर्यम् आदि योनियोंमें जाता है यही देव-पितर बनता है इसीके साय जीवसंज्ञक महत्तत्व भी तिरोभूत दशामें मर्-यानंन्तर रहता है। सूद्दम शरीर के साथ स्यूल श रीर कां ऐसा ही संबन्ध है जैसा घी के साथ दूधका है। अर्थात् स्यूल का सारक्य घृतके नगह पर मूक्स शरीर है स्त्रीर घृत के निकल जाने पर जो देशा दूध की होती वही दशा मूक्ष्मश्रीर के निकल जाने पर स्यूल देह की हो जाती है। ख़ीर जब तक दोनों मिले हुए हैं तब तक दूध के समान हैं। सूक्ष्म श-रीर स्यूल ग्रारीर का सार (तत्व) है इसकी सिद्धि के लिये छान्दोग्य उपनिषद् में स्पष्ट ही खोलकर लिख दिया है। तदाया--**"दभ्र: सोम्य मध्यमानस्य योऽणिमा स ऊ**-र्ध्वः समुदीपति तत्सर्पिर्भवति ॥१॥ एनमेव खलु

सोम्यान्त्रस्याश्यमानस्य योऽणिमा स अर्घ्यः सम्-

पीयमानानां योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीपति सप्राणी भवति"।शाइत्यादिछान्दी० प्र०६।खं०६॥ हे सोम्य खेतकेतु ! जैसे दही के मधने पर जो सूक्ष्म सार भाग ऊपर खाजाता वह घी होता है वैसे

ही खाये हुए ख़न्न का जो मूहम सारभाग उदर से ज-पर हृदयादि में आ जाता है वह मन होता है। इस मेमन ख़ादि मूक्म शरीर स्यूल देहका सार होना स्प-ष्ट चिद्ध है। यही यूक्म श्ररीर देव पितृ आदि यो-नियों में जाता है। इसी भूतात्मा नामक सूक्ष्म य-रीर के साथ पिता पुत्रादि सब संबन्ध मरणाऽनन्तर भी रहता है और मुझम ग्रहीर में सब खंगीपाड़ बैसे ही बने होते हैं जैसे स्युल में हैं। हरएक वस्तु अन्य द्या में पहुंचने पर भी अपने संबन्ध को अपनी आ-कर्षण शक्ति है खेंचता है और वह खिंचा हुआ वहीं पहुंच जाता है। वैसे ही सूझ्म शरीर जहां जिस यो-नि में जन्म लेता वहां ख़पने स्यूल ग्ररीर के परमा-णुष्टों को खेंच कर फिर नया गरीर बनाता है। इ-त्यादि सब का सारांश यह है कि जीवात्मा कर्मा-नुसार स्यूल देह को छोड़ कर मृस्म देहसे कड़ा हो-कर अन्य २ योनियों में जन्म लेता है फ़ौर चूक्ष्म गरीर को भी वह जीवात्मा तब छो छता है जब कि वह संसार की वासना (अर्थात् वंधन रूप संकल्प विकरप शादि कामनाओं) से निवृत होकर निर्वाण

पद (मोल को प्राप्त करने का अधिकारी बनता है। इस लिये हरएक ग्रास्तिक को चाहिये कि ग्रपने वेद शास्त्रों के साचानुसार शास्त्रविधि से शपने मा-ता-पिता=गुरु लादिकों के मृक्ष्म ग्ररीरोंचे मुख्य मं-बन्ध मानकर अवश्य ही उन मृत प्राची के सुख पा-प्त्यर्थ श्रीर उन की सद्गत्वर्थ यथाशक्ति एवं पूर्ण ग्रद्धाचे मन्न-जल मादिचे विधिप्वंक चत्कार (ग्राद्ध) करना चाहिये। ख़ौर जब कि [ख़ोत्माचै पुत्र नामा-सि॰] [सात्माचे जायते पुत्रः] इत्यादि श्रुति और [गर्भी भूतवेह जायते] [भार्या पुत्रः स्वकातन् :0] इ-

त्यादि स्मृतियों में पुत्र से पिता का अभेद एकता मंबन्ध स्पष्ट दिखाया गया है तो फिर धिक्कार है उन्हों को जो फूट रूप भेद डालते हुए भी यह क-हते रहते हैं कि हम ही माता पितादिके बच्चे छे-वक और देश भक्त हैं। वाहरे सुपात्र पुत्र ! और दे-श भक्तो !! क्या यह दलील देना तो नहीं चाहते हो कि पितादि ने युरे कर्म किये तो उन की अप-ने कर्मानुसार ईखरव्यवस्या से दुःख मिलना नि-यत है तब पुत्र यदि उनको दुःख से खुड़ाना चाह-ता है तो ईश्वर की व्यवस्था नष्ट होगी, ईश्वर की इच्छासे विसद्ध होगा। यदि तुम्हारी ऐसी दलील है तो जीवित माता पितागुरु आदि की सेवा शुधू-षा भी तुम लोगों को नहीं करनी वाहिये। क्योंकि

पिछले जन्म के कर्मी का जैसा र शुभा शुभ फल ई-

ध्वर ने उनको देना नियत किया है उस ईश्वरीय व्यवस्था में बाधा डालने वाले तुम क्यों नहीं हुए! ऐसी दशामें जीवित माता पिता की सेवा भी तुम

को छोडना क्यों नहीं पड़ेगी ?॥ अर्थात् अवश्यही इस तुम्हारी दी हुई दलील से जीवित माता पितादि की सेवा गुग्रूषा छोड़ना पड़ेगी। तो फिर बताओ

कि स्नाप कैसे माता पितादिके सेवक स्नीर देश भ-क्त हुए ? श्रीर क्या अपने मृत पितादिकों की मि-

लिक्यत (धन माल) के मालिक होने के लिये तो हीक २ उस मृतक पितादि से संबन्ध मानकर अप-नेको उचका हकदार दताओ परन्तु उस मृत

पितादि के लिये ग्रास्त्र ग्राचा में किंचित् जल फ्रीर अन मात्र दान करनेमें वहाने और कुतर्क करते हो? वाहरे कृतज्ञ आर्थाभासियो ! अफ्रुसेस ! और ल-

ज्जा !!! देखो तो सही कि अन्य धर्मी मुमलमान धाद्याह शाहजहां अपने पुत्र औरंगजेब से हि-

न्दुओं की मातृ पितृभक्ति की प्रशंसाकरते हुए तथा हिन्दुमों के प्रतिधन्यवाद देकर यह कहते हैं कि-"ए पिसर तो अजब मुसलमानी । जिन्दगारा व आव तरसानी॥ जाफरीं हिन्दुआंरा सदवार।

मुदं गांरा दिहन्द दाय में आव"॥॥॥ इत्यसम् विद्वत्स् ॥ इति श्री श्राद्ध-पितृ मीमांशायां मृत संवन्ध निक्ष्पणे नृतीयोऽध्यायः ॥

त्र्रथ चतुर्थोऽध्यायः॥

समाजी—श्री पिएडत जी महाराज ! श्रव मेरे हृदय के संदेह निवृत्त होते जाते हैं। श्रापने बहुत ग्रच्छे ढंग से एवं धर्म शास्त्रोंके प्रवल प्रमाणोंसे
मृतकों के साथ [ग्रर्थात् श्रपने मृत माता पितादि
रूप पितरों के सूरम शरीरों से] संबन्ध होना ठीक
२ सिद्ध किया इसलिये में श्राप को श्रनेक धन्यसाद देकर फिर प्रार्थना रूप में यह भी पूदना चाहता हूं कि कर्मानुसार उच्च नीच योनि में प्राप्त उन्त
हमारे मृत पितादि की श्राद्ध कर्म में दिया हुआ
पिएड-भोजनादि कैसे पहुंचता है ? श्रयवा उन
को श्राद्ध भोजन पहुंचाने साले वे कीन हैं जिन
में द्वतनी खलीकिक सामर्थ्य है ?
सनातनी—महाशयनी! ठीक श्रापने पृद्धा है

यह प्रश्न इस समय बहुधा समाजी लोग सरल सीधे भोले सनातिनयों से पूंछकर फूले छंगों नहीं समानते, ख़र्यात् इस प्रश्न का पूरा ठीक २ उत्तर व समाधान न होने से कठोर इदय बाले एवं शास्त्रानम्भ समाजी भाई उन विचारे आस्तिक एवं कोम्मल इदय बाले सनातिनयों को क्षण भर में घबरा देते हैं और-अपनी जय मान बैठते हैं। अस्तु जो हो॥ अब आप ध्यान देकर सुनो। जैसे गर्भिणी अन्वला स्व पुरुष करके दिये गर्भपोषणार्थ अन्न आनदि को भक्षण कर,स्वतः तृष्त हुई अपने उदर गत

गर्भ (वालक) को भी तृष्त करती है छोर गर्भपो-पणोपयुक्त सन्न देने वाले को भी प्रत्युपकार रूप फल में मंयुक्त करती है सर्घात् उस पुरुष को भी फल भागी करती है। तैमें ही ब्राद्ध के देवता जो व-सु रुद्ध स्वित्तमुतादि पितर हैं वह ब्राद्ध करके तृप्त हुए स्वसंगत पितरों को भी तृष्त करते हैं ख़ौर ब्रा-द्ध कर्ता को भी स्वर्गदि फल में संयुक्त करते हैं इस स्राम्याय में ही—

"देवान् वे पितॄन् प्रीतान्,म-

नुष्याः पितरोऽनुप्रीयन्ते, तिस्र स्राहृतीर्जुहोति,त्रिनिंदधाति,षट् संपद्यन्ते,, ॥॥

त पद्मगत्तः ॥४॥ कृष्ण यज्ञ् आरण्यक अष्टु०१ अष्याञ्जनूर्०॥

अर्थात् देवता रूप पितरों के तृष्त होने के अन् नन्तर मनुष्य रूप पितर भी तृष्त हो जाते हैं, इंगी मे ही प्रथम देवता रूप पितरों के अर्थ तीन आहु-ति करनी चाहिये और फिर मृत मनुष्य रूप पि-तरों के अर्थ तीन पियड देने चाहिये, इस प्रकार पट् ६ संपन्न होते हैं॥ तात्पर्य यह कि आद्धके दे-वता वसु रुद्रादि पितर आद्ध कर्म में—

निमन्नितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् । वायुवच्चानुगच्छन्ति तथाऽऽधीनानुपासते १८६ अध्या० ३ ॥ मन्० निमंत्रित ब्राह्मकों के शरीर में अदूरिय वायुका-य सूक्ष्म रूप से प्रवेश करके पिगड एवं ब्राह्मका भो-जनादि के तत्व # को ब्रह्क करं स्वयं तृष्त होके

* शका— किस प्रकार वे पितृदेव श्राहु भोजन के तत्त्व को पहण करते हैं?

समाधान—यह भी हमारे लिये कुछ आद्यर्ध्य जनक नहीं है क्योंकि जब हम पशु पति कीटों में परमेश्वर प-द्त्त अलीकिक सामर्थ्य को प्रत्यक्ष देख रहे हैं तो वितरोंके प्रति प्रद्त्त अलीकिक सामर्थ्य हम को कैसे आद्यर्थ जनक होगी।

दत्त अलाकिक सामध्य को प्रत्यक्ष देख रहे है तो वितरोक्षे
प्रति प्रदत्त अलौकिक सामध्ये हम को कैसे आद्ययं जनक होगी। अर्थात्—जैसे परमारमा प्रदत्त अलौकिक शक्ति विशेष् प से हस्ती (हाथी) कपित्य फल को भवण कर उस के

श्रम्तर्गत सारांग्र की ग्रहण कर किर लीद के संगयणाविस्यत (जैसे आगे या वैसाही सारा विना स्वाया हुआ) उस फल को निकाल देता है। और जैसे मधुमिक्खयां पुष्पों से मक्तरन्द ग्रहण कर मधुरचना करती हुई पुष्प के किसी अंग्र की हुंस (तोर) न कर उस के सारांग्र कर सुगंधि की ही ग्रहण कर लेती हैं। या जैसे जलौका (जोंक) मिश्रित रक्त

में थे बिक्त रफ केप एकांग को ग्रहण कर लेती है। बाजैये कमल के किसी अग्र को भीन पटाता हुआ अनर (भी-रा) कमल गर्भ केग्रर मकरन्द्र का ग्रहण कर लेता है। जैसे जल भिन्नित दुग्प (चीर) में से हंस पद्यी। जल को एग्य्

जल निवास पुर्व (जार) ने उ हुए नवान्ति सा पुर्व करके केवल तत्व करवूप को ही ग्रहण कर लेता है। और इसी प्रकार अंगुली के स्पर्ध करने से लक्ष्मावती लता (श-मं बूटी) में सकुषित होने की शक्ति भी जान लेनी। और जह लोई में भी चुंबक के सिल्धान से अलीकिक शक्ति जानती। इत्यादि यदि पदार्थों की विचित्र शक्तियों का नि-

फिर उन मृत मनुष्य पितरों को भी तृष्त करते हैं जिन के निमित्त श्राह किया गया है। श्रीर श्राह करने वाले पुरमातमा को भी यथा योग्य स्वर्गीद फल प्रदान करते हैं। इस श्रीभप्रायको ठीक रिष्क हु करने के लिये श्री योगीयाच वल्क्य मुनि जी ने भी श्राचाराऽध्यायमें स्वष्ट दर्शाया है दि—

वसुरुद्राऽदितिसुताः पितरः श्राद्ध देत्रताः ।
प्रीणयन्ति मनुष्याणांपितृन् श्राद्धेन तर्पिताः २६६
आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मीक्षं सुखानि च।
प्रयच्छन्तितथा राज्य प्रीता नृणां पितामहाः२००
वसु तथा रुद्र एवं श्रदितिसुत, ये तीनों पितर जो
श्राद्ध के देवता हैं वह श्राद्ध करके तृष्त हुए-मनुप्यों के पितरों को भी तृष्त करते हैं ॥ और श्राद्ध
कर्तिक प्रतिभी लायु, प्रजा धन, विद्या, स्वर्ग, मोस
यद्यायोग्य सुख प्रदान करते हैं ॥

एवं ग्रंतनुजीने भीष्मपितामह जी के प्रति भी
यही समाधान किया है कि—

आप्यायितास्रते सर्वे पुनराप्यायन्ति ॥ (महाभारते)

रूपण किया जाय तो एक यही शहरकचा होजाय, इसीसे इतने में ही सन्तुष्टहोना चाहिये। सारांग्र यह है कि इस ही प्रकार परमारना प्रदृत्तप्रातीकिक ग्रक्ति विग्रेष से पितर देवता भी श्राहीय पदार्थों के सारांग्र (तत्व) की प्रहणक-रत्ति हैं ॥ इति॥ सब देवता रूप पितर प्रथम आप स्वयं तूप्त होकर किर अन्य मनुष्य पितरों को तृप्त करते हैं।

तया च-

तथा च---एते स्नाहुं सदा भुवत्त्रा पितृत् संतर्पयन्त्युत ।

यत्र क्षचन धर्मज्ञा वर्तमोनान्हि योगतः ॥ विष्णधरमेत्रिः॥

ये जो वसु बद्ध खदितिसुत, ब्राह्म भोजन से तृ-प्त होकर फिर मृत पुरुषों को तृप्त करते हैं चाहे वे मृत मनुष्य पितर किसी भी योनि में हों। क्यों कि वह धर्मज पितृदेव योग वहा कर खलौकिक सामर्थ्य से हरएक प्राणी को जानते हैं ॥ इत्यादि धर्मणा-

स्त्रोंके ममाणों में स्पष्ट सिद्ध है कि हमारे मृत पितर अ-पने अच्छे वा बुरेकर्मानुसार चाहे वे किंसी भी यो-कि में कर्यों न हों तो भी उन्हों को वहां उसी ही यो-

नि में क्यों न हों तो भी उन्हों, को वहां उसी ही यो-नि में पितृदेवों के अलोकिक सामर्थ्य से पिएडमोज-नादि श्राद्धीय पदार्थ सूक्ष्म रूप में पहुंच जाते हैं। और जो श्री दशरय * महाराजादि जैसे अत्यन्त उ-तम पुषय कर्मों के प्रभाव से देव पितर आदि उत्तम योनियों में गये हुए हैं वे स्वयं अग्निदेवकी सहायतासे

चेद मंत्रों द्वारा आहूत होकर आद्ध कर्म में निमंत्रि
• यह श्री द्गरण महाराजकी कया आने पंचन श्रध्याम नेःस्पष्टक्रण से वर्णन की गयी है—जहां श्री जानकी
की निमन्नित मुनियो के देह में अपने श्र्यंगुर द्यारणकी
का दर्शन करके लिन्जित होकर दिप गई थीं।

त ब्राह्मणों के देह में अदूर्य रूप में आकर पिंगडभी-जनादि का तत्व (सारांश) ग्रहण करके तुप्त होजा-ते हैं। इस की सिद्धि में वेद,का प्रमाण यह है कि-

येऽग्निदग्धा † येऽनग्निद-ग्धा मध्येदिवः स्वधया मादय-न्ते। तेभिः स्वराडससुनोतिमे-तां यथावशं तन्वं कल्पयस्व, मंत्र १४॥

ऋग्वेद अ० ६ व० १८ मरड० १० अन्० १ स्०१५ प्राप्ट । भाग्र यज् अध्या १८ मं १६ में (अनिन-च्वात्ताः) यह पद हैं॥

स्रन्ववार्थ .- ये (स्रग्निद्ग्धाः) श्नशानमा-

प्ताः ये च (स्ननिन्दग्धाः) श्मशानकृत्यरहितः ये च (दिवो) द्यु लोकस्य मध्ये स्वधया (मादयन्ते) त्प्ताश्वरन्ति, है (स्वराट्) दीप्यमान अग्ने ! (तैः पित्मि) तेभ्यः पित्भय (प्रमुनीतिम् (प्राणयुक्तां (ए-

करपयस्य । महा पर को अग्निद्रथ पद से जीवित वितरी का प्र-

ताम्) भक्षण योग्या तन् (ययावश) यथा कामं त्व

एक करें तो उन महाययो को अवश्य ही द्वितीय शध्याय में उक्त पद की मीमासा देख कर अपना सम्देह निरुत्त क-रना चाहिये ॥

भाषा-हे स्वराट्-दीप्यमान अग्ने! (ये अग्नि-दग्धाः) जो हमारे पितर अग्नि में दग्ध हुए प्रमणान **पंस्कार को प्राप्त हुए हैं फ़ौर (येऽनिग्नदग्धाः)जो** प्रमणान संस्कार को [संन्यासी होने के कारण वा कि ही अन्य कारण है] नहीं प्राप्त हुए हैं और (दि-बोमध्ये) अन्तरिक्ष लोक में वा स्वर्ग लोक में स्वधा मन्त्र संस्कृत अञ्चली प्राप्ति से जो (मादयन्ते) तृष्त हो कर विचर रहे हैं (तैं: पितृभि:) तिन पितरों के प्रति (अधुनीतीम्) प्राणयुक्त (स्ताम्) हवि भक्षणके योग्यता वाली इस (तन्म्) देहकी कल्पना करो जिससे (यथाकायम्) यथेष्ट यहां खाकर हवि भक्षण करें। इस वेदमन्त्र के सीधे २ भाषार्थते स्पष्ट सिद्ध है कि स्वर्गादि उत्तम लोकों में जो प्रत्यन्त प्रयक्तमाँ से गये हैं वे हमारे पितर अग्निदेव की कृपा एवं महायताचे मूक्म श्रोभन देह धारण करके यथेष्ट यहां हमारे पितृयज्ञ (ग्राद्ध) में आ़कर हवि भक्षण करते हैं। इचलिये नीचे लिखे वेदमन्त्रों से पुरुषदात्र समर्थ पितरों को यसमें यहां बुलाने के लिये तथा मध्यम यानी साधारण पुर्यकर्म से म-न्द्ययोनिमें प्राप्त एवं (निकृष्टं) पापकर्मान्तार पशुपक्षीसादि योनिमें प्राप्त समर्थ पितरोंकी व-हांही उसी योनिमें तृष्त करनेके लिये वा उन्होंकी उच्चगति करने के लिये ग्राह्मकर्म में अग्निदेव की मार्थना पूर्वक स्थापना करके उस में आहुती दी

कराया जाता है। सो ययां—

जुणन्तंस्त्वानिधीमस्युणन्तः समिधीमहि । जुणन्नु'ण्तः स्रावंह

प्रितॄन्ह्विष् अत्तवे॥ ७० । ग्इ०

अध्यारं १९॥ ७०॥ मन्त्रार्थ – (उग्रन्तः त्वा निधीमहि) हे अग्ने! तुम्हारी इच्छा करते हुए हम तुमको स्थापन करते हैं (उग्रन्तः समिधीमहि) यज्ञ की इच्छा से तुम

को प्रज्वलित करते। हैं (उँग्रम्, उधतः पितृम्, ह-विषे, अत्वर्वे, आंवह) चाहते हुए तुम, हिव चा-हने वाले हमारे पितरों की ईप यद्य में हिव भन्नण करने के लिये बुलाओ ॥ ९० ॥ और——

ये चे ह पितरो येचनेह यां इचे विद्य याँ शार्ज च न प्रविद्य । त्वं वेत्य यतिते जातवेदः स्व-धार्भिय्ये ज्ञु सुस्तिज्ञ पस्व।६०॥

धाभिष्ठये ज्ञश्च सुस्तंतञ्ज पस्त्र १६०॥

यज्ञुः कं १९॥ ६०॥

जो मेरे पितर इंचे लोक में हैं स्रचीत साधारण पुरुष वा निकृष्ट कर्मानुसार मनुष्य वा पशु

पक्षादि योनि में प्राप्त होकर इस पृथ्वीलोक में रहते हैं। स्तीर जो पितर इस लोक मे नहीं हैं अ-यति अत्यन्त उत्तम पुर्व मे स्वर्गादि उत्तम लोकों में हैं (च, यान्, विद्वः च, गान्, न, प्रविद्मः) ग्रीर

जिन पितरोंको हम जानते हैं, तथा जिन को स्म-रण न होने से नहीं जानते हैं, (जातवेद:, ते, य-ति, त्वम्, उ, वेत्य,) हे अग्ने ! वह पितर जितने हैं वे तुम हीं जानते हो (स्वधाभिः, मुकृतं, जूप-

स्व) सो पितृयज्ञ द्वारा उन पितरों के तृष्त्यर्ध श्रेष्ठ सन्न को सेवन करो,।॥ ६० ॥ यहां "इह,, यब्द मे जीते पितरों का ग्रहण

नहीं होता किन्तु जिन्हों ने कर्मवध इस लोक में देह धारण किया है अन्यया "न "प्रविद्म,, इस का शब्दार्थ नहीं घट सकता "विद्म,, शब्द का शर्च यह है कि जिनको में अपना पितर जानता

हूं परन्तु कहां हैं यह नहीं जानता हूं अयवा जिन् की जानता हूं बाप-दादे-परदादे, जिन की नहीं जानता इक्कींच पीढ़ी तक यह तात्पर्य है ॥ तथा-यर्मग्ने कव्यवाहन् त्विच्-

न्मन्यंसे र्यिम्। तुन्नी गीर्मिः श्र-वाय्यंन्देवन्नापंनया युजंम् ॥६४॥ यज्ञा० ,२४० ९७ ॥ ६४ ॥

हे पितरों को हवा पहुंचाने वाले अग्ने ! तुम भी जिस हवि रूप अनुकी उत्तम जानते हो (नः

तं, गीर्भिः, श्रवाय्यं युजम्, देवजा, आपनय) इस लिये हमारे उस वषट्कार स्नादि वाणियों से सुनने योग्य्ं उचित हिंद को पितृ देवताओं के मित सब स्नोरसे पहुंचाओं ॥ ६४ ॥

इत्यादि वेदमन्त्रों के आग्रय में स्पष्ट सिद्ध हैं कि अग्नि देवता भी स्वधारूप अन्नकी आहुतियोंको सूक्ष्मरूप में लेजा कर वहां पितरों के प्रति पहुंचा देता है।

चमाजी-पिंडत जी महाराज! यह भी तो

मुनाओ कि जब यह किसी को भी मालूम नहीं कि हमारे पितर स्वर्ग में गये वा नरक में तब उन्होंको अन्न वस्त्रादि भेजना क्या विना पते के पुरुष को डांक द्वारा वस्तु भेजनेके तुल्य नहीं और ऐसी अ-वस्त्या में उन को भेजने के लिये अन्न वस्त्र ब्राह्मणों

के हवाले करना सीर फिर उन की रसीद का न पहुंचना क्या यह सन्देह पैदा नहीं करता कि न जाने यह माल भेजने वालोंने ही खा लिया हो ? इसलिये हमारे पितरों से माल पहुंचने की रसीद न मिलनेसे हमें विस्वास कैंने हो कि टीक २ उन्हों

को मिला? चनातनी-महाशय जी!यह तो मैं पहिले शास्त्र ममाणोंचे स्पष्ट चिद्ध करचका है कि हमारे मत पि-

प्रमाणोंचे स्पष्ट चिद्ध करचुका हूं कि हमारे मृत पि-तर-कर्मानुचार चाहे किसी भी उच्च, नीच, योनि में वा स्वगं नकीं क्वों न गये हों तो भी पितृलोक के श्रिधिहाता चसु-सदिति सुतादि पितृदेव

एवं अग्नि देवता भी, अपने योगयलचे तथा अली-किक सामर्थ्य से उन पितरों को जानकर वहां ही उन्होंको तृप्त करते हुए मुखभागी करते हैं। वाकी रही हम लोगोंको पूरा २ विश्वास हो जानेके लिये उन्हों की "रसीद,,। सो यह भी ठीक नहीं क्योंकि

श्राद्धका संकल्प करते ही समय रसीद लिखी जाती है कि सृष्टिके आरम्भसे वैवस्वतादि अमुक २ मन्व-न्तर, चतुर्युगी,युग, सवत्वर, तिथि, वार, मुहूर्त्तादि स-

मयमें, अमुक देशमें, अमुक वर्ण, नाम गोजादि, वाला में पुरुष वा स्त्री अमुक २ गोत्र(दि वाले ब्राह्मण को श्रमक २ पिता मातादि के निमित्त श्रमुक वस्तु दा भोजन वस्तादि देता हूं। वहां उस समय बैठे सब स-नुच्यों की साक्षी वा गवाही लिखी जाती है। सौर

देवता लोग भी उसमें साझी लिखे जाते हैं इसी वि-चार से मनुजी ने कहा है कि---मन्यन्तेवेपापकृतो नकश्चित्पश्चतीतिनः। तांस्तुदेत्राः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुपः॥

मन० अ० ८॥ पापी लोग मानते हैं कि यहां एकान्त में हम को पाप करते कोई नहीं देखता, परन्तु यह भूल है क्यों कि उन की देवता लोग और अन्तर्यामी ईव्रवर

देखा करता है। जी देवादि पाप के गवाह होते हैं वेही भ्राद्वादि पुरवकर्म के भी गवाह हो जाते हैं।

वह रसीद आकाशमण्डल रूप कागन में वाणीरूप स्याही से तथा वायुरूप लेखनी से लिखी जाती है।

जिये फोनोग्राफ के छोटे से साकाश्रमें बोले हुए शन्द (राग) भर जाते हैं वैसे ही श्राद्धादि के दान की यह संकल्पात्मक रखीद महाकाश्र में भर जाती है इसीलिये पतञ्जलि मुनि जी ने शब्दों का स्थान स्नावाश्र (स्नाकाश्रदेश: शब्द:), को कहा है। स्नानकाश्र के ही प्रदेशान्तर में स्वर्गादि किसी मोनि में श्राद्धादि दान का सुख सन्तोय प्रसन्नतादि रूप फल जब पितरों की माप्त हो जाता है तब यही पाने वाले के उस रसीद पर हस्ताक्षर होते हैं। और जब शाद्ध करते ही समय वा करचुकने पर मन वाणी शरीर में वा स्त्री पुत्रादि सब कुटुम्ब में सर्वंव कुश्रस्ता प्रसन्नता स्नानन्द मंगल दीख पड़े तब यही शाद्धफल पाने की हस्ताक्षरी रसीद स्नार्क्ष तब यही शाद्धफल पाने की हस्ताक्षरी रसीद स्नार्क्ष

पडलस्य रसीद पर दस्तखत हो आये। श्रीर यदि श्रमधन्नता अमंगलादि प्रतीत हों तो मानलो कि सपल नहीं हुआ और रसीद पर दस्तखत नहीं किये
तब यजमान तथा श्राद्धादि भीक्ता ब्राह्मण का श्रास्लमर्यादा से विसद्ध करना रूप श्रपराध दोनों वा
किसी एक का हो सकता है उस दशामें केवल ब्राग्रण का ही श्रपराध मान लेना भी इसतर्फी उडारो कर देना है। श्रमिशाय यह है कि रसीद नाम

विश्वास हो जाने का है-पदि विदेश से आई रसीद पर भी विश्वास न हो तो वा अन्देद हो जाय कि अन्य कैंसे हस्तासर अन्य भी वना सफता है और फिर पमद्वारा पूर्वने पर भी उसी और से लिख

मान लेना चाहिये अर्थात् जानो उसी आकाश म-

सकता है कि हां मुक्ते रु० मिलगये तब विश्वास न हो तो यहां की रसीद भी रही जानो खीर प्रव्दम-माण रूप वेदादि शास्त्रों पर जिनका अठल विश्वास है उन को संदिग्धात्मक रशोद की श्रपेक्षा (इच्छा वां जरूरत) ही नहीं है। यदि किसी ऐसे निकट-वर्ती। अथवा परमं मित्र द्वारा कोई वस्तु समाजो भनुष्य अपने जीवित विता के पास भेजे कि जिस का सर्वांग में पूरा २ विश्वास हो तो वहां समाजी कदापि रधीद नहीं मांगेगा और मांगे तो जानी उस चक्र वा परम मित्र का पूरा २ विश्वास नहीं तव वह चंक वा बनावटी भी रसीद पेश कर सकता है। अ-न्तमें जबतक विश्वास न करो सभी रसीद आदि रही हैं जब विश्वास टूढ़ होगया तब रसीद की आवश्य-कता सनातनधर्मियों की नहीं है। और सर्वशुद्ध स-नातन धर्मावलम्बियों को वेदादि शास्त्रों पर दह विश्वास है कि इस निम्नदर्शित वेदमन्त्र में अग्नि-देवने हमारे पितरींको श्राद्धान पहुंचाया । श्रीर इसी ही वेदमन्त्र की हमारे पितरों की तरफ से ईखर द्वारा लाई हुई भन्नी रसीद समभते हैं लीर यह भी विश्वास करते हैं कि ब्राह्म करने से हमारे पितरों की तृष्ति, तथा निःचन्देह चद्गति होती है। स्त्रीर भाद्ध करने वाले हम लोगों को भी यथायोग्य धन पुच-स्वर्गीद मुंख प्राप्त होता है--यवा सञ्ची र-सीद कप घेदमन्त्र-

त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवा-ड्ढव्यानि सुरभीणि क्रत्वी, प्रादाः पित्रभ्यः स्वध्या ते ऋक्षत्रद्धि त्वं देव-प्रयता हवीं षि,,।

ऋ० अ० ६ व० १८ मगढ १० अनु० १ सू० १५ अष्ट १३ मं० १२ शुक्तपज्जु प्रा १८ में ६६॥ कृत्र यज्ञु का० २ प्रा०२६ प्रानु

अन्वयार्थ:-हे अग्ने ! त्वमस्माभिः (ईडित:)

स्तुतः हव्यानि ग्रस्मदीयानि मुगन्धीनि कृत्वा (ग्र-वाट्) ख़वासीत् प्राप्तवानिव ऊड्ह्वा च (स्वधवा) पितृमंत्रेण पितृभ्यः (प्रादाः) दत्तवानिस ते च पि-तरस्तद् हविः (स्रक्षन्) भित्ततवन्तः, हे जोतवेदस्त्व-

मपि (प्रयता) पवित्राणि हवींपि (ग्रद्धि) भक्षय । भाषा—हे ग्रग्ने ! हम करके स्तुत हुये (त्वम्) न्नाप हमारे दिये हुए हव्य को सुगन्धित कर हवन द्वारा स्वीकार किया, और स्वीकार कर फिर (स्वध-या) पित्त्रिय स्वधा इस मंत्र से हमारे पितरों के प्र-

ति प्रदान किया है स्रतः स्नाप करके दिया हुसा जी हिव है उस हिव को (ते) वे हमारे पितर भन्नण क-रते हैं । हे (जातवेदः) दिव्यप्रकाशस्वरूप अग्ने! (त्व-म्) स्नाप भी इन शुद्ध हिवयों को भक्षण करो स्नीर-

''उदीरतामवर उत्परास उन्म-

ध्यमाः पितरः सोम्यासः । ऋसुं

यईयुरवका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ म्हवेद बाजवने० व्यः १८ मर्ग

अन्वयार्थः—अवरेऽरिमन् मूलोकेऽविध्य ताः पितर उदोरतामूध्वं लोकं गच्छन्तु। मध्य

मा मध्यमस्था अन्तरिक्षस्थाः पितरः उदीरतां पर् रासः परलोकेचु लोकेऽवस्थिता देवत्वं प्राप्ताः पि तर उदीरतां तताऽ प्यूष्वं ब्रह्मलोकादिषु गच्छ-

न्तु । कोदृशाः पितरः सोम्यासः शान्तिशोखाः सो-मपानाहां वो। ये च असुमीयुर्वायुरूपं प्राप्ताः वा-युकायाः सूक्ष्मादृश्याः स्यूखित्रहाः । अवृकाः

युकायाः सूक्ष्मादृश्याः स्यूलावग्रहाः । अवृकाः शत्रुमावरहिताः समदर्शिनः ऋतज्ञाः सत्वज्ञाः यज्ञज्ञा वा स्वाध्यायनिष्ठाः वाते नेाऽस्मान्हवेषु आहूानेषु अवन्तु रक्षन्तु इति प्रार्थयामः॥

भाषा-(अवरे) इस भूलोक में रहने वाले पि-तर लोग (उदीरताम्) जपरी खर्गलोक की प्राप्त हों (सोम्यासः) आन्तिशील चन्द्रलोक वासी वा यज्ञों में सोमपान करने वाले (मध्यमाः) मध्य-

यज्ञों में सोमपान करने वाले (मध्यमाः) मध्य-अन्तरिक्ष लोकस्य पितर (उदीरताम्) जध्वंगति को माप्त हों और (परायः, उत्) * स्वर्गलोकस्य * स्वर्गादि लोकों में रहने वाले पितरीका गरीर वा-

युकाय मूक्ष्म आहर्य होता है यह बात उपरोक्त "आधु य हैयुः" इस बेद वाक्यार्य से स्पष्ट सिद्ध है कि जिन्होंने के-बल प्रायमात्र को ही धारण किया है। यहा स्यूल गरीर का स्पष्ट निपेष है। वे पितर कैंसे हैं कि (असं य ईयुः) जिन्होंने प्रा-गमात्र को धारण किया है अर्थात् वायुकाय मुक्त अदृश्य ग्ररीर वाले स्यूल मनुष्यादि कासा शरीर जिन का नहीं है। (स्रवृक्ताः) जिन का कीई शब नहीं (ऋतज्ञाः) जो सत्य की वा यज्ञ की जानने बालें हैं (ते, पितरः) वे पितर लोग (नः) ह-मारी (हवेषु) ग्राद्धादि में आवाहनके समय (अ-वन्तु) रक्षा करें यह हमारी पार्थना है ॥ प्रिय महाश्रय जी ! इन दो मन्त्रों से स्पष्ट िसद्ध है कि अग्नि देवता श्राह्मकर्म में निमन्त्रित ब्राह्मणोंके मन्त्रोच्चारणचे दी हुई पितरों के निमित्त आहुतियों को हमारे पितरों के प्रति वहां पहुंचाके फ़ाया, ज़ीर उन हमारे पितरों की क्रमपूर्वक जपर स्वर्गीद लोकों में गति होना एवं स्वर्गीद लोकों में रहने वाले हमारे सामर्थवान् पितर ब्राह्म से तृप्त हो कर हमारी रक्षा करना इत्यादि चय वार्तों का विख्वाच कराने वाली सच्ची साझीरूप "रमीद" जब हम को परब्रह्म द्वारा वेदादि शास्त्रों में लिखी मिली है तब हम की संसारी काग़ज़ी रसीद की कीनसी आवश्यकता है अर्थात् संसारी कागन के रसीद की उन नास्तिकों की छावरय-कता है कि जिन्होंका हमारे वेदादि धर्मशास्त्रीं पर विश्वाम नहीं। इस लिये कहा है कि "नास्तिकी षेदनिन्दकः" जिन्हों का वेदशास्त्री पर विश्वास

नहीं अर्थात् जो वेद की निन्दा करते हैं वेही म-नुष्य नास्तिक कहाते हैं इसलिये हम लोगोंको चा-हिये कि वेद से दिखाये गये गुद्ध ब्राद्ध को विधि-पूर्वक करके अपने मृत पितरोंकी मद्गति करें और वेद की आजाको पालन करके अपने हिन्दू मनु ष्यत्त्व को सार्थक करें यही मेरी पार्थना है ॥ समाजी-श्री परिडत जी महाराज ! यह तो बहुत अच्छी न्यायरूप सत्य दलील एवं वेद मन्त्रों के प्रवल प्रमाण से ठीक श्विश्वास दायक "रसीद" दिखलाई । अब मुभे टूड विखास हुआ लेकिन एक बात और पूछने की है सो यह कि मृतमाणी अपने किये पाप-पूर्व कर्मों के अनुसार यदि वह पशु, पसी वा यस, रासस, पिशाच अयवा देवता होजाय तो फिर ब्राद्धकर्म में हमारा दिया हुआ सीर, घी, हलुख़ा, लड्डू, पकवान कचीड़ी वगैरः पदार्थ उन्हों

को कैसे देहानुकूल रुचिकर (प्रिय) होंगे ! अर्थात् पगुओं की घास, मिस्ओं को मांस, राह्मस-पि-शाचों को रुधिर और मांस एवं देवताओं को अ-मृत वगैरः जब अपने २ शरीरों के अनुकूल मिय हैं तब हमारे दिये हुए उक्त सङ्डू कचीड़ी आदि पूरी पक्तवानीं से उन्हों की कैंसे रुचिपूर्वक तृष्ति होगी? श्रयात् मेरा दिया हुआ सब उन्होंके प्रतिकृत होने से वृथा ही जायगा ! ॥ सनातनी-महाशय जी! पबराख़ी मत कुछ

अपनी भी सक्क वा बुद्धि काममें लाखी केवल मन

करने ही पर सवार न हो जाज़ो ! महाशय जी सुनो जब कि हमारी खंबेज सरकार के राज्यमें भी ऐसा अन्धेर नहीं है कि जब हम लोग, जर्मन-फ्रान्स वा जापान, रिश्रया वगैरः विलायतींमें गये हुए अपने मित्र को यदि कुछ रुपया भेज देना चोहें तो क्या येही हमारे एक तोलेके वजन वाले विक्टोरिया बा एडवर्ड अथवा शहन्शाह जार्ज दी फिफ्य के मु-हर (प्रतिमा) वाले रुपये वा नोट वगैरह जी यहां पोस्ट आफिस में मनीआर्डर करके दिये जाते हैं वो क्या वहां उक्त विलायतों में भी हूबहू उनही मुद्रर वाले रुपये वा उस ही नम्बर वाले नोट ह-मारे मित्रको मिलेंगे वा उक्त रुपये नीट वहां अन्य बादगाहत होनेके कारण उपयोगी हो सकेंगे ? नही कदापि नही। क्योंकि जैसा २देश और जैसी २ राज्य-मत्ता होती है उस के ही अनुकूल रवाज व हुक्स मू जिब उसी ही सिक्क्षेव मुहर के गिनी वा पाउ-न्ड वर्गेरह रूपमें हमारे मित्रको मिल जायगे फ्रीर उपयोगी भी बन सकेंगे तो इसी ही रीति से पर-ब्रह्म के सदल राज्य में पितृलोक के सधिष्ठाता वस्वादि पितर यहां श्राद्धमें पोस्टमास्टर रूप ब्रा-हाणों के मार्फत हमारे पितरो के निमित्त दिये हुए लड्डू-पूरी-कचौरी वगैरह माद्वीय पदार्घ के सा-रांग्र को ग्रहण करके हमारे मृतिपतरों के प्रति चाहे षे किसी भी योनि में पशु, पक्षी, राक्षस, देवतादि क्यों न हुए हों तो उसी ही योन्यन्तर्गत देहके छ-नुकूल करके दे देते हैं। इसलिये हमारे (प्राप्त) यानी पूर्ण धर्मात्मा पूर्ण विद्वान् ऋषि-मुनियों ने कलिकाल में नास्तिकों द्वारा उठने वाले ऐसे नि-कम्मे खोटे २ मवालोंको निर्मुल करनेके लिये और स्नास्तिक जनों की ज्यादा २ सन्तोष वा विश्वास दिलाने के लिये महाभारतादि धर्म इतिहासों में स्पष्ट करके लिखदिये हैं कि-देत्रीयदिपिताजातः शुमकर्मानुयोगतः । तस्यात्रममृतंमृतवा देवत्वेऽप्यनुगच्छति ॥१॥ गान्धर्वेभोग्यह्रपेण पशुत्वेचतृणंभवेत्। : श्राद्वात्रंवायुह्मपेण नागत्वेष्यनुगच्छति ॥२॥ पानंभवतियक्षत्वे राक्षसत्वेतथाऽमिषम्। दानवत्वेतथामांसं प्रेतत्वेहिधरोदकम् ॥३॥ मनुष्यत्वेऽक्रपानादि नानाभोगरसीभवेत ॥ महाभारत-श्रीदेवन मुनी इवर के वचन ॥ अर्थात् यदि मनुष्य शुभकर्मानुसार मरकर देवता वनेगा तो उस की वह बाद्ध का सन्न समृत रूप में-प्राप्त होता है, एवं गन्धर्व जाति में भी-ग्य रूप मे, पशुगीनि में (तृष) घाच रूप मे, नाग-योनि में वायुक्त से, यक्षयोनि में मदिरा रूप से. राक्षमयोनि में-आमिष रूपमे, दानवयोनिमें मांस रूप से, प्रेतमोनि में कथिर रूपसे और मनुष्ययोनि में अन पानादि रूपसेवह श्राद्वान प्राप्त होता है। इसलिये हम लोगों का जो सात्त्विक शुद्ध पवित्र

सन्न घृत-दुग्धादि मिय पदार्थ हैं वे ही स्राह्मकर्म में मुपात्र झाह्मणों के मार्फत मृतिपतरों के निमित्त देना चाहिये द्रवलिये—शास्त्र में कहा है कि—'यदन्न: पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः,-ंभ्य्रयात् जिस पुरुषकी जो स्वाभाविक # खुराक है वही देव-ताओं के प्रति भी स्र्पण करे॥

तात्पर्य यह है कि इस मनुष्यमात्र की गुद्ध सात्विक अझ, घृत, दुग्ध, फल फूलादि खुटाक हे ही आद्धादि गुभ कर्नों में पितृ-देवों की पूजा करनी चाहिये और उस हमारे दिये हुए पदार्थों को सूक्ष इस में लेजा कर पितृदेव हमारे पितरों के प्रति य-चादेहानुकूल करके तृष्त करते हैं और हम लोगों को भी आयीर्वाद देकर आनन्द सुखका भागी करते हैं ॥ ॐ तत्सदिति गम्॥

इति श्री श्राहृपिद्यमीमांसायां मृतिपित्रभ्यो भोजन-प्राप्त्यथं शास्त्रोक्त मार्गप्रद्-श्रीन चतुर्योऽध्यायः॥

* हम मनुर्यमात्रकी साभाविक यही श्रव-पृत-हुग्ध -

फल फूलादि सात्विक शुद्ध पवित्र खुराक है। श्रीर यह न समकता चाहिये कि-जो मासाहारी मनुष्य हैं वे मास स-गेरह देवताओं के प्रति श्रपंत करें-नहीं नहीं, कदावि नहीं!! हम मनुष्यमात्र की स्वामाविक खुराक मांस स्वीरह कदावि महीं है देशों मेरा बनाया हुवा "मांसमहत्त्वनिषेध" नामक

ट्रेक्ट कि जिस में सूब विचार पूर्वक यह सिंह किया गया है कि मनुष्पमात्र की स्त्राभाविक सुराक श्रम्न है॥

त्र्रथ पञ्चमोऽध्यायः ।

समोजी—श्रीपिण्डत जी महाराज! श्रव कृपा करके यह बताश्रो कि पितृकोक इस मनुष्यलोक से भिन्न कोई सम्य लोक है क्या और यह कहां स्थित है! तथा उस लोक के स्रिधिष्ठातृषितृदेशोंका शरीर कैसा है और उनका राजा कीन है! तथा हे स-हाराज! दयापाल! यह भी बताइये कि हम मनुष्य मात्र को इन पितृलोक निवासी पितृदेशों के पूजन सत्कार (श्राद्ध-तर्पण) करने की क्या खावश्यकता है! सर्थातृ श्राद्ध तर्पण न करने से क्या कोई दोष वा हानि है!

र्घ और ठीक २ हैं। अब आप श्रद्धापूर्वक क्रमधे इन मझों का वेदादि चच्छास्त्रममाणों से एवं मबल यु-क्तियुक्त समाधान श्रवण करो॥ यथा—मथम आप का मझ यह है कि पितृ-लोक मनुष्यलोक से भिन्न कोई अन्यलोक है और

सनातनी-महाशय जी ! ये आप के प्रश्न यथा-

यथा—प्रथम आप का प्रश्न यह है कि पितृ-लोक मनुष्पलोक में भिन्न कोई अन्यलोक है और यह कहां है ? मो हे महाग्रय जी देखो शतपय ब्राठ वेद में स्पष्टरूप में दिखलाया गया है कि-पितृ-लोक एक स्वतन्त्र लोक है। जैसे कि---

अध त्रयोयावल्लीका मनुष्यलीक: पितः लोको देवलीक इति । शतः ब्रा० १४ । ३ । २४ ॥ प्रचति तीन भोग भूमिर्वे हैं-मनुष्यलोक, पि- तृलोक और देवलोक । इनमें जीव कर्मानुसार प्राप्त होता है । और केवल निषद्ध कर्मो का कर्ता जीव नरक को ही प्राप्त होता है । इससे सिद्ध हुआ कि पितृलोक, मनुष्य और देवलोकों से जुदा सक स्वतन्त्र लोक है । तथा च—

"दक्षिणाप्रत्रणोत्ने पितृलोकः" यतः त्राः १३१ टाप्राण्य कर्मणापितृलोकः" वृहद्दारण्यक ।

दक्षिण दिशामें पितृलोक है । शुभकर्मो करके

दक्षिण दिशाम पितृसाम है । युवान्स् पितृसोस में वास होता है । यथा— त्तेवाएन आहुतोहुते उतकामतस्ते अन्त-रिक्षमाविशतस्ते अन्तरिक्षमेवाह्वनोयं कुर्वाते

इत्यादि॥ शतपथ ब्रा० ११।६।२।६॥ तथा—अथ ये यज्ञेन दानेन तपसालोकं जयन्ति ते धूममभिसमचेन्ति, धूमाद्रात्रिं रात्रेपद्मीय-माण पक्षमपरपक्षान्यान् पणमासानदक्षिणादि-

साण पक्षमपरपक्षान्यान् परमासानदृष्ट्रणादिः त्य एति मासेम्यः पितृष्ठोकमित्यादि ॥ श्रतपथ प्रयात्-मरण समयमें इस माणोकी तीन गति होती हैं, देवलोक पितृलोक, प्रधोलोक, उसमें पि-तृलोक का गमन कहते हैं कि-यज्ञ दानादि कर्म करने वाले मनुष्य धूप से राजि में कृष्णपक्ष, उस से दक्षिणायन और वहां से पितृलोक को गमन करते हैं। और जो सत्कर्मा नहीं व कीटादि योनि को

माप्त होते हैं। इस से स्पष्ट सिद्ध हुआ कि पितृ-

यचादि शुभ कर्म करने वाले पित्लोकादि उत्तम लोकोंमें जाते हैं। और पित्लोक एक स्वतन्त्र चि-

रकाल स्नानन्दप्रद लोक है। यथा---(स एक: वित्णां चिरहोकडोकानामानन्द:०) तैसिरीयोधनिषद् ॥

सो यह पितृलोक (विधूध्वभागे पितरो वसन्ति)

[विद्वान्तिशिरीमणी] चन्द्रलोक के भी जपर है जहां पितरोंका नि-वास है। तथा-उदन्वती द्योरव मापी लमतीति

मध्यमा । तृतीया ह प्रद्योरिति

यस्यां पितरत्रासते। क्षयर्वे वेद् कार १८ छन्। २ मा ॥ ४८ ॥

इस मन्त्रका सम्पूर्ण भावार्थ आगे द्वितीय छ-ध्याय में स्पष्ट करदिया है वहां ध्यान देकर पढेंगे तो अञ्जी तरह चान होगा कि "प्रद्यी" नाम वाले

श्राकाश के तीसरे भाग में पितृलोक है जहां पितर देव रहते हैं। सब सापका द्वितीय मन्न है कि पित्लोक नि-

वासी पितरों का शरीर कैंचा होता है और उन्हों का राजा कीन है? सी हे महाश्रम जी ! इन पित्लोक निवासियों का ग्ररीर वागुतत्व मधान है। यथा-

ग्राप्यतेजसवायव्यानि ली-

कान्तरे प्रारीराणि । अवर्ष ३। १। २ ।२०॥

स्रयात्-जलतत्व, तेजतत्व स्रयवा वायुतत्वप्र-पान गरीर वनकर, जीव लोकान्तरों को जाता है। पार्चिवतत्व (पाञ्चभौतिक पृथिवीतत्वप्रधान स्यूल) ग्ररीर से नहीं जाता है। इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि जीव वायु स्नादि तत्वप्रधान गरीर धारण क-रके पितृ स्नादि लोकान्तरों में जाता है इससे बढ़ां के निवासियों का ग्ररीर स्नवश्य ही वायु स्नादि तत्व प्रधान है। स्नर्धात् वायु कायरूप वे पितर हैं। स्नीर वायु इन चर्मचस्नु यानी सांसारिक नेनों से देखने में नहीं स्नाता है इसलिये ये पितर वायुतत्वप्रधान सू-हम ग्ररीरधारी होने से हरएक मनुष्य को देखने में नहीं क्नाते हैं इसलिये बेदमें स्पष्ट दरग्राया है कि-तिरह्नववै पितरी मनुष्येभ्य: - ग्रवपण २(३।॥।३१॥

मूहम होने के कारण वा यथेच्छाचारी होनेके कारण पितर मनुष्यों से अदृश्य खिपे से होते हैं। इस से सिद्ध हुआ कि जो सूहम अदृश्य हैं जो सर्व साधारण मनुष्यों के दृष्टिगोचर नहीं होते से पितर अवश्य हो सूहम ग्रदीरी वायुकायकप होने से अदृश्य हैं परन्तु पूर्ण गुद्ध-पूर्ण ग्रद्धा भक्तियुक्त, पूणधर्मातमा-सत्यवादी आहितक मनुष्यको से पितर सार

हात भी दीख पड़ते हैं और दर्शन * देते हैं। इस लिये उक्त मुित में "इव" शब्द कहा है। यही वा-युकाय सूक्ष देहधारो पितृदेव श्राद्धकर्ममें आवाहन मन्त्रों से [तत् पितृलोकाड जीवलोकं अभ्यायन्ति] गत्रतप ब्रा० ९ कां १३ म० ४ कं० ६॥ * एकवार श्रीमर्यादापुरुपोक्तम (परमात्मा के पूर्वा-वतार) श्रीरामयन्त्रजी महाराज ने बन में पिता श्री दश-रथ जीका एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया—यह कथा बड़ी मनोहर है-श्राद्धसमय में श्राद्धभोक्ता मुनियों के देह में श्रीजानकी जी (सीताजी) ने अपने स्वगुर दशरयजीके दर्शन किये। श्री वाल्मीकीयरामायणे— म्पासुवलितेमूर्ये कालेकुतुपकेतथा। श्रायाताश्वयस्वर्धे ये रामेश निमन्त्रिताः॥ १॥ तानागतान्धुनीन्द्रृष्ट्वा बैंदेहीननकात्मजा।

तानागतान्मुनीन्द्रृष्ट्वा वैदेहीननकात्मजा । श्रपासपंत्रतीदूरे विप्राणां मध्यत स्थिता ॥ २॥ अन्यत्र च गतासाध्वी मन्येचाहंत्रपान्विता । किन्ताबद्भोजयेविप्रान् सीतामन्वेषयामिकिम् ॥ ३ ॥ गतेपद्भिजमुख्येषु प्रियांरामी ब्रवीदिदम्। किनवें सुम् नष्टासि सुनीन्द्रपूर समागतान् ॥ ४॥ एवमुक्तातदाभन्नां त्रपयाधीमुखीतथा । मुञ्जन्तीचाश्रुसङ्घात राघव वाक्यमञ्जवीत ॥ ५॥ वितातवमयादृष्टी ब्राह्मकाङ्गेषु राघव।। हृष्ट्रात्रपान्वितावाहमपक्रान्तातवान्तिकात् ॥ ६॥ याहराचापुरादृष्टा सर्वालद्भारम्पिता । सा स्वेदनलदिग्धाङ्गी कथ पश्यामि भूनिपम् ॥ ७॥ स्यहस्तेन कय राज्ञे वानेय भोजन त्विद्यु । दासानामवियद्दामा नीपभुञ्जन्ति कहिंचित् ॥ ८ ॥

पितृलोक से जीवलोक अर्थात् मनुष्यलोक में आते हैं। इसलिये वेदमें आज्ञा है कि-

भावार्थ — कुतुपकाल (अपराह्ल) में जब श्रीरामधन्द्र जी श्राह करने लगे तो जिन २ ऋषियों को निमन्त्रण दे आये ये वह सब मुनिमगहली खागयी, उन्हें खाता हुआ देखकर जानकी जी उठकर भागगई श्रीर ट्रर जाकर लता पताओं में अपने को छिपालिया। तब श्रीरेपुनाय जी की बहा आधर्ष हुआ कि आज जानकी जीने मुनियों से क्यों परदा किया। अब मुक्ते क्या कर्त्तव्य है, जानकीको ढूंढू या मुनियोंको भोजन कराऊं। अन्त में यही स्थिर किया कि त्राहकाल का लोप न होते। **थिगडदान करके ब्रह्मभोज** पूर्ण किया-आशीर्वाद देती हुई सब ऋषिनगहली चलीगई। उन सब के विदा होते ही जानकी जी आगयीं, तब श्रीराम-चन्द्र जी कहने लगे कि हे प्रिये! तुम कहां गई थीं तुमने ऋषियोंका बड़ा अनादर किया और न उनको प्रशाम किया इतना सुनकर लज्जायमान जानकी नीचेकी मुखकर रौती हुई' बोली कि हो नाय ! ब्राह्मणोके अहु में नहाराज श्री दश-रयजीको देखकर मै लज्जावश हो लता ओमें जा हिपी क्योंकि जिन प्रवसुर जी ने सर्व ऋलंकारों से मूपित सुक्ते देखा या प्राज उन के सामने जटा फ़ौर बल्कल धारण करे कैसे इस वेप को दिखाऊ गी इसी से उस समय छिप जाना ही छ-त्तम था। दूसरा-यह (वानेय) वनका भोजन अपने हाथ भे कैंसे परोस्गी-जिन महाराजको पूर्व पट्रस परोसती थी

इस कयाने सिंह होता है कि आहु भोका आइस बोंके साथ पितर मूल्पक्र में आते हैं और श्रीसती जानकी जी जैसी पूर्व पतिव्रतामें या पूर्व धर्मोत्मा मनुष्य ही उन पितरोंके दर्शन पा मकते हैं॥ उभे दिशावन्तरे विद्धाति प्राचीं च दक्षि-णां चैतस्याध्य ह दिशि पितृलोकस्य द्वारं द्वारे-वैनं पितृलोकं प्रपादयति ॥ गतपण्य व्राव्यः १३। ४। ४।४५॥

याम नगरादि से पूर्व और दक्षिण दिशा के बीच आन्त्रेयकोण में चतुष्कीण वेदी (रमग्रान स-निदर) बनावे, क्योंकि इसी आग्नेय दिशामें पितृ-लोक का द्वार है। ऐसा रमग्रान बनाने वाले अपने मृतक को द्वार के सार्ग से पितृस्लोक को पहुंचाते हैं।

दत्यादि चे स्पष्ट विदित हुआ कि पितृलोक एक स्वतन्त्र लोक है और वह दिवल में है-उनका द्वार आग्नेयकोण में ने हैं। वहां अत्यन्त पुण्यवान जीय जा एकते हैं तथा उन के निवामी पितृदेवोंका शरीर वायुकाय रूप सूक्त है। पूर्णेथमितमा-श्रद्धायुक्त सत्यवादी मनुष्योंको ही उन पितृदेवोंका दर्शन होता है। और वे ही वेदके आवाहन मन्त्रों में निमन्त्रित बायुकां के शरीर में अद्ध्य रूप ने यहां श्राह्मकांमें आते हैं। परन्तु दिव्य चसु वाले ही उनका दर्शन कर सकते हैं। दिता ।

हे महाशय जी ! सब साप यह भी सुनो कि उन पितृदेशों का राजा (स्वामी-प्रिधाता) कीन है दे॥ यथा--

ये समानाः समनसः पितरो एउच्चेत् । पत्रवैद वाजवनेव स्वर १८ तंत्र १४४

यमराज्ये० । यजुर्वेद वाजवनेव स० १८ मं० ४५॥

पितृलोक का राजा यमराज है। प्रवात जो जाति तथा रूपादि करके, तुल्य एक से प्रन्तः करणों वाले पितर यम देवता के राज्यमें रहते हैं। तथा-

्यो नमारः प्रथमो मत्यानां

यः प्रेयायं प्रथमी लोकमेत्रम् । वे-वस्वतं संगमनं जनानां यमं रा-जानं हविषा सपर्यत ॥

अथर्वः काट १६। अनुरु ३ मंट १३॥ अर्थ- मृष्टि के आरम्भ में जो मनुष्यों के बीच

चबचे पहिले मरता है, और मरणानन्तर जो इस पि-तृलोक में पहिले जाता है पीछे अन्य मनुष्य मूरे के जिस के अधिकार में जाया करते हैं इस क्रार्ख

के जिस के अधिकार में जाया करते हें इस क्रार्ण यह जनों का ''संगमन" कहाता है [सम्यग्गच्छन्ति जना यस्मिन् यत्सन्निधी स सङ्गमनस्तम्] उस वि-

वस्वान् के पुत्र "यमराज" का है मनुष्यो ! इविर् यज्ञ द्वारा पूजन करो । जैसे पितर सनातन हैं छ-र्यात् मनुष्यों के समान थोड़े २ कालमें उन का जन्म

मरण नहीं होता वैंचे पितरों का वा मरकर पुष्य-कर्मों चे पित्लोक में जाने वालों का राजा यम भी पित्लोकमें जाने पद्यात् स्रस्मदादि की स्रपेक्षा च-

पित्लोकं में जाने पद्मात् श्रस्मदादि की श्रपेक्षा स-नातन कहाते हैं। कभी जिन का नाग्र न ही ऐसे ती वायु ग्रादि सूरम तत्व भी नहीं हैं क्योंकि प्रलय के समय वे भी नहीं रहते इस से सापेक्ष नित्य वा स-नातन सूरमतत्वों के तुल्य पितर भी हैं। जैसे मनुष्य का भरीर पृथिवी तत्वप्रधान है और स्यूल है वैसे पितृलोक के राजा यम का और पितरों का भरीर वामुतत्वम्धानं सूरम है। जैसे मनुष्यदेहोंका अधि-ष्ठाता एक र जीवात्मा होता है वैसे पितृदेहोंके साथ भी एकं र अधिष्ठाता जीव है। इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि पितृलोक का राजा यमराज है। उक्तां—

त्रापमंजीवा त्रार्थित है। उत्तर्भ — त्रापमंजीवा त्रार्थम् ग्रहेभ्य-स्तं निर्वेहत् परिग्रामादितः। स-त्युर्यमस्यासीद्दूतः प्रचेता त्रासून् पिर्तम्यो गमयाञ्चकार ॥

अवदेश को १९८२ । अवदेश को १९८२ । १८२३ ॥

ष्ठा०-हे जीवाजीवित जना इमं मृतं देहं मृहिभ्यं: एथगपार्ठाप्त् निस्सारयत तीमतो ग्रा-भार्त्परि-बहिनिवेंहत नयत । प्रचेता: प्रकृष्ट्यु-द्विमृत्युर्थमस्य दूत आसोदस्ति समृतस्यासून्

पित्रभ्यः पित्रमात्राय गमयोञ्ज्कार गमयित व-र्त्तमाने छङ्खिटी॥ भावायः ठ-हे जीवित पुरुषो ! इस मरेहर मुद्दा

भावार्यः ० - हे जीवित पुरुषो ! इस मरेहर मुद्

याम से बाहर लें जाओ । यमराज का टून बड़ा बु-द्धिमान् मृत्यु नामक हैं जो मरें हुन्नों के प्राणों को पितर वनने के लिये यमलोक अर्थात् पितृलोक में पहुंचाता है। तथा—

ये नः पितुः पितरो ये पिता-महा य त्राविविशुस्त्रवन्ति सम्। तेभ्यः स्वराडसुनीतिनौ त्राद्य य-यावशं तन्वः कल्पयति॥

> अववं कां १८। अर्नु १ ३ । मं १५८॥ अर्थ-जो हमारे पिता के पितर पितामहादि

(दादे वगैरह) तथा प्रिपतामहादि कि जो मरणा-नन्तर महान् श्रन्तरिक्ष लोकमें प्रवेश करचुके हैं उन हमारे पितरों के लिये, प्राणों का ले जाने वाला स्वतन्त्र राजां यम कर्मानुवार उत्तम शरीर देवे । इ-

त्यादि वेदमन्त्रों से निःसन्देह सिद्ध हुआ कि पितृ-लोक का राजा श्रीयमराज है और वही मनुष्यादि प्राणीमात्र को (मरणानन्तर उत्तम-निकृष्ट कर्मानु-सार) यथायोग्य शरीर देकर सुख दुःखादि भुगाता है। इति॥

हे महाग्रप जी ? अब आप के उस संग्रय का भी समाधान किया जाता है जो कि पितृलोकनि-पासी पितरों के पूजन सत्कार (ग्राह्म-तर्पण) क- रने की क्या आवश्यकता है और न करने से क्या हानि वा दोष है। समाधान-प्रजापित वै भूतान्युपासीदन् प्रजान् वै भूतानि विनोधिह यथा जीवामिति। ततो देवा यज्ञोपवीतिनो भूत्वा दक्षिणं जान्वाच्योपासीदं स्तानक्ष्रीद्ध यज्ञो बीऽव्यममृतत्वं व अर्क् सूर्य्यो वो ज्योतिरिति ॥१॥ अर्थैनं पितरः प्राचीनावी-तिनः सत्र्यं जान्वाच्योपासीदंस्तानक्ष्रवोद्ध मा-सि मासि वोऽशनं स्वधा वो मनोजवस्नन्द्रमा वो ज्योतिरिति ॥२॥ अर्थैनं मनुष्याः प्रावृता उ-पस्यं कृत्वोपासीदंस्तानक्ष्रवीत् सायं प्रात्वोऽ-शनं प्रजावो मृत्युरिनवीं ज्योतिरिति ॥३॥ यनुष्यानक्षाव्यक्ष्य व्राव्यक्ष्य

भाषा भाषार्थ:-षृष्टिके छारम्भ में देवता तथा वितर खीर भनुष्य ये तीन प्रकार के भूत (जिस प्रकार में हमारा जीवन-सत्कार-पूजन हो सो प्रकार हमारा विधान करें) इस कथन के छिन्माय से प्रजापित (ब्रह्मा) के सभीप गये, वहां प्रथम देवताओं ने पन्नोपतीत को धारण कर दिस्यजान का भूमि पर पात कर ब्रह्माजिक सम्मुख उपस्थित होकर जीविका एवं सन्मान होने की याचना की तब प्रजापितने यह कहा कि यन्न छाप का छन्न है छम्त झापका जर्क (बीर्यपद) है और सुर्य छाप

के लिये प्रकाश है। १॥

फिर पञ्चात्-प्राचीनावीति (अपसध्य यानी

यज्ञोपवीत बार्ये तरंफ करते) हुए बांया (जानु) घोंटु पृथ्वी पर नवाय कर पितर लोग उपस्थित हुए, तब उन पितरों के प्रति प्रजापतिने यह कहा कि महीने २ भरमें १ * एकवार खमावास्याके दिन म्राप का भोजन होगा । तुम्हारे लिये कर्मकार अमें ''स्वधा" ग्रब्द बोला जायगा। वह स्वधा पदवाच्य वस्तु तुम्हारे लिये मनके तुल्य वेग वाला होगा। श्रीर चन्द्रमा तुम्हारा ज्योति अर्थात् तुमको प्रकाश पहुंचाने वाला होगा ॥ २ ॥

फिर प्रावृत "निवीतं करवलम्बितम्" ('प्रा-

* यह भी ध्यान में रहे कि मन्ब्यके एक महीनेका समय थितरों का एक दिन-रात सब शास्त्रोंमें माना गया है। इस लिये कष्कापत्तरूप रात्रिकी समाप्ति में प्रातः काल प्र-माबास्या की वितरोंकी अपने दिन के हिसाब से नित्य भी-जन निला और मानुष दिन के हिसाब से महीने २ में भी-जन निलना कहा गया है तथा ठक्त कथन से यह भी आया कि अपसब्य रहने वाले एव बांगा घोंटू टेक के बैठने वाले श्रीर महीने २ में जमावास्या को एकवार भोजन करने वाले तया चन्द्रमा जिन का ज्योति है वे वितर हैं। बा जिनका नाम वितर है वे उक्त प्रकार से श्रपसञ्चादि रहने बाले हैं। मनुष्य प्रति दिन भीजन करते हैं और पितर महीने २ में एकवार प्रमायास्या को भोजन करते हैं इस कारत पितर . मनुष्य महीं श्रयांत् मनुष्यों से एयक् हैं। इस से भी स्यूल देह भारी जीवित वितरी का स्पष्ट संवडन 🧣 ॥

र्थात् गलेमें मालाकी तरह बज्ञोपवीत पहिने) हुए दोनों (जानुझों) घों दुझों को भूमि पर नवाय कर म-नुष्य उपस्थित हुए, तब उन से प्रजापित ने यह कहा कि सार्य और मातःकाल आपका भोजन होगा स्रीर पुत्र-पीत्रादि मजा स्नाप लोगों का मृत्यु है स्रीर स्रग्नि स्रापकी ज्योति यानी प्रकाश है ॥ ३॥ इत्यादि वेद की ग्रुतियों में स्पष्ट माचा दि-खायी वा कही गयी है कि हर एक वैदिक्षधर्माव-सम्बी मनुष्यमात्रका यह अवश्य कर्त्तव्य है कि ब्रह्मा जी द्वारा नियत किये यज्ञों से देवताओं का, तथा प्रत्येक महीनेकी समावास्या में पितृवज्ञ (भाद्ध) द्वारा पितरों का पूजन-सत्कार करें जिससे कि वे देवता और पितर अपने अभीष्ट (यानी मुकरिंर) पजन सत्कारको ग्रहण करके चन्तुष्ट होकर ब्रह्मा-जाकारी मनुष्योंके प्रति चन्तान-धन-धान्य समृद्धि न्नादि मुख देकर तथा उन्हों के मृतपितरों की भी सद्दगति करें वा करते रहें। खीर जो मन्ब्य वेद त्रया श्री ब्रह्माजीकी माचा उल्लघन करके वेदीक्त देव-पितृ यच्चादि कर्म नहीं करता वह ब्रह्माचा वि-रोधी होकर वेदमार्ग से अप्ट होकर अनादर और दु: खको माप्त होता है और उन देव पितरोंके को-पद्वारा वह मनुष्य अनर्थ और दोपका भागी होता है। तथा और भी स्पष्टरूप से वेद में दिखलाया गया है कि-

एप * पन्था एतत्कर्मेतद् ब्रह्म तत् सत्यं तस्मान प्रमाद्येत् तस्मान प्रमाद्येत्वातीयाद्व न ह्यत्यायन् पूर्वे येऽत्यायंस्ते परावभूवुः तदुक्त मृषिणा—"प्रजा ह तिस्रोऽत्यायमीयुन्यंन्या अन् कंमिमतो विविन्ने, वृहदु ह तस्यौ भुवनेष्वन्तः पत्रमानो हित्त जाविवेशः" इति, "प्रजा ह ति-स्रोऽत्यायमीयुरिति" या वै ता इमाः प्र-जास्तिस्रोऽत्यायमायंस्तानीमानि वयांसि व-ङ्गावगधाश्चेरपादाः, 'न्यन्या अर्कमिमतो वि-विन्ने, इति, ता इमाः प्रजा अर्कमिमतो निवि-

^{*} एतच्छव्दः सन्निहितार्थपरामग्रकः, सन्निहितद्वार्यो

गतीत आगामीचेत्येवं द्विविधः, तथा च (एष) उभयविपोप्पपेः (पन्याः) पुरुषार्थस्य मार्गः, साधनिमित्यावनु,
तदुभयं विस्पष्टं निर्दिश्यते (एतस्कमं एतदृश्रसः) अग्निमील
इत्यारम्य, अङ्गोक्ष्यम् इत्यन्तेनातीत सन्निहितयन्येन प्रति
पादितं यत्कमं तथा उक्तम्-इत्यारम्य आचार्य इत्यन्तेन सनिहितेनारत्यक द्वय क्षेणेश्वर यथेन निक्षितं यत्सगुणं निगुंगं पश्रसः एतदुभयनियुक्तपार्थं साधनं, व्यवहार परमार्थं
भेदेनोभयनियसत्यम्, अञ्चलमंग्रव्देन सम्झानपूर्थंकमनुष्टानं
श्रस्यायदिन च तद्विषयं शानमात्रं श्रस्तते, यथोक्तस्योभयविपरम मार्गत्व द्ववितुनयोगव्यावृत्तिनन्ययोगव्यावृत्तिं च
विषत्ते (तस्माल प्रमादीत) कर्मानुष्टानश्रस्यादिना तत्परि
प्रमादः, तथा स्पाद्यितुं प्रयुत्तेनाग्र्यास्यादिना तत्परि
स्पागोऽपि प्रमादः, ए तदुभयं च कुष्यांद्व चति-।

(ee) ष्टा इममेवाग्निं, वृहदु ह_{्तस्यी} मुवनेष्वन्तः इति, अद उ एवं वृह्दं भुवनेष्वन्तरसावादित्यः पवमानी हरित आविवेश, इति, वायुरेव पव मानी दिशो हरित आविष्टः"॥ क्राधेद-ऐतरेपारसमक २ प्रा० १ खं० १॥ भाषार्थ:-(स्तत्कर्भ-स्तद्ब्रह्म) यह जो पूर्वी-त्तर यन्यमे देव-पितृयज्ञादि कर्म स्रोर ब्रह्मका नि-रूपण किया है (एव पन्धाः) यही पुरुषार्थका मार्ग है अर्थीत् भोग मोसका देनेवाला है (स्तत् सत्यम्) यही बेदोक्त कर्म तथा ब्रह्मज्ञान अवश्य फल देनेसे सत्य है। स्रीर अन्य जो सर्वदिक अनुष्ठान हैं वह ग्रनर्थ पर्यवसायी होनेसे मिण्या हैं (तस्माद्ग प्रमा-द्येत्) तिस अस्नायमार्गसे प्रमाद न करे और (त-

न्नातीयाइ) तिस मार्ग का श्रतिक्रमण भी न करे किन्तु आलस्य तथा ग्रन्य कुमार्गीको त्यागकर इसी का ही अनुसरण करे; इसीसे ही (नहात्यायन पूर्व) जो पूर्व मनु-विषष्ठ मादि महापुरुष हुए हैं वह इस मागंका अतिक्रमण यानी उल्लंघन नहीं करते रहे ज़ीर (येऽत्यायन्) जो नास्तिक लोग इस वेदोक्त मार्गका उल्लंघन करते रहे (ते परा वभूवुः) वह पुरुवार्थने अष्ट हुए निराहरको प्राप्त हुए हैं ॥ इस ब्राह्मणीक्त अर्थकी दूढताके लिये मन्त्रदा प्रमाण देते हैं कि(तदुक्तमृषिणा) इति, अब इस

मन्त्र का स्वयं ही ब्राह्मण व्याख्यान करता है कि प्रजा (प्रजा हा तिस्रोऽत्यायमीयुः इति, यावे ता इमाः प्रजास्तिस्रोऽत्यायमायन् तानीमानि वयांसि यङ्गा जवगधात्रचेर्प।दाः) अर्थात् ब्राह्मणादि भेदरे जो अनेक प्रकारकी प्रजा हैं उनमें से तीन भाग जो

प्रजा हैं वह वैदिक कर्मके उल्लंघन करने वाली हैं स्रीर एकभाग प्रजा वैदिककर्ममें निष्ठावाली है। वहां जिन प्रजालोंने वैदिककर्म का त्यांग किया है उन

प्रजाओं की गति कहते हैं- (तानीमानि वयां सि) अर्थात जिन्होंने ग्रीत यानी देव-पितृ यज्ञादिकर्म

का त्याग किया है उनमें से स्कभाग तो काक छादि पिस योनियोंको प्राप्त होते हैं जो कि स्नाकाश में विचरने वाले हैं और एक भाग वङ्ग * (वृक्ष) और स्रवगध (स्रोपिधवें वा वनस्पतियें) हैं स्रीर एक

भाग ईरपाद हैं अर्थात् पृथिवी के बिलमें निवास, क-रने वाले पादोदर (वर्ष) आदि हैं, अर्थात् जिन २ लोगोंने पुर्वोक्त श्रीतमार्गका त्याग किया है वह मर

कर नरक भोग के जननार पश्पतादि-कीट स्थावर आदि अनेक तिर्यंग् योनियों की प्राप्त होते हैं। इस-प्रकार वैदिकमार्गके उल्लंघन करने वाली तीन प्रकारकी प्रजाकी व्यवस्था कहकर ग्रद एकभाग

याली जो प्रास्तिक प्रजा है उस की गति कहते हैं कि "न्यन्याम्मकंमभिती विविधे" इति । • (यहाः) धनगता वृज्ञाः, श्रवगथाः-श्रयन्ति-रज्ञन्ति

ममुखादीन् इति छवा , यध्यन्ते - अभिकाङ्ख्यन्ते जनैरिति गपा बमस्पतिस्तपा ब्रीह-यवादि स्त्या शोषधय, इत्यर्थः ॥

(se)

ह्मीका विवरण काते हैं (ता इसाः प्रजा छ-कंमिनती निविष्ठा इममेवाग्निम्) इति, अर्थात् आ-स्तिक प्रजामेरे कोई एक तो आहवनीय रूप (जर्क)

मुर्चनीय जो अगिन है उसकी उपासना करते हैं और कोई एक (वृहद् हतस्यी भुवनेष्वन्तः) इसीका वि-वरण कहते हैं कि (अदं उ एवं घृहद् भुवनेष्वल रसावादित्य:) इति, अर्घात् यह जो ब्रह्मायडमें व्या-

पक तेजोमय मार्स गढ-(सूर्य) है उसकी उपासना करते हैं। स्रीर कोई एक [पवमानो हरित स्नाविवेश] इसका विवरण कहते हैं कि (वायुरेव पवमानो दिशो

हरित ग्राविष्ट) इति, प्रयति निवित दिशा में सं-चारी जो पवित्र रूप बहुन शील बागु हैं तिसकी उन पासना करते हैं, अर्थात् समष्टि वायु रूप हिरण्य गर्भ

तात्पर्य यह है कि आस्तिक लोग अग्नि आदि की उपासना करते हैं॥ की उपाचना द्वारा बद्गति को माप्त होते हैं ज़ीर नास्तिक लोग पति आदि रूप अधोगित को प्राप्त होते हैं।।

तया मनु भगवान् एवं योगी श्री याजवल्लय मुनि ने भी-

अकुर्वन्विहितंकमं निन्दितंचसमाचरन्। प्रसक्तरचेन्द्रियाचेषु प्राचिश्चत्तीयतेनरः॥

विहितस्याननुष्ठानान्त्रिन्दितस्य चसेवनात्

अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नर:पतनमृच्छति ॥ याद्यः ऋ ३ । २१८॥

अर्थात्-विहित (यानी वेदोक्त देव-पितृय-जादि) कमंके न करने से और निषिद्ध कमोंके क-रने से तथा विषयों से स्नित आसक्त होनेसे पु-क्ष प्रायञ्चित्त का भागी होता है। एवं याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि-विहित कमें के न अनुष्ठानसे और नि-न्दित (परस्त्रीगमनादि) के सेवनसे तथा इन्द्रिगोंकी न रोकनेसे पुरुष पापको प्राप्त होता है।

न रोकनेसे पुरुष पापको प्राप्त होता है।

इत्यादि वेद-स्मृतियास्त्रोंके प्रमाणोंसे निस्सन्देह सिद्ध होता है कि मनुष्यमात्र, वेदादिशास्त्रोक्त
श्रोत-स्मात कर्मों के सेवन न करने से पतित होकर
प्रधोगतिको प्राप्त होता है। इसलिये हरएक वेदमतानुपायी आस्तिक जनका यह अतीव मुख्य और
अवश्य करने योग्य कर्त्तव्य है कि वह निरासस्य
होकर विना शक ठीक २ शास्त्रदर्शित विधिसे देशकाल पात्रका विचार करके प्राद्धादि (देवपितृयत्त)
करके अपना लीवन सफल करे। और उपरोक्त
कर्मकायङ का त्याग करने से निःसन्देह दोष सर्व
प्रत्यन्त हानि होती है। इत्यस्य विद्वत्युइति श्री श्राद्धपितृमीमांसायां पितृछोक्षस्यतिस्तस्याऽधिष्ठातृपितृदेवार्मा स्त्रक्रपत्र-

णंने चैवं तत्कमांऽनुष्ठानस्याऽत्यावश्य-कता प्रदर्शने समाप्तीऽयं पञ्चमोऽध्यायः, **ॐ--**मिचदानन्देश्वराय नमः॥

त्र्राय षष्ट्रोऽध्यायः॥

समाजी-श्रीपिखत जी महाराज! सब कृपा

करके यह भी तो सुनामों कि ब्राह्ममें केवल ब्राह्म-णोंको ही निमन्त्रण देकर भोजन करानेकी वया आ-वश्यकता है ! क्यों नहीं उन हमारे मित्र (दोस्त) वा श्रन्य किसी गरीव श्रनाथ श्रयवा श्रव नवीन स्रार्थ्य हुए [म्सल्मीन, सन्दुलगफूर वगैरह जिन्हीं का आर्य नाम धर्मपालादि रक्खे गये हैं उन] म-हाशयोंको अपने पितरोंके निमित्त श्राहुमें भोजन करावें ! क्या केवल ब्राह्मणों को ही इसके लिये किसी महाराजा से इकरारनामा लिखा मिला है वा कोई इनको किसीने साटीं फिकेट लिखदिया है ? मनातनी-महाशय जी ? घबराओ मत, योडा धैर्य धारण करो ख़ौर ध्यान लगाकर सुनो कि ब्रा-ह्मणों के लिये श्रीमहाराजाधिराज महर्षि श्रीमन भगवान् ने क्याही सुन्दर सार्टी फिकेट रूप में पक्का इकरारनामा लिखदिया है कि जो सब वेदमतानु-यायी आस्तिक हिन्दुओंको परम माननीय है। यथा-मनुस्मृ० सध्वाय १ वलोक देन से १०१ तक जध्वंनाभेर्मध्यतरः पुरुवपरिकीर्तितः। तस्मानमेध्यतमं त्वस्यमुखमुक्तंस्वयंभुवा ॥६२॥

उत्तमाङ्गोदुवाउज्यैष्ट्यादु ब्राह्मणश्चैवधारणात्। सर्वस्यैवास्यसर्गस्य धर्मतीब्राह्मणःप्रमुः ॥६३॥ तंहिस्वयंभू:स्वाद्रास्यात्तपस्तप्त्वाद्तोऽसूजत् । हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्वास्यचगुप्तये ॥९१॥ यस्पास्येनसदाश्रन्ति हत्र्यानित्रिदिवौकसः। क्व्यानिचैत्रपितरः किंभतमधिकंततः ॥ ८५ ॥ भृतानांप्राणिनःश्लेष्ठाः प्राणिनांवृद्धिजीविनः । वृद्धिमन्सुनराःश्लेष्ठा नरेपुत्राह्मणाःसमृताः ॥५६॥ ब्राह्मणेप्चविद्वांसो विद्वत्सुकृनवुद्धयः । कृतयूद्धिपुकर्त्तारः कर्तृपुत्रह्मवेदिनः ॥ ६७ ॥ उत्पत्तिरेवविप्रस्य मूर्त्तिर्धर्मरयशाश्वती । सहिधर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ स्ट ॥ ब्राह्मणोजायमानोहि पृथिव्यामधिजायते । ईश्वर:सर्वभतानां धर्मकोशस्यगृष्तये ॥ ६६ ॥ सर्वस्वंब्राह्मणस्येदं यत्किञ्जिञ्जगतीगतम्। श्रेप्टचे नाभिजनेनेदं सर्ववैद्याह्मणोऽहंति ॥१००॥ स्वमेवब्राह्मणोभुड्के स्वंवस्तेस्वंददातिच । आर्शस्याद्ववाह्मणस्य भुज्जतेहीतरेजनाः ॥१०१॥ . अर्थात्-ग्री ब्रह्माजीने पुरुषोंको नाभिने ऊपर के भागमें अधिक पवित्र कहा है। और इसके मुख

को तो उससे भी पवित्र कहा है ॥ दंर ॥ ब्राह्मण सब नंगों में उत्तम परमात्मा के मुख से उत्पन्न हुआ है, सित्रपादि तीनोंसे पहिलो सन्मा है ग्योर येदको मु-

Č.

खाद्य रखता है-इस कारण ब्राह्मण धर्म का उपदेश करनेमें इस सब मृष्टिका गुरु (शासक) है। देश

स्वयम्भू ब्रह्माने तप करके देवताओं को 'हब्य, और पितरों को 'कब्य, पहुंचाने के लिये तथा इस सब ज-गत्की [यद्यादिके द्वारा वर्षा आदिसे] रक्षा करने के लिये आरम्भमें अपने मुखसे ब्राह्मणों को रचा है

॥ टंध ॥ जिसके मुखसे देवता हव्योंकी फ्रीर पितर कव्योंको सदा खाते हैं, तिससे बढ़कर कौनसा प्राग्नी हो सकता है ! ॥ टंध ॥ पृथिव्यादि पञ्चभूतोंसे बनाये स्थावर जंगम सब प्राणियोंमें कीट पतंगादि प्राणी केंग्न हैं कटानित किञ्चल सखलेग के प्राप्त होने से

स्थावर जंगम सव प्राणियों में कीट पतंगादि प्राणी श्रेष्ठ हैं कदाचित किञ्चित सुखलेश के प्राप्त होने से और उनसे (युद्धिजीवी) सार्थ निर्णंक स्थानमें जाने न जाने वाले पशु आदि श्रेष्ठ हैं—उनसे प्रकृष्ट ज्ञान के सम्बन्धसे मन्ष्य श्रेष्ठ हैं—उनसे भी सर्वपृत्र और

के सम्बन्धमें सनुष्य श्रष्ट हैं—उनमें भी मवपूष्य और भोक्षाधिकारके योग्य होनेमें ब्राह्मण श्रेष्ट हैं ॥ देई ॥ श्राह्मणों में भी स्वर्गादि फल देनेवालें ज्योतिष्टोमादि कर्मकाराडके विद्वान् श्रधिकारी श्रेष्ठ हैं—उनसे श्राता-गत के लिये प्रथम मत्कमं करने वाले श्रेष्ठ हैं—उन में भी हिताहित प्राप्ति परिहार भागी होनेसे (कर्ता)

में भी हिताहित प्राप्ति परिहार भागी होनेसे (कर्ता) अनुष्ठाता येष्ठ हैं—उन से भी भोक्षफलके लाभगोग्य होनेसे ब्रह्मवादी खेष्ठ होते हैं ॥ दं ॥ ब्राह्मणका देह जन्म माचसे ही अविनाशी धमंकी मूर्ति है जिस से

षह धमंके लिये उत्पन्न हुआ है । धर्मानुगृहीत आ-त्मज्ञानमें मोसकी प्राप्ति के लिये योग्य है ॥ ८८ ॥ जिनमें ब्राह्मण उत्पन्न होता हुआही पृषिवीमें (अधि)

जंचा स्नीर स्रोष्ट है। सर्व धर्मीको ब्राह्मणद्वारा उप-देश किये जानेसे तथा सब जीवोंके धमंके समुह-की रक्षाके लिये समर्थ है ॥ ८८ ॥ जो कुछ पृथिवी में धनादि पदार्थ हैं वह सब ब्राह्मणका अपना स्वत्व है यह बात ब्राह्मणकी स्तुतिके लिये कही है-तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण के अपने स्वत्व के तुल्य है इस से ब्राह्मण ब्रह्माजीके मुख से उत्पन्न होने, स्रोर वंश से श्रेष्ठ होनेसे सर्व पदार्थी स्रोर द्रव्योंके ग्रहणके योग्य है ॥ १००॥ ब्राह्मण जो टूमरेका भी अन्न भक्षण करता है सो अपना ही करता है, दूसरे का जो वस्त्र पह-रता है और जो दूसरेका पदार्थ लेकर सीरके सर्थ देता है वह भी ब्राह्मफका खपना ही पदार्थ है ऐसा होनेसे ब्राह्मणकी कृपा ही से ख़ौर सब लोग भोज-नादि करते भोगते हैं॥ १०१॥ इत्यादि श्री महाराजाऽधिराज महर्षि श्रीमनु भगवान्ने ब्राह्मणोंकी प्रशंचा करते हुए देवता स्तीर पितरींको यज्ञ में "हन्य" सन्न सीर ब्राह्म "कन्य"

श्रम पहुंचाने के लिये तथा वेद मितपादित धर्म का मत्योपदेश करने के लिये इस पृथ्वी पर ब्राह्मणों को ही मुख्य भूदेव ठहराकर साटों िक केट रूप इकरा-रनामा लिखदिया है इसी कारण यज्ञ और श्राद्धा-दिमें ब्राह्मणों के मित श्रादर सत्यार पूर्वक निमन्त्रण देकर भोजनादि दान देने की श्रत्यन्त श्रावश्यकता

करके पीछे यया शक्ति अनुसार भले ही अपने मित्र

वा प्रन्य किसी प्रनायादिका भोजनसे सत्कार क-रना चाहे तो करे यही वेदादि धर्मशास्त्रीका मुख्य सिद्धान्त है ॥ समाजी-ग्रीपरिडत जी महाराज! यह ती ठीक साटीं फिकेट रूप अच्छा माननीय इकरारनामा मुनाया परन्तु इसमें सुभे औरभी बड़ा सन्देह हुआ है कि ग्राद्धादि गुभकर्मी में सुपात्र, विद्वान् तथा योग्य ब्राह्मणको ठीक २ देखकर निमन्त्रण देना चा-हिमे कि नहीं; चाहे वो कैंसा भी हो ! सर्वात् मदा मांसाहारी-व्यभिचारी-निन्दित साचरण वाले मूखं को भी केवल उस के नाम मात्र ब्राह्मण होने से दिया जाय? ॥ सनातनी-महाशय जी ! यह आपका सन्देह ब-हुत सत्य अच्छे सारक्ष निर्णय कराने वाला है। परन्तु खाप निष्पक्षपाती हो कर संमयको विचार करके श्राद्धमें अधिकारी और अनधिकारी ब्राह्मणीं की सुनो । यथा मनु० अध्याय ३ में-श्रीत्रियायेवदेयांनि हव्यकव्यानिदातुमिः। अर्हत्तमायविप्राय तस्मैदत्तं महाफलम् ॥१२८॥ एकैकमिपविद्वांसं दैवेपित्रये च भोजयेत्। पुष्कलंफलमाप्नोति नामनत्राज्ञान्बहुनपि ॥१२९॥

दूरादेवपरिक्षेत ब्राह्मणंबेदपारमम् । तार्थतत्हव्यकव्यानां प्रदानेसोऽतिथि:समृतः ॥१३०॥ सहस्रंहिसहस्राणामनुनां यत्रभुव्जते । एकस्तानमन्त्रवित्प्योतः सर्वानहंतिधर्मतः ॥१३१॥ ज्ञानोत्कृष्टायदेयानि कव्यानिसहवींपिस्र । नहिहस्तावसृष्टियधो रुधिरेणैव शुद्ध्यतः ॥१३२॥ यावतोग्रसतेग्रासान् हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् । तावतोग्रसतेग्रत्य दीप्तशूलप्टयंयोगुणान् ॥१३३॥

नल्राहुमोजयेन्मत्रं धनैःकार्योऽस्यसंग्रहः।
नारिनमित्रंयंविद्यासंल्राहुमोजयेदृद्विजम् ॥१३८॥
सम्मोजनीसाभिहिता पैशाचीदृक्षिणाद्विज्ञः।
इहैवास्तेतुसालोके गौरन्थेवैकवेश्मिन ॥१४९॥
यथेरिणेवीजमुष्त्वा न वप्तालभतेफलम् ॥
तथाऽनृचेदृविद्त्वा नदातालभतेफलम् ॥१४२॥
दातृन्यतिग्रहोत्ंत्र्य कुरुतेफलभागिनः।
विदुषेदृक्षिणांद्रस्या विधिवत्येत्यचेह्च ॥१४३॥
यत्नेनभोजयेन्छादे वहचंवेदपारग्रमः।

दात्न्यतिग्रहीत्ं श्र कुरुतेफलभागिनः ।
विदुषेदक्षिणांद्रस्या विधिवत्य्रेत्यचेह्च ॥१४३॥
यत्ने नभोजयेच्छ्राद्वे यहुचंवेदपारगम् ।
शाखान्तगमधाध्वर्यु छान्दीगन्तुसमाप्तिकम्।१४५॥
एपामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राहमर्चितः ।
पितृणांतस्यतृष्तिःस्याच्छाश्वतीसाप्तपौरुषी ॥१४६॥
नद्राह्मणंपरिक्षेत दैवेकमीण धर्मवित् ।
पित्धक्रमणितुप्राप्ते परिक्षेतप्रयत्नतः ॥१४६॥

येस्तेनपतिन्द्रीवा येचनास्तिकयुत्तयः । तान्हव्यकव्ययोविंप्राननहान्मन्द्रवीत् ॥१५०॥ जटिलंचाऽनधीयानं दुर्वलिकतवतथा । याजपन्तिचयेपूगां-स्तांष्प्रप्राद्धेनभोजयेत् ॥१५१॥ चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रियणस्तथा । विपणेनचजीवन्तोवर्ज्याःस्युहंव्यकव्ययोः ॥१५२ । ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाऽग्नितिवशाम्यति । तस्मैद्दश्यंनदात्तव्यं नहिभस्मिनहूयते ।१६६॥ इत्यादि चंचेवत्या ॥ दातास्रांको चाहियेकिवेद्याठी यदाचरण ब्रान्

द्वाताक्षाको चाहियाक वद्याठा चदाचरण प्रा-द्याणको ही देव-पिनुकर्ममें अन्न आदि दें, क्योंकि-ऐसेको दिया हुआ दान महाफल देता है ॥१२८॥ देव कर्म (यन्न) और पिनुकर्म (आदुमें) में एक २ कि-द्वान् ब्राह्मण को भी जिमादेय तो वहुत फल पाता है और वेदमन्त्र न जानने वाले बहुतसे ब्राह्मणोंको भी भोजन करानेसे वह फल नहीं होता ॥१२८ वेद में पारंगत ब्राह्मणकी दूरसे ही (अर्थात् पिता-पि-तामह आदि भी कैसे ब्रोष्ठ गुणीये इस प्रकार) प-

में पारंगत ब्राह्मणकी दूरने ही (सर्यात् पिता-पि-तामह आदि भी केंने ब्रोप्त गुणीये इन प्रकार) प-रीक्षा करे, क्योंकि-वह ब्राह्मण हव्य कव्य देने का तीर्यक्रप होता है और उनको दान देनेमें अतिथि के पूजनके समान फल प्राप्त होता है ॥ १३०॥ जहां वेदको न जानने वाले दशलाख ब्राह्मण भोजन क-रते हीं वहां उन सबके भोजनका फल, भोजन करने मे प्रसन्न हुआ एक ही वेदवेत्ता ब्राह्मण धर्मानुसार दे सकता है ॥१३१॥ पिंतरोंके निमित्त दियेजाने वाले

बलिक्रप ''कव्य"ः स्त्रीर देवता स्त्रीर देवतास्त्रीं को दिये जाते हुए बलिरूप "हव्य" चानसे श्रेष्ठ ब्रा-

द्याणको देव, मूर्खीं को न देव, क्यों कि-रुधिरसे सने हुए हाय रुधिरमें ही शृद्ध नहीं होते ॥१३२॥ वेदमंत्र हीन ब्राह्मण देवकर्म और पितृकर्म में जितने ब्रासों

को निगलता है उतने ही घंधकते हुए लोहेके श्ल ऋष्टि और गोले यजमानको निगलने पड़ते हैं (३३॥ ब्राह्म में मित्र [दोस्त को न जिमावे, मित्रोंका सं-ग्रह धनसे करे, जिसको न प्रपना मित्र समभता हो

न गत्रु समभता हो उस ब्राह्मणको ही ब्राह्ममें जि-

मावे॥ १३८॥ जो पुरुष श्राह्मकमें मित्रमण्डलको इकट्टा क-रके भोजन कराता है वह पेशाची दक्षिणा कहाती है फ़ौर यह दक्षिणा (भोजन दान फ़ादि) [जैसे

अन्धी गी एक घरमें ही रहती है उसमें से बाहर नही निकल सकती तेमे] इम लोकमें ही रहती है और उससे परलोकमें पितरों का मुद्द उपकार नहीं होता है। १४१ ॥ जैसे जबर (कलरवाली) भूमिमें बीज

घोकर बोनेबाला फन नहीं पाता है तैसेही वेदमन्त्र

न जानने वाले ब्राह्मण की ह्या कव्य देने पर दाता को फल नही मिलता है "११२॥ विद्वान ब्राह्मण को विधिवत् भोजन कराकर दक्षिणा देने पर वह देने वाले और लेनेवाले यानी दोनों यजमान पुरोहित को इस लोकमें और परलोकमें फलका भागी करती है "१४३॥ श्राद्धमें परमयत्न करके वेद पारंगत ऋग्वेदी ब्राह्मणको, वा सकल श्रांखाक ज्ञाता यजुर्वेदी ब्राह्मणको, श्रयवा समाप्ति पर्यन्त सामवेद ज्ञानने वाले ब्राह्मणको भोजन करावे ॥१४५॥ इनमेंसेकोई भी ब्राह्मण जिसके श्राद्धमें सरकारके साथ भोजन पाता है उसके सात पीड़ी पर्यन्तके पितर तृष्त होते हैं ॥१४६ धमें ज्ञ पुरुष देवकर्म में ब्राह्मणको परीक्षा न करे परन्त पितकर्म (श्राह्म) में तो यक्ष करके परीक्षा

उसके सात पीढ़ी पर्यन्तके पितर तृष्त होते हैं ॥१६६ धर्म च पुरुष देवकर्म में ब्राह्मणकी परीक्षा न करे पर्म्तु पितृकर्म (ब्राह्म) में तो यक्ष करके परीक्षा करें ॥१८६॥ जो चीर-पितत वा नपुंचक हों, फ़ौर ना-िस्तक मतके या नास्तिकों की विवक्षा खाने वाले हों तो उन ब्राह्मणोंको मनुजीने देवकर्म तथा पितृ-पद्ममें क्षयोग्य अनिधकारी कहा है ॥१५०॥ वेदाध्ययन यून्य ब्रह्मचारी, दुवंल, ज्यारी, तथा बहुत से यज्यानीको एकसाथ वेदाकर यच्च कराने वाले, धन ठ-हरा कर पूजा करने वाले पुजारी, तथा मांसविक्रेता ऐसे जो निन्दित व्यापार से जीविका करते हों तो

उनको देव-पितृकर्ममें न जिमावे ॥१४१॥ १४२॥ वेद न पढ़ने वाला ब्राह्मण तिनकों (तृण-वा-घास) की अग्निके समान निर्जीव हो जाता है, ऐसे ब्राह्म-णोंको हव्य और क्यम ने देना चाहिये क्योंकि वह राखमें होमा हुआ़ वृषा जाता है ॥१६८॥ इत्यादि संसेपतासे दिखाये वा कहे गये अधि-कारी और अनिधकारी ब्राझणों को खाद्धादि सुभ कर्मों में परम यत्नसे ठीक २ देख विचार करके पि-तरों के निमित्त भोजन कराना चाहिये । और नीचें बताई गयी विधिसे खाद्धकर्ताऔर भोक्ता इन दोनों को वैसे ही नियमसे रहना चाहिये। यथा मनु० अ-ध्याय ३ के १८० से १८० रलोक तक— पूर्वेद्युरपरेद्युर्था आहुकर्मण्युपस्थिते। निमन्त्रयेतज्यवरान् सम्यग्विमान्यधोदितान्।१८९

निमन्त्रयेतत्र्यवराम् सम्यग्वित्रान्ययोद्तितान्।१८० निमन्त्रितोद्विज्ञःपित्र्ये नियतात्माभवेत्सद् । नचछन्दांस्यधोयोत् यस्यष्प्राद्वंचतद्भवेत ॥१८८॥ निमन्त्रितान्हिपितर उपतिष्ठन्तितान्द्विजान् । वागुवज्ञान्गच्छन्ति तथासीनान्यासते॥१८८॥

केतितस्तुपथान्यायं हव्यकव्येद्विजोत्तमः।
कथञ्चिद्रप्यतिकामन्पायः सूकरतांत्रजेत् ॥१६०॥
अर्थात्-याद्धकर्मके माप्त होने पर माद्धके दिन
वे एक दिन पहिले और यदि न होवके तो उचीही
दिन जिनके सक्षण कहचुके हैं ऐवे तीन मयवा एक

दिन जिनके लक्षण कहचुके हैं ऐसे तीन अथवा एक ब्राह्मण की सत्कार पूर्वक निमन्त्रण दे, ॥१८०॥ ब्राह्म में निमन्त्रण दिया हुआ ब्राह्मण निमन्त्रणके दिनसे ब्राह्मके दिनकी राजि तक नियमसे रहे अर्थात् स्त्री-संग्र आदि न करे और अवश्य करने योग्य काम्य जप सादि के स्वाग-नेदका अध्ययन न करे और शैषे ग्राह्म करने वाला यजमान भी इसीही नियमधे रहे ॥१८८॥ क्योंकि-निमन्त्रित ब्राह्मणोंमें पितर श्र-दृश्य रूपसे स्थित होते हैं श्रीर प्राणवायके समान

चलते हुएके शाय चलते हैं ज़ीर बैठने पर समीप में-

ठते हैं इसिल्ये उन ब्राह्मणोंको नियमसे पवित्र रह-ना चाहिये ॥९८८॥ हय्य कव्यमें शास्त्रके अनुसार नि-मन्त्रण दिया हुआ ब्राह्मण निमन्त्रण को अंगीकार करके यदि किसी कारण * से भोजन न करे तो उस

पापसे दूसरे जन्मं में यह शूकर होता है। इसलिये श्राद्ध करने वाले को भी जिस ब्राह्मणको निमन्त्रण * जो ब्राह्मण गरीव यजमानका प्रथम निमन्त्रण पाकर

पीक्षे यदि साहूकार पनावप कत्रिय आदि आकर निमन्त्रण दे तो लोभवण होकर प्रथम आये उस विवार गरीव को छोड़कर धनादयके पास पहिले लावे और असमयं यजमान को छोड़कर समर्थयान् यजमान के पास जाता अर्थात यह समर्थयान् यजमान के पास जाता अर्थात यह समर्थयान् यजमान आहंकार और धन के मद से कहे कि-ऐ ब्राइमण । यदि तुम पहिले मेरे पास आहुभोजनादि खानेको नहीं आते हो तो हम तुमको छोड़कर अन्य किसीको आह सिला देंगे और तुमको आगेके लिये देंबेंगे अर्थात पुरोहित

आस्तर्या । यदि तुम पाइल मर पास आहुमाजनााद खानका नहीं आते हो तो इम तुमको खोड़कर अन्य किसीको आहु खिला देंगे और तुमको आगेके लिये देखेंगे अर्थात पुरोहित करके नहीं मार्नेगे ऐसे लोभदायक यजनानके मदरूप यथनों यर लोभित होकर जो न्यायपयका परिल्याग करता हुआ प्रथम निमन्त्रण दिये हुए उस गरीब यजमानके पास भोजक करने को जो नहीं जाता—यह लोभी—पद्यपाती और हरपोक वा ठग आह्म उस लोभ वा काहिलता रूप पाप से दूसरे जन्ममें अवस्य ही जूकर होता है।

दिया हो उचीको ही श्रद्धा (नमुता) से श्राद्धमें ले आकर भोजन कराना चाहिये॥ इति॥

समाजी—श्री पिरुद्धतजी महाराज! आप श्रीवरींने तो ठीक ही चत्यरूपचे श्राद्धके योग्य श्रीर श्रयोग्य ब्राह्मणोंका वर्णन किया परन्तु आपके कथनानुसार इस वक्त रेमा 'वेद पारंगत पूर्ण पित्र विद्वान्
अब मिलना महाकठिन है। और ऐसे शास्त्रोक्त नियम पालने वाले वेदवेत्ता सदाचारी ब्राह्मणेंकि सिवाय अन्य मूर्ल दुराचारी ब्राह्मणको श्राद्धमें खिलाना अवस्य निपिद्ध है-क्योंकि-धर्मशास्त्रके श्राचानुसार असंस्कृत मूर्ल ब्राह्मणको श्राद्धमें भोजन कराना वैसा ही है जेवा कि भस्म (राख) में घीकी
आहुति निष्फल होती है। इस्हिये श्राद्ध केंसे शिद्ध
हो सकेगा!॥

सनातनी-प्रिय महाग्रयजी! आपं जैसा वि-चार रखते हो वह निःसन्देह सत्य है-परन्तु इस स-मयानुकूल आप सचिय-वैद्य वंगेरह प्रथम अपंने गुण-आपरखोंकी तरफ भी कुछ ध्यान देकर न्यायसे सोचो और कहो-कि नहीं, केवल ब्राह्मखोंकी ही दी-प्युक्त ठहरानेका भूंठा बहाना करके अपने अवद्य फत्तंच्य देव-पितृयज्ञादि कर्म करनेसे भागते हो । म-हाग्य जी! ऐसे आपके [अवद्य कर्त्तच्य कर्म का व्याय (लोपं) करने वाले] पाप-रूप निर्मंत वचन आप जीसे सच्चे सचिय वैद्यों के सन्तान के मुंख से निकर्लें≃तो इससे ज्यादा श्रयने बड़ॉकी ['पूर्णभक्ति नमुताभावसे होनेवाले प्रश्वमेध राजस्यादि यज्ञोंमें पोई हुई] वीरता और अतिष्ठामें धन्बे लगाने वाले स्रीर कीनमे वचन बाकी रहे ?! हा हा ?! "विना-शकाले विपरीतबुद्धिः" इस महावाक्य के अनुसार ठीक देखा जाता है कि किल महाराजके मताप से बुद्धि और वीरता तथा नित्य कर्म कावडीं में प्रेम विपरीत (उलटा) हो, गर्या ?!? तीमी हे ऋषि मु नियों से सन्तानी ! और सच्चे शूरवीर पवित्र श-त्रिय-वैश्योंके पुत्रो ? अब जरा जागो और विचा-ररूपी आंखरे देखो-सोचो कि हमारे ही जैसे निर्वल संतान पर दयाके भगडार महर्षि श्रीमनु महाराज ने अपने द्याभाव से अवश्य करने योग्य श्राद्धादि कर्मी की रक्षा होनेमें कलिकालके समय योग्य और श्रयोग्य ब्राह्मणादिकोंका किस तरहसे निर्णय करके बतलाया है कि-अन्येकृतयूरोधर्मा-स्त्रेतायां,द्वापरेऽपरे । अन्येकलि<u>य</u>्गेन्णां_{ृय्}गहासान्ह्रपतः ॥ ८५ ॥ तपःपरंकृतयुगे त्रेतायांज्ञानमुच्यते ।

तपः परंकृतयुगे जेतायां ज्ञानसुच्यते ।
द्वापरेयज्ञमेवाहु-दानमेकंक छीयुगे॥ द्वा ॥
अर्थात्-पत्ययुग में और धर्म, जेतामें और,
द्वापरमें और तथा कलियुगमें और वितादि युगों
में युगोंकी हीनता (घटती-बहती) होनेचे धर्म
और अधम की भी विलक्षणता हो जाती है ॥

colours and nourishment at thier due time, such as"
"spring season" and less in the other seasons similarly
in the times of Satyayuga spirituality and religions
are more Predom mants and very much less in respective Yugos Treta, Dwaper and much less in
Kaliyuga"

अर्थात्-जैसे ऋतुओं में पदार्थीके स्वभाव बदल जाते हैं तेंचे ही युगों में भी श्रक्तियों के फेरफार से पदार्थों का स्वभाव बदल जाता है स्वीर रस, कस, शक्ति-स्नाकार-उमर और कर्म फल स्नादि भी गुर्गी के बदल जानेसे बदल जाते हैं। यदापि तपशुर्या-आत्मज्ञान-यज्ञ और दान वगैरह सब कर्म सत्य आदि सब्यामों में सदा सेवन योग्य हैं तथापि सत्य-युगमें तपश्चर्या प्रधान (मुख्य) और अत्यन्त फल-दायक है। चेतामें आत्मज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दान ही मुख्य फलदायक है। इनलिये वेदशास्त्र पठन और उनके अनुसार धर्म कर्म-अन-ष्टान करनेमें जो हीनता हुई है वह केवल ब्राह्मणों में नहीं किन्तु सब वर्णाग्रमोंने कलियुगके प्रभावसे ममान ही हो रही है। फिर केवल ब्राह्मणोंका ही अ-धिकार मन्स्मृतिके अनुसार देखा जावे तो किञ्चित अपने आपकी ओर भी सब लोगींसे दृष्टि की जावे कि मुफर्मे विशेष धर्मौकी स्थिति तो किनारे रही परन्तु मनुष्यमात्रका सदा छाचरणीय सामान्य धर्म भी कोई है वा नहीं। किन्तु केवल बाह्मणों के ही

श्रधिकार का निर्णय करने पर जीर लगाना और अपनी और कुछ नहीं देखना यह बुद्धिमानों और न्यायवर्ती विचारवानींकी रीति नहीं है। क्योंकि

श्राद्धादि कर्म करने वाले क्या ब्राह्मण क्या श्रीर जातियोंके सब मनुष्यमात्र । अर्थात् सब वेदमता-नुपाइयोंको सत्-धर्मका आचरण अपने वर्णाग्रमके

मुताबिक ठोक २ करना चाहिये। जैसा कि-महा-भारत सन्धासन पर्वमें लिखा है कि न्यायार्जितधनस्तत्व-ज्ञाननिष्ठोजितेन्द्रियः।

श्राद्वकृत्सत्यवादीच सत्कर्मामुच्यतेनरः ॥ १॥

प्रार्थात् न्यायरीति से जो धनसंचय करता है, ईश्वरके तत्वज्ञानके विचार में जिसका निश्चय है, जिसने अपनी इन्द्रियोंको खोटे विषय मोगोंसे रो-

काहुला है लर्यात् गृहस्याग्रमके धर्मीमें दृढ स्थित है तथा ब्राद्धादि देव-पितृकर्म जो सदा करता है और सत्य वचन बोलता है तथा इष्टापूर्तादि सत्-कर्म करता है वह मनुष्य चव कोई चाहे किसी भी

वर्ण का हो तो जन्म मरणकृप संसारक्लेश से छूट जाता है। यही श्लोक याच्चवल्क्यस्मृतिमें है परन्तु मुद्र भेद है । इस प्रलोक में लिखे प्राद्वादि सत्कर्म करने वाले सब मन्द्योंमें जो २ गुण चाहिये सी वे

ही लोग न्यायदृष्टि से छपने २ में देखें कि उन में जवर लिखे गुण कितने और कहांतक हैं-तो सी-चने से निद्यय हो जायगा कि इन गुणों में से बोडा

श्रंश भी अब के श्राद्धकर्मादि करने वाले सब मनु-घ्यों में कठिनतासे प्राप्त हो सकेगा। तो फिर के-वल ब्राह्मणींके ही धर्म का निखंय करनेमें कटियद्ध होकर प्रवृत्त होना और अपनी आरे [कि कैंसे २ क्कर्म सेवन करने और कैसे २ छन्यायोंसे धन सं-चय करना और शास्त्रोक्त सदाचार किंचित् भी कभी आचरण नहीं करना] दृष्टिमात्र नहीं करनी यह कीन न्याय ख़ीर बृद्धिमत्ताकी बात है। महा-शय जी ! ब्राह्मणों में तो कोई न कोई कुछ न कुछ वेदशास्त्र पढ़ेहुए और उसके जन्मार जपना धर्म कर्म अनुष्ठान करने वाले शायद मिलही जावें प-रन्तु ऐसे प्रश्नकर्ता महात्मा की अपनी ओर अपने सामियोंकी श्रोर दृष्टि करके न्यायसे सोचना चा-हिये कि वे लोग मनातनधर्मकी रीति से नित्यक-त्तंव्य धर्म कर्मका अनुष्ठान (सेवन) करना तो जाने दो परन्तु उनके नवीन मतके गुरु के उपदेश किये यन्यों के अनुसार भी कितने संस्कार उन्हों के हुए ्हें ख़ौर होते हैं। ख़ौर कितना वेद ख़ौर वेदाङ्गीं का तथा और ग्रास्त्रोंका अध्ययन और मतिदिनके सन्ध्यादि पंचयज्ञ कर्स कितने किये जाते हैं कि जिन महाशयोंको दो चार वेदमन्त्रोंके स्वरं सहित गुद्ध पाठमात्र उच्चारण करनेका ज्ञान नहीं है तो उनका मर्य जानने की तो क्या बात है। तो इन सब जपर लिखे वा कहे कारणों ने पदि विद्वान् स-

त्कर्मी पात्र बाह्मण जहांतक ग्राह्मकर्म करनेके वास्त

लाने योग्य हैं-परन्तु जो समयके अर्नुसार अधिक उत्तम अधिकारी पात्र ब्राह्मण न मिले तो धर्मरक्षक महर्षि मनु भगवान्ने अध्याय २ श्लोक ११८ में-गायत्रीमात्रसारीऽपि वरंविप्र:सुयन्त्रित:।

नायंत्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशोसर्वविक्रयो ॥११८॥ अर्थात्-केवल गायत्रीमात्र जानने वाला भी यदि (सुवन्त्रित) शास्त्रनिविमत प्रवीत् प्रभद्य भ-क्षणादि रहित और व्यभिचारादि कर्मींचे रहित है तो वह थोड़ा पढ़ाहुआ भी ब्राह्मण समयानुसार अ-त्यन्त श्रेष्ठ श्रीर श्राद्धादि कर्मीमें योग्य पूजनीय है। परन्तु (अयंत्रित) जो निषिद्ध मद्यमां सादि भक्षण करने वाला और वेंचने वाला है तथा नित्य कर्त-व्य संध्योपासनादि कर्म नहीं करने वाला और व्य-भिचारी वह यदि वेदवेत्ता महान् परिडत भी ही तो भी वह श्रेष्ठ नहीं और न श्राद्धादि कर्मीमें लाने योग्य है। प्रव विचारपूर्वक देखो कि श्रन्तमें श्री म-हर्षि मनु भगवान् ने कम से कम केवल गायत्रीमात्र जानने वाले गुलक्षण मुपात्र चैष्णव ब्राह्मण को ही भें प्र और श्राद्ध के योग्य चिद्ध किया है। इसिलये महर्षि श्रीमनुजीकी खाचा से खत्यन्त विद्वान् धर्मच ब्राह्मणके श्रभाव में केवल गायत्रीमात्र जानने वाले स्रीर सदाचारी सुपात्र ब्राह्मण को ही सत्कारपूर्वक

निमन्त्रण देकर शाह्नमें श्रद्धांचे भोजन कराकर पि-तृयज्ञको सिद्ध करना हम वेदमतानुयायियोंका मुख्य कत्तंव्य है। स्रीर जंगल वा म्लेच्छादि देशमें सर्वया ऐसा केवल गायचीमाच जानने वाला भी यदि सु-पात्र ब्राह्मण न मिल सके तो— अलामेबाह्मणस्यैव कोशःकार्यीबटुःप्रिये । प्रभासखरह बाक्य. (तथा=विधायवादभंबटून् आसनेपुसमाहितः। प्रैषानुप्रैषसंयुक्त-विधानंप्रतिपाद्येत् ॥१॥ महर्षि श्री देवलस्मृति, अर्थात्-सुपात्र ब्राह्मण के अभाव में दर्भी की बोटी प्रतिमाएं बनाकर उन को ही ब्राह्मणरूप में कल्पित करके पवित्र आसनों पर बैठाकर शाहु के मन्त्रोसे (भैषानुभेष) एव गन्ध-सुगन्ध-धृप दीप नैवेद्यादिकों से अर्थात् गंध (चन्दन) पुष्प ध्प दीप भोजनादि को उन कल्पित ब्राह्मणों के प्रति . श्रद्धांचे अर्पण करके आप ही श्राद्धकर्मका अनष्ठान पूर्ण करे। यदि वैसा भी न हो सके तो श्रीकात्या-यनस्मृतिके वचनानुसार-आपद्यनानीतीर्थेच प्रवासेपुत्रजन्मनि । आमश्राद्वप्रक्वीत भागारजसिस्क्रमे ॥ १॥ अनिनरघनीवापि तथैवद्यसनान्वित:। आमम्राहुं द्विजःक्षांदु वृपलस्तुसदैवहि ॥ २ ॥

श्रयत्-श्रापत्कालमें, तथा श्रग्नि के न मिल सकनेमें, तीर्थमें प्रवास यानी सुसाफरीमें, पुत्रजन्म के समयमें और रजोधमें में तथा संक्रान्ति अर्थात् पुण्यकालमें "स्नामग्राद्ध" यानी कच्चा सीधा लेकर पितरों के निमित्त यच्चीपवीत वामपार्थ्व करके "स्व-धा पितृभ्यं इदं अन्नं समर्पयामि" ऐसा उच्चारण क-रके सुपांच सदाचारी गरीब ब्राह्मणके घरमें वह अन देकर शाह्यकर्म पूरा करे परन्तु शूद्रजाति हमेशा "सामगाद्व" करे सर्थात् कच्चामीधा संकल्प करके ब्राह्मं थों को दे। यदि इतना भी न हो सके ती-सर्वाऽमावेक्षिपेदंग्नौ गवेदद्याद्थाप्सुवा । नैवमाप्तस्यलीपोऽस्ति पैतुकस्यविशेषतः ॥ १ ॥ महर्षि देवलस्मृति॥ मर्थात्-कुछ भी नहीं हो सके तो भी किंचित् कच्चावापकामाहुसाभोजन पितरों के नामसे अ-ग्निमें, ख़थवा जलमें वा गौको देवे परन्त पितृकर्म का लोप न करे। और यदिमनुष्यद्रिद्री (कंगाल) ग्रममर्थ होनेके कारण इतना भी न कर सके तो-वृहन्नारदीय पुरागाधास्त्रके ,वचनानुसार-अथवारोदनंकुर्यात्-अत्युच्चैविंजनेवने । द्रिद्रोहंमहापापी वदेदितिविचक्षण: ॥॥ वृद्दवारदीय पुरावा प्रथ्याय ५६॥ इस नारदीय वाक्यानुसार बाह्यके दिन निर्जन बनमें जाकर "मैं महापापी दिरद्री (कंगाल) हं"

ऐसे दीन वचन बोलकर पितरोंसे झमा मांगे परन्तु पितृकर्मका त्याग न करे। फ्रीर-यदि रोदन करनेमें भी संकोच करे तो-

सर्वाभावेषनंगत्वा कक्षमूलप्रदर्शकः। स्र्वादिडोकपाछानामिद्मुच्चै:पठिष्यति ॥५०॥

नमेऽस्ति वित्तं न धनं न चाऽन्यत्, श्राहु-स्य योग्यं स्त्रपितृन्नतोस्मि । सप्यन्तु भक्तया

पितरी मयैते भुजीततीवर्त्मनिमारुतस्य ॥५०॥

श्रीवाराहपुरास अध्याय १३ में ॥ सर्वात्-वन में जाकर दोनों भुजाओं को ऊपर

करके नम्रता और दीनभावने हाय जोड़कर मूर्यादि लोकपालोंके सन्मुख ग्रपनी कुक्ति दिखाकर उच्चस्वर में कहे कि-हेपितृदेवो ! मेरे पाम इतना श्रव्न, धन तथा सन्य कोई भी ब्राह्मोपयोगी-पदार्थ कुछ भी नहीं है-इसलिये मैं अपने पितरोंकी कैवल नमस्कार पूर्वक प्रार्थना करता हूं कि है मूर्यादि लोकपाली ! इस मेरी भक्तिरूप प्रार्थना से मेरे पितर तुप्त होकर मुभाषर प्रसन्न रहे ॥ इति ॥

ममाजी-ग्रीमान् परिडत जी महाराज ? यह मुक्ते प्याप श्रीवरों ने ऐसा न्यायरूप युक्तियुक्त ब्रा-ह्मणोका निर्णय करके बतलाया है कि जिस से सब

मुक्ते कोई भी सन्देह बाकी नही रहा और आपत्ति में भी श्राद्ध करनेका ऐका धर्मशास्त्रोक्त उत्तस सर्व मान्य मार्गवतलाया कि बच अब मैं पूर्णकृतार्थ हुआहूं॥ हे मिय परमपन्य पण्डितजी ! परब्रह्म परमा-त्मा स्नाप जैसे धैयंबान् सुधील विद्वान् सत्योपदेशक ब्राह्मणकी सदा मितष्ठा यश बढ़ाये और खाय श्री-वरोंको चदा प्रवन्न रक्खे कि जिन श्रीवरोंने निता-न्त परमार्थरूप महान् उपकार करके मेरे ग्रीर व-लिक अन्य मेरे समाजो भाइयों के तथा आस्तिक साधारण सनातनी भाताओंके भी अति कठिन स-न्देह रूप अन्धकारको प्रवत्तशास्त्र प्रमाण और अ-काट्य सद्युक्तियुक्त वचनों से ऐसे दूर किया है कि जैमे स्पेनारायणके प्रखर तेजमे मंपूर्ण जगत्का छ-न्धकार नाथ व दूर हो जाता है-इसलिये में इस श्राद्धविषयमें तो निःसन्देह स्राप धर्मरक्षको गृर समभ कर आप सद्गुक्योंके चरणकमलों में प्रेम से चिर नवाता हूं। हे मभो! मुभपर समा करो छीर मुभको आशीर्वाद देखी !? सनातनी-प्रिय महाशय जी ! सदासुखी भव ! खायुष्मान्-भव ! ?

इति श्री श्राद्वपिरुमीमांसायां श्राद्वकर्मणि ब्राह्मणानामधिकाराऽनधिकारनिर्ण-यने समाप्तीयं पष्टीऽध्यायः ॥ - श्रीसाम्बशिवार्पणमस्तु ॥

ओ३म्-शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

"ॐ-नमोऽन्तर्यामिणे"

॥ त्र्राय सप्तमोऽध्यायः ॥

मेरे प्रिय आधुनिक आर्यंसमाजी महाशयोंको निम्नदर्शित श्राद्धविषयक त्रिशत् (३०) प्रश्लों के णास्त्रप्रमाण युक्तियुक्त उत्तर देनेके लिये प्रार्थना॥ मझ १-स्वा० दयानन्दजीने सन् १८०५ के सत्या-र्यमकाश्रमें "जितने जीवित हों उनके नामसे तर्पण न करे किन्तु जो २ मरगुथे हों उनके नामसे तर्पण करे" लिखा है मो इसकी तुम प्रमाण न्यों नहीं मा-नते ?। यदि मानते हो तो जीवितांको ब्राह्मतपूर्ण कहना मिच्या क्यों नहीं है । यदि कही कि स्वा० द० ने ऐसा नहीं कहा और न लिखा किन्तु खपाने शोधने वालोंने वैशा बनादिया है तो क्या तुम में में कोई भी समाजी महाशय वेद पुस्तक हायमें ले कर अपयवे कहदेगा कि यह बत्य, है। अर्थात् स्वा-मीजीने नही लिखा किन्तु छपाने शोधने वालोंने ही मिलादिया ॥

प्रश्नं - जब अथवंवेद १८। १। ४४॥ (असुं य हेंगुः) मन्त्रांग्रका अर्थ प्राणवायुमात्र सूहमदेहधारी पितर निहक्तके अनुसार सिद्ध हो चुका है तो जी-वित स्यूल देहधारियों में वह अर्थ कैसे घट सकेगा। क्या उससे मृतिवितर सिद्ध नहीं हैं? तथा अथवंवेद १८। २। ४८ (य प्राविवियुद्धवेन्तरिक्षम्०) जो पिनतर बड़े प्रन्तरिक्ष लोक में प्रवेश करवुके सो क्या तुम्हारे जीवित ही पितर प्रन्तरिक्ष प्राकाशमें प्रवेश कर सकते तो मृतपिनतरोंका श्राद्ध तर्पण उक्त मन्त्रसे सिद्ध क्यों नहीं हैं। प्रवि नहीं कर सकते तो मृतपिनतरोंका श्राद्ध तर्पण उक्त मन्त्रसे सिद्ध क्यों नहीं हैं। प्रश्न क्व प्रथवंवेद १८। ३। ४४॥ (प्राग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत) यहां हविष् खानेके लिये उन पितरोंको बुलाया गया है कि जो मरणानन्तर प्राग्नमें जलाये गयेथे। क्योंकि (यानग्निरेव दहन्त्स्वद्यति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः) जिनको जलाता

हुआ अग्नि चाट जाता है वे पितर अग्निष्वास कहाते हैं यह अग्निष्वास पदका अर्थ अतपय ब्रा० में लिखा है तब वे अग्निष्वास पितर जीवित कैंसे हो सकते हैं। इस प्रमाणसे भी मरोंका आद्ध होना सिद्ध क्यों नहीं है ? क्या 'तुम्हारे मतमें जीवित ही जलादिये जाते हैं और क्या जलजाने पर भी वे लोग जीवित ही बने रहते हैं ? यदि ऐसा हो तो दाहकर्म होजाने पर किसी समाजी को क्या जीवित दिखाओं ?॥

म० है- अथर्ववे ० १ । ३ । २२ (ये ते पूर्वेपरा-गताः) जो पहिले पितर पूर्वकालमें व्यतीत होगये उनके लिये भी तपंग करना चाहिये । क्या इस प्र-माग से मरेहुये पितरों का श्राद्ध तपंग सिद्ध नहीं होता ! और क्या स्थाकथन जीवितों में घट सकता है ! प्र- ५-अथर्ववे० १८। ४। ४८। (मृताः वितृषु चंभवन्तु) मरे हुए वितर वितृयोनिमें प्रगट हों उ-न्हींके लिये श्राद्ध तर्पण होता है। क्या यहां मूल-वेदमें मृत शब्द नहीं ? और क्या इचने मरींका श्राद्ध तर्पण चिद्ध नहीं होता ?॥

मर्व-अयर्व० १८। ४। ६३ (अधामासि पुन-रायातनो गृहान्०) यहां पार्वणादि माधिक ब्राह्में पितरों का विश्वजंन करके महीनेभर बाद फिर बु-लाना कहा है। सो क्यां जीवित पितरोंको तुम म-हीने २ में एकही बार भोजन देते हो? क्या वे ऐसा करने से जीवित रह सकते हैं। यदि हां कही तो रेने कौन हैं ? ख़ौर (नमः पितृभ्यो दिविषद्भ्यः०) अयर्व वै० १८। ४। ८०। दिवि नाम स्वर्गहोक में रहने वाले पितरोंको यहां नमस्कार कहागया है। सो क्या जीवित ही समाजियोंके पितर स्वर्गमें जाते हैं ? यदि कोई जीवित स्वर्गमें जाते नहीं दीखें ती इससे मरोंका बाह्य करना सिद्ध क्यों नहीं है ? ॥ म० ७-क्या तुम लोग (ख़पराहः पित्लाम्)

प्र09-क्या तुम लोग (ख्रपराह्यः पितृशाम्) इस धतपय प्रमाणके ख्रनुसार मूखे पिताको भी दो-पहरके बाद ही भोजन बदोगे ? खीर मनुष्पके भी-खनका समय मध्यान्ह लिखा है तो क्या तुम्हारे जीवित पितर मनुष्य नहीं हैं? जब कि मनुष्य हैं तो मनुष्यों खीर पिताोंका भिन्न समय क्यों रक्खा है? क्या इससे जीवित मनुष्यों से पितरोंका भिन्न होना चिद्धं नहीं ? तथा जब श्रतपथ कागड २ । ३ ४ । में लिखा है कि (तिरद्ववे-वितरो मनुष्येभ्यः) मनुष्यों वे पितर छिपे नाम श्रद्धश्व होते हैं । यो क्या जीकित मनुष्य पितर मनुष्यों से कभी छिपे नाम श्रद्ध रह सकते हैं ? क्या इससे मृतपितरों के लिये

श्राह्म स्पष्ट सिद्धं नहीं है? एवं श्रतपथमें पिगडदान के बाद पीठ फेर लेना लिखा है सो क्या तुम जी-वित पितरोंको भोजन परोम कर उनकी खोर पीठ करदेना ठोक समभते और वैमा ही करते हो ? ॥

प्रप्र ट-पदि लापके ही मतमें स्वामी द्यानन्द जीने स्वय संस्कारिविधि छवी मुठ १८४० के पृष्ठ १०४ समावर्तनसंस्कारप्रकरण में लिखा है कि "हाय में जल लेकर लंपस्वय मानी यज्ञोपकीत वामपार्श्व क-रके दक्षिणदिशाकी तरफ मुख करके "ॐ पितर; जुं-न्धस्वम्" इस मन्वसे यह जल पृथ्वी पर छोड़ें" सो क्या तुम इससे भी जीवितों में जलदान मानोंगे

यदि जीवितों का ही तपंष मानना चाहते हो तो (भूमि पर जल छाड़) का काटकर (पिताको भूति में लिटाकर ठम के मुख में जल छोड़े) रैमा क्यों नहीं बना देते हो? क्या स्वा० द० के सेंवा लिखने से खब भी मरींका तपंषा मानना सिद्ध नहीं है?॥ पठ टे-मेंस्कारविधि यं० १८४० पृठ १०६०-गृहाण्यम प्र-

प्र० टं-संस्कारविधि सं० १८४० पृ० १९८-गृहाश्चम प्र-करणमें बिलनेश्वदेवविध-(स्रोइस् पितृभ्यः स्वधा-विभ्यः स्वधानमः) इस मन्त्रमे एक ग्रास दक्षिणमें रखनेको लिखा है चो यह ग्राम वा भाग किनको दिया जाता है ? स्रोर दक्षिणमें क्यों धरा जाता है ? क्या इसमें मृतग्राद्ध मानना सिद्ध नहीं है ? ॥ म् १०-इग्वेदादि भूमिकामें स्वा० द० ने "म-ग्निष्वात्त" का अर्थ अग्निविद्याको जानने वा अ-ग्निसे विशेष कार्य साधन करने वाले झंजनके डाई-वर ब्रादि किया और ब्रागरे ग्रास्त्रार्थ में स्वाव तु-लसीराम छादि समाजी उपदेशकों ने जलेहुए मुद् के परमाणु अर्थ किया इन परस्पर विकद्घ दोनों में कीन अर्थ सत्य और दो में कीन एक मिच्या है? म० ११ क्या समाजी लोग स्रग्निष्वात्त पितरीं को युत्तानेके समय काले २ खंजनके ड्राईवरींका छा-षाहन करते हैं अथवा पं॰ तुलसीरामके किये अर्था-नुसार जले हुए मुद्कि परमाणुओंको (अग्निष्वा-त्ताः पितरएह गच्छत चदस्यदस्यदत) कहते हैं कि है जले हुए मुद्दि परमाणुश्री ? तुम लीग यहाँ स्ना-क्षी, अपने व सामन पर बैठो और भोजन करी त-या भीजनके वाद हमको बहुतना धन दे जाली। सी क्या मुद्कि जले हुए परमाणु आते, आसनोंपर बैठते, श्रीर भोजन करके धन दे जाते हैं ? इससे क्या नमाजियों के पितर मुर्दा के जलेंहुए परमाणु सिद्ध नहीं हैं है ॥

' प्र०१२-ऋग्वेद भाष्यभूमिकामें स्वा० द० ने प्र-तिज्ञा की है कि हम निरुक्त-ंग्रतपद्मादि प्राचीन आर्षग्रन्थों के अनुकूल वेदार्थ करते और मानते हैं, फिर ख्राग्निष्वात्त पदका अर्थ शतपथ से विरुद्ध मन-माना व्याकरण की स्वरप्रक्रिया से भी विरुद्ध किया है-सो मिट्या क्यों नहीं ? और ऐसा करनेसे स्वा० द्द० की पहिली मितज्ञाका खण्डन क्या नहीं होगया? इसका तुम क्या जवाब रखते हो ?॥

८८ वें में स्वामी द० जीने श्राद्धतपंश का अर्थ करके प्राचीर में कहा है कि यह जीवितों को है मरों की नहीं, सौर फिर ऋषितर्पण पितृतर्पण लिखके इस से म्रागे लिखे छर्थ सिद्ध किये हैं कि-११ ग्यारह प्रकार कें पितर ये हैं-

मञ्ज १३- मत्यार्थ-प्रकोश छपे सन् १८८३ के पष्ठ

नं १-जो परमेश्वर परमात्मा और पदार्थवि-द्यामें निपृण हो वह (सोमसद) नं० २-जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि के जानने वाले हों वे (अग्निष्वात्त)

नं० १-को उत्तम विद्या युद्धि युक्त उत्तम व्य-वहारमें स्थित हों वे (बर्हिपद्) नम्बर ४-जो ऐश्वयके रक्षक महीपधिके पान करने से रोग रहित और अन्य के ऐखर्य रक्षक, और

पधियों को देकर रोग नाशक हों वे (सोनपा) पितर हैं।

नम्बर ५-जो मादक (नशेकारक) श्रीर हिं-साकारक द्रव्योंको छोड़कर भोजन करते हैं वे (ह-

विभेज) पितर॥

नम्बर ६-जो जाननेकी योग्य वस्तुकी रक्षक और घृत दुग्धादि खाने खीने वाली हों वे (आज्यपा)

नम्बर अ⊸िजनका श्रन्छा धर्म करनेका सुखरूप समय हो वे (सुकालिन्) पितर हैं॥

नम्बर ८-ज्ञो दुर्शे नो द्रवह और श्रेष्ट्रोंका पा-सन करने हारे न्यायकारी हों वे (यम)॥

नम्बर ई-मन्तानोंके अब और मत्कारमे रक्षक व जनक हों वे (पिता)॥

नम्बर १०-जो सन्न स्रीर स्त्कारीं से सन्तानीं का मान करें वे (भाता)॥

नम्बर १९-स्वानी स्त्रो, भगिनी, मम्बन्धी स्रोर एक गोत्रका तथा सन्य कोई भद्रपुरुप व वृद्ध हो तो उन सबको सत्यन्त स्रद्धावे उत्तम श्रद्ध, वस्त्र, सुन्दर पानादि देकर स्रच्छे प्रकार जो तृष्ति करना है वह स्राद्ध व तर्पण कहा जाता है ॥ इति ॥

श्रव यमाजी महायव यहां पर स्पष्टक्रपे बतावें कि नम्बर एक १ के पितरों में पदार्थिवद्या जानने वाले चाहे वह हिन्दू हों या मुख्लमान या खंगरेज, सबया सभी ही पितर होंगे वा जहीं ? ॥

नम्बर २ ट्रक्रेफे पितरों में श्रीन श्रीर विद्युत् (बानी विजुती) श्रादि को समक्षकर उपसे टेली-ब्राम श्रीर टलीफोन खादि काम करने व बनानेवाले तारवायू पर्गेरह और श्रीन से रेल का श्रञ्जन तथा और मशीन पर्गेरह बनाने व चलाने वाले हिञ्जनि- यर, गार्ड, ड्राईवर स्रीर भोदलर फिटर वगेरह स्नाप के पितर होंगे या स्नव्य कोई? वयोंकि इस वक्त स्न-निन स्रीर विज्ञलीको ज्यादा समभने व काममें लाने

वालें तो ये ही उपरोक्त विलायत के महाग्रय श्रीर हिन्दुस्तानके मिस्ली वगैरह हैं॥ नम्बर ३ में तो श्रंबेजों के सिषाय श्रीर कोई

होंगे ही नहीं। क्योंकि वे ही १०० में ट्रा तक पहे हुए श्रीर सायन्समें इस वक्त सबसे बढ़े चढ़े हैं कि जिन बुद्धिमानोंकी राह लेकर व उन्होंके रिवाजको पसंद करते हुए श्रपनी समाजिनी लेडियोंको श्रंगरेजी ले-

डियोंके समान कूट घूमने फिरने और जलसों (उ-त्मवों) में बहुक्षों मनुष्यों के बीच बैठने व लेक्चरारी अरनेमें स्वतन्त्रता देकर हमारी भारतवीरांगनाओंके चनातन पतिव्रत धर्ममर्यादाको तोड़ते हुए स्त्रियोंके प्ररम लड्जारूप आभूपणोंको अपने ही हार्योंके खीन रहे हैं कि जिसका नतीजा सब यह निकल रहा है

प्रस्म लज्जारूप आभूपणोंको ख्रपने ही हाथोंसे छीन
रहे हैं कि जिसका नतीजा ख़ब यह निकल रहा है
कि वे समाजिनी विदुषियें नियोग और विधवाबिवाह करना मंजूर करके ग्यारह ११ पित तक खसम
क्रारना चाहरही हैं और दूसरा खसम तो बहुतेरी
खान्दानी समाजिनी विधवाझों ने किवा है विक पंडित तुलसीरामादि समाजी उपदेशकों ने तो इस निन्दित, व्यभिचारहप नियोग वा विधवासियाह

निन्दित, व्यभिचारहर नियोग वा विधवाविवाह पर ख़ौर भी जोर लगाकर पचकन्यांचिरवादि * छोटे छोटे ट्रैक्ट रचकर प्रमिद्ध करते हुए उन तप्न वि-दुषियोंको प्रमन्न किया है। वाह ! वाह ! ये ही तो इन आर्थ्याभावियों के धर्म हैं !!! अप्षोच ! श्लीर अपेर लज्जा! है प्रभो! हे नाथ । तू ही भारतवी-रांगनाओं के पतिव्रतधर्म व ,चनातन आर्थ्यमर्थादाकी रक्षा कर ॥ अस्तु ॥

नम्बर ४ में शायद डाक्टर फ़ीर हकीम ही होंगे। क्योंकि वही लोग फ़ीपि जानते व दूसरों

को स्रोपधियें देकर स्नाराम करते हैं ॥ नम्बर ५-में सरावगी, वैष्णव, स्रोव यह होंगे।

क्योंकि इन लोगों के बराबर हिंगाकारक मांग ग्रीर मिद्रा ग्रादि मादक द्रव्यों से ज्यादा परहेज टूमरों को नहीं होता ॥ नम्बर ६ में तो सम्पूर्ण संसार ही पितर होगा

क्योंकि घी टूघ सब ही खाते हैं। विल्क भंगी च-मार फ़ादि फ़ीर पशुभी टूघ पीते हैं। इसलिये घी फ़ीर टूघ खाने पीने वाले सब ही इन समाजियोंके

"आज्येषा" नाम वाले पितर होंगे॥ नम्बर ३ के पितरों में मिर्फ स्रमीर लोग ही

. नम्बर ० के पितरों में सिफं ग्रमीर लोग ही होंगे।क्योंकि उन्हींका मुखरूप प्रच्छा समय जाता है ज़ौर नम्बर ८ में तो सिवाय राजाके कोई हो

स्त्रीर नम्बर ८ म तो सिवाय राजाक कोई हो ही नहीं सकता? क्योंकि दुशें की दयह देनेवाला

 इम व्यभिवार प्रचारक निन्दित पुस्तकोका मुखतीह जवाय और सद्युक्तियुक्त खब्हन श्री सनातनपर्मरक्तक वि-द्यावायस्पति विद्वद्द प० भीनसेन ग्रमादि महोपदेशको के रिषत "विषयाधिवाहभीनांसा" श्रीर "पञ्चकन्याचरित्रा-दि" पुस्तकोर्मे देसो ॥ न्यायकारी राजा ही हो चकता है। अब कहिये कि स्वामी जी के लेखानुसार तो संसारभर चाहे कोई जाति हो आप का पितर अर्थात् पिता हुआ और

पुत्र का नाम ही न रहा क्या यह बात यथार्थ है ? श्रीर इसकी आप मानते हैं कि नहीं। अगर मानते हैं तो वस खबरदार हो जाइये ? व साजसे रिश्तेका नाम मिटा दीजिये क्योंकि जाहिरा देखनेमें समर्चे

वह आपका भाई या भतीजा या खड़का है या कोई दूसरी कम कीम है परन्तु उस ने भी दूध पिया है व अभीतक द्रध पीता होगा आजरे उस को पिता ही कहिये श्रीर फिर सगर साप के समाजियों में से

किसी को कोई जाति जंच नीच मली बुरी गाली देया मारबैठे तो इस का युरान मानिये क्यों कि वह भी शायद स्वामी जीके लेखानुसार किसी कि-स्मके पितरों में से आपका पितर जरूर ही होगा और

कदाचित सगर स्रीर किसी नम्बर में न भी स्नाया तो दूध पीने वाले वितरोंमें तो सवश्य ही स्रावेगा सिवाय इसके प्रव किसी आदमीकी ताबेदारीमें द-

लिक जुतातक उठानेमें मापको परहेज न करना चा-हिये क्योंकि संसार में पितृसेवा ही मुख्य * धर्म है

+ बाह ! । स्वामीजीने क्याही अच्छा (जीवित पि-तरीका) श्राह तर्पण कराया । धन्य भाग्य हैं उन श्राध-

निक आर्घ्योंके कि जो सम्पूर्ण संसारभर के ननुष्योंकी अ-

प्रगर आप इतने पर कहें कि पितृग्रब्दि पिता का अर्थ नहीं है तो आप ही कहिये क्या होगा? जरा स्वामी जीका लेख सत्यार्थप्रकाश पृ० टंटें पंक्ति २३ वा उन्हीका यजुर्वेदभाष्य अध्याय १८ को देखली जिये।

अश्च १४- स० प्र० पृ० १०० में "धन्वन्तरये स्वाहा। यह द्यावाप विवीभ्यां स्वाहा। ये जानुगायेन्द्राय नमः। श्रो३म्-वानुगाय यसाय नमः। श्रो३म्-वनस्पतिभ्यो नमः। श्रिये नमः। मद्रकाल्ये नमः। दत्यादि लिख्तर कहा है कि रेती वा पृथिवी ही पर पत्र विद्याक्तर जन पर पूर्वदिशादिके क्रमानुषार उपरोक्त मंत्र पढ़कर अञ्जक्षे भाग यानी ग्राष रक्षे, पीछे जो कोई श्रतिथि हो उप को खिला देवे और नमक मिलाहुशा अन्न अर्थात् दाल भात रोटी शाक वेगेरह उठकर (६) छै भाग पृथिवीमें घरे ॥ इति॥

हे प्रिय महाशयो ? अब जिद्ध और पत्तपात के पर्दे नेचों से हटाओ और अपने उपदेशकों से पूढ़ी कि स्वाठ दठ जीने इन उपरोक्त मन्चोंका गर्व स्प- एतया क्यों नहीं लिखा ? क्या इस में कोई भेद हे क्योंकि और जगह तो स्वामी जी ने स्क ग्रब्द भी पना पिता माता समक्तर उनका अत्यन्त प्रेम क श्रदा भी

पना पिता माता समक्तकर उनका अत्यन्त प्रेम व अद्वासे
आद तर्पण करते हैं। परन्तु न मालूम कि वह समाजी अ-पनी खियोकी (स्वा० द० रिचत नम्बर ६ के "धाज्यपा" नाम बाले वितरोंमें समक्ती व मानते हुए भी) क्या मा-नेंगे या करेंगे अथांत दूप भी साने के कारस अवश्य ही उन अपनी खियोको विष्-मुद्दा में निर्नेंगे॥ व्यर्थ नहीं छोड़ा हैं फिर यहां खर्ची का क्यों भोजन करगये ? क्यों साहव ! इन भागों से क्या प्रयोजन है ? ग्राप तो विद्वानींका नाम देवता कहते हैं फिर यह भाग किसके विया वनस्पति और लहमी रोटी खातीं है या पृथिवी खाने साती है? ईखर मूर्तिके मामने तो भोग रखनेमें जीप को बड़ा रच्च होता है और आप प्विवी जड़ पदार्यको भीग रखते हैं वह क्या बात है और फिर अनुचरों (लप्रकर व चेना) च-हित इन्द्र, वंच्या, यम इत्यादिके नामोंसे रखना छीर उन को भाग देना यह तो आप चनातन कवा ले चैठे, अगर पुरानी नहीं हैं तो कहिये यम का नाम यहां भी हाकिम ही का होगा या नहीं? स्तीर जब यायद यह अनुचरों के सहित आजावेंगे तब कहिये गरीबका क्या हाल होगा उस का तो एक हो दिन में दिवाला निकलता है फिर ये रोज र का नियम कहांतव्य चलेगा ॥ म० १५-साप तो विद्वानी की ही देवता कहते हैं फिर कहिये यह भद्रकाली, वनस्पति, जल महत्त इत्यादि भी कोई विद्वान घर र फिरने वाले हैं जि-न्हें प्यम् २ मान देनेको बतलाया है, और जब वि-हान् ही देवता हैं तो यह पनद्रह सोलंड नाम प्रल-हदा अलहदा क्यों; क्या उन विद्वानोंके नामके साथ यह भद्रकाली वनस्पति इत्यादिका विशेषण रहता है विवाय इनके इन पन्द्रह मोलह विहानोंको रोज री ग कहांतक कोई खिलांबेगा इस पर अगर आप

कहें कि एक २ ग्राम निकालें तो कहिये कि क्या वे एक ब्रामचे चन्तुष्ट हो चकते हैं कभी नहीं ! अगर आप कहें कि ये ईश्वर के नाम हैं तो हम कहते हैं कि ईखर एक है एक ही भाग निकालना योग्य है श्रीर सगर साप कहें कि उनके सनन्त नाम हैं तो नामानसार भाग भी अनन्त होना चाहिये फिर ये पंद्रह मोलह ही क्यों ? श्रीर श्रापका ईश्वर निरा-कार है फिर निराकार ईश्वर कैंसे इन साकार प-दार्थी को खावेगा क्या निराकार ईखर को पाञ्च भौतिक प्राणीवी तरह भूंख लगती है ? यदि नहीं कहो तो फिर ये प्रापके दिये सब भाग व्यर्थ हैं? ग्राचे हां कहो कि ईखर हमारे इस भक्ति को व्या-पक रूप से देखकर प्रसन्न होता है तो अब आप ही फैंगला करो कि हम गनातनी और आप गमाजि-योंमें पक्कें (कट्टर) मूर्त्तिप्जक कीन हुए ? प्रश्न १६-(प्राम्। श्विक्ताः पितरश्चमीियाता एका क्रिया हृयर्थकरी प्रसिद्धा) व्याकरण महाभाष्य के इस प्रमाण से भी मृत पितरोंका तर्पण करना सिद्ध है। तब ऐसे प्रमाण वेदोक्त होने पर भी मरों के बाद्ध तर्पण मानने में तुमं क्यों हिचिकिचाते हो। थ्या हमने मृत पुरुषों के ब्राह्म तर्पण की सिहि में चेदादि के जो अनेक प्रमाण दिये हैं उनके लिये तुम्हारा कोई उपदेशक या पिएडत हाथ में वेद पुस्तक लेके ग्रपय कर कह सकेगा कि सृत ग्राद्धके

लिये ये सत्य २ प्रमाण नहीं हैं॥

प्रश्न १९-(तृतीयाह प्रद्यीरिति यस्या पितर जासते अथवं० १८। २। ४८) यहां से जपर प्रद्यी नामक तीसरा लोक है जिस में पितर लोग रहते हैं। सो क्या तुम्हारे जीवित पितर कहीं खाकाश्र में लटका करते हैं। ख़ीर मंचमें कहे वे ही पितर हैं जिन के लिये श्राद्ध तर्पण किया जाता है। तब वया इससे जीवितों के श्राह्म माननेका खरडन नहीं होता ?॥ प्रश्न १८-विद्धान्त शिरोमणि प्रतक को स्वा० द० ने प्रामाणिक साना है उनमें लिखा है कि (तत: श्रेपाणि कन्याया यान्यहानितुषोडश । ऋतुभिस्ता-नितुल्यानि पितृभ्योदत्तमक्षयम् ॥) वया यह कन्या के सुर्ध्य में होने वाले बनागत श्राद्धीं के लिये आ-पं ममाण नहीं है ?। प्रश्न १६-क्या तुम लोगों ने यह मिच्या कुतर्क नहीं किया है कि राजा कर्ण से चलने के कारण कर्णागत कहाये फिर कनागत अपभ्रंश हो गया। इस मे कर्ण राजा के पहिले कनागत ग्राह्म नहीं ये। क्योंकि जब चिद्धान्त शिरोमणि के प्रमाणा-नुसार सन्यागत अब्द् मे कनागत हुआ कनागत

नुसार कन्यागत अन्द से कनागत हुआ कनागत आद्ध सनातन अनादि काल से सिद्ध होने पर तुम्हारा कुनर्क मिथ्या सिद्ध क्यों नहीं हो गया।
क्या अपनी सेसी २ रेसी २ निथ्या कल्पनाओं का
निर्मूल खरडन हो जाने पर अब भी लिन्जित
नहीं होगे?॥

प्रश्न २०-(त्राह्मे शरदः । पा० ४। ३। १२॥ य-रिंद भवं शारिदकं श्राह्मम्) पाणिनि ज्ञाचार्य के व्याकरण का यह मूच है। शर्य यह है कि शरद् चतु नाम कार्तिक में होने वाले श्राह्म शारिदक कहाते हैं। यहां सन्य ज्ञातुओं के श्राद्धों का विचार छोड़ के शरद्चतु के खाम श्राद्धों का प्रमाण होने चे क्या इन कनागतों का प्रचार पाणिनि श्राचार्यचे भी पहिले स्रति प्राचीन कालचे चला चिद्ध नहीं हैं।

प्रश्न २१-यदि तुम्हारा यह मत है कि पुत्र के दिये बाह्न का फल पिता को नहीं पहुंच-धकतातो-मृतानामिहजन्तूनां, श्राहुचेन्तृ प्रिकारणम् । जीवतामिहजन्तूनां, वृथापाथेयकरुपनम् ॥

मरे हुए प्राणियों को यदि श्राद्ध का फल मिल सकता है तथ जीवित भनुष्य जब मुसाफिरीमें जावे तय घर के मनुष्य श्राद्ध द्वारा उसकी तृष्टित मार्गमें क्यों नहीं कर सकते। इस नास्तिक चार्याकके श्रीर तुम्हारे मत में क्या भेद हैं? यदि कुळ भेद नहीतो तुम भी नास्तिक सिद्ध क्यों नहीं हुए?

प्रम २२-तुम कहते हो कि मरे हुए पितादिको जन्मान्तर में ब्राह्स तर्पण का फल मिलने का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण वा छनके हाथको रचीद नही खाती तो फल पहुंचता है यह कैंग्रे मान लोंगें। तब तुमग्रे पूळा जाता है कि जपने किये शुभाऽशुभ कर्मों का फल जन्मान्तर में खपने को मिल जाता है इस में

क्या प्रमाण है! क्या इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण वा रसीद दिखा सकते हो? जब नहीं दिखा सकते तो यहां भी चार्वाक नास्तिक का मत (ऋणंकृत्वा चृतंपि-चेत्र) क्यों नहीं मान लेते हो?॥

प्रश्न २३ - तुम कहते हो कि मरजाने पर प्रन्य के किये कर्म का फूल प्रन्य को नहीं पहुंच मकता तो यदि कोई राजा रईम दशलाख कपयों का कि भी खाम के नाम या क्या के नाम मधीयत नामा कर जामें कि दस अब के प्रायाणका महानुक्त हा

कर जामें कि इस धन में अनायालय, मदावर्त्त वा पाठयाला आदि धर्म के अमुक २ काम किये जा-या करें, और वे काम ठीक २ केंमे ही हों तो क्या उन कामों में होने वाले उपकारों का पल उस धन

उन कामों थे होने वाले उपकारों का फल उस धन दाता की जन्मान्तर में नहीं मिलेगा? यदि कर्ता-श्रोंको मिलना कही तो उन का कमाया धन नहीं है शोर जिसने वसीयत नामा किया उसको फल न मिले तो क्या ऐसा पुष्य का काम निष्फल होगा? फल पहुंचना मानना पड़ा तो उसी कायदे से था-द्वादि धर्म करनेके लिये पिता, अपने पुनको धनादि सर्वस्व सी पता है तव पुत्र कृत याद्वादि का फल

प्रश्न २४ - जब कि (आत्मार्वे पुत्रनामािक)
(आत्मार्वे जायते पुत्रः) इत्यादि श्रुति स्रीर (गभौभृत्वे इजायते) (भार्यापुत्रः स्वकातन्ः) इत्यादि
स्मृतियों में पुत्र मे पिता का स्रभेद या एकता दिखाई है तब तुम पूट रूप भेद वा स्रन्य २ होने का
भगढा क्यों लगाते हो !

पिता को क्यों नहीं मिलेगा?॥

मञ्ज २०-(त्राह्धे शरदः । पा० । ३। १२ ॥ श-रदि भवं ग्रारदिकं ग्राह्मम्) पाणिनि स्नाचार्य के व्याकरण का यह सूत्र है। प्रार्थ यह है कि शरद् चतुनाम कार्तिक में होने वाले श्राद्ध धारिदक कहाते हैं। यहां अन्य स्तुओं के ब्राद्धों का विचार छोड़ के शरद्क्तु के खास ब्राह्में का प्रमाण होने से क्या इन कनागतों का प्रचार पाणिनि स्नाचार्यसे भी पहिले अति पाचीन कालमे चला सिद्ध महीं हैं?॥ प्रश्न २१-यदि तुम्हारा यह मत है कि पुत्र के दिये बाद्ध का फल पिता को नहीं पहुंच कतातो-मृतानामिहजन्तूनां, श्राद्वचेत्र प्रिकारणम् । जीवतामिहजन्तूनां, वृथापाथेयकल्पनम् ॥ मरे हुए पाणियों को यदि श्राद्ध का फल मिल मकता है तब जीवित मन्द्य जब मुसाफ़िरीमें जावे तब घर के मनुष्य श्राद्ध-द्वारा उसकी तृष्ति मार्गमें क्यों नहीं कर सकते । इस नास्तिक चार्याकके श्रीर तुम्हारे मत में क्या भेद है? यदि कुछ भेद नहीं तुम भी नास्तिक चिद्ध वयों नहीं हुए ? प्रश्न २२-तुमं कहते हो कि मरे हुए रि जन्मान्तर में श्राद्ध तर्पण का फील मिल मत्यस प्रमाण वा छनके हायकी रशी तो फल पहुंचता है यह कैंसे मान पूछा जाता है कि सपने किये फल जनमान्तर में अपने की 🖁

क्या प्रमाण है। क्या इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण वा रसीद दिखा सकते हो ? जब नहीं दिखा सकते तो यहां

भी चार्वाक नास्तिक का मत (चार्गकृत्वा घ्लंपि-बेतु) क्यों नहीं सान लेते ही ? ॥ प्रश्न २३-तुम कहते हो कि सरजाने पर प्रान्य

के किये कर्म का फल अन्य की नहीं पहुंच सकता तो यदि कोई राजा रईस दशलाख रुपयों का कि. भी खास के नाम वा सभा के नाम वसीयत नामा कर जावे कि इस धन से अनायालय, सदावर्त वा

पाठशाला आदि धर्म के अमुक २ काम किये जा-या करें, फ़ौर वे काम ठीक र जैसे ही हीं तो क्या उन कामीं मे हीने वाले उपकारों का फल उस धन

दाता को जन्मान्तर में नहीं मिलेगा? यदि कर्ता-्रोंको मिलना कहो तो उन का कमाया धन नहीं है और जिसने वसीयत नामा किया उसको फल न मिले तो क्या ऐसा पुरव का काम निष्फल होगा?

फल पहुंचना मानना पड़ा तो उसी कायदे से ग्रा-द्वादि धर्म करनेके लिये पिता, अपने पुत्रको धनादि मर्वस्य सी पता है तव पुत्र कृत म्राह्मोदि का फल पिता की क्यों नहीं मिलेगा? ॥ प्रश्नु २४-जव कि (आत्मार्वे पुत्रनामासि)

(स्नात्मावैजायते पुत्रः) इत्यादि श्रुति स्नीर (ग-भौभत्त्रेहजायते) (भार्यापुत्र:स्वकातनूः) इत्यादि स्मृतियों में पुत्र से पिता का अभेद या एकता दि-खाई है तब तुम फूट रूप भेद वा अन्य २ होने का भगड़ा क्यों लगाते हो !

मण्ण २५-क्या तुम पिता का खंश पुत्र को नहीं मानते हो। जब अवयवरूप है तो हाथ मिहनत के रके रोटी बनाता, मुख चवाने महीन करने में अम करता है पर हाथ कुछ भी नहीं खाता मुखको स्वाद खाता ख़ीर पेट कुछ भी मिहनत नहीं करता परन्तु भूंख निवृत्तिरूप मुख्य फल पेटको ही होता है तब अन्य हाथके किये कर्मका फन पेटको क्यों पहुंचता है। क्या इन हाथ मुख पेटमें भी लड़ाई करा छोगे वा क्या यहां भी खर्डन करोगे?॥

प्रश्न २६-सामवेद भाष्यकार स्वा० तुलसीरामजी ने अपने भास्करप्रकाशके इसी ब्राद्धप्रकरणमें बहुतेरे मन्त्रोंके अर्थमें यह लिखा है कि यह हवन हमारे मृत प्वंजींके लिये फलदायक हो, अब आप ही बतला-इये कि स्नापके मृत पूर्वज क्या इस स्नापके हवनकी गन्ध लेनेको जीते बैठे हैं ? और यदि नहीं बैठे हैं स्रीर उनका उनके कर्मानुसार किसी योनिमें जन्म हो चुका है तो फिर यह हवन आपका उनके वास्ते कैंगे फल दायक हो सकता है ? और यदि आप का हवन उन को फलदायक हो मकता है तो फिर बतलाइये कि हमारा पिगडदान बगैरह क्यों हमारे मृत पूर्वजो को फलदायक न होगा । अब यदि फिर आप कहें कि हमारे स्वा० तुल गीरामजीका ऐगा गिद्धान्त नही है तो फिर विशेष बतलाने व दिखलाने की क्या ज्ञावपयकता है ? केंयल भार पर पृर १३८ में अयर १८। २। ४८ का ही उसका किया हुन्ना अर्थ देख-कर यदि ययार्थ है तो कुछ लिजत हो जाइयेगा ॥ मझ २०-यदि फिर आप कहें कि हवन की सु-ध वायुद्धारा उनको पहुंच मकती हैं-तो मैं फिर ताहूं कि क्या हमारे विगडदानकी और उम भो-की सुगन्धि (जो ब्राह्मणों के लिये बनाया गया उसी वायुद्धारा हमारे वितरींको न पहुंचेगी?

प० २८-यदि तुम नास्तिकोंके सामने प्रत्यक्षादि शद्धादिको सिद्ध न कर सकने के कारण वेदोक्त इादिके खएडनका पाप अपने धिर लादते हो तो । उसी कायदेसे तुम्हारे अन्य मन्ताअ वेदादि का डन नहीं हो सकता ?॥

मश्न २६ं यदि तुम्हारा दावा हो तो श्रम्युपग-वेद्धान्त को लेकर हम मनातनी तुम्हारे वेदादि तब्यका खराडन करनेका नोटिम तुमको देते हैं। वया तुम श्रपने मन्तब्यका मएडन करनेकी शक्ति। ति हो॥

मम् ३०-जब स्वामी शंकराचार्यजी तथा कुमात भद्दादि बड़े २ नामी विद्वानों ने नास्तिकों के
य बड़े २ प्रवन शास्त्रार्थ करते हुए भी ब्राद्धादि
कर्मीका त्याग वा खरडन न किया तो नास्तिकों
भयसे प्रपने वेदोक्त धर्मका त्याग करना क्या यह
स्हारी निर्वलता नहीं है ? ॥ इत्यनम् ॥
इति श्रीश्राद्विपतृमीमांसायां प्रिय समाजो
सहाद्ययेभ्यः श्राद्विपयक ३० त्रिंग-

्रत्रज्ञानामुत्तरप्राप्त्यर्थं समा-प्रापं सप्तमोऽध्यायः॥

नवीन पुस्तकों की सूचना।

. १-श्राद्धपितृमीमांसा-पद पुस्तक देवनागरी अक्षर श्रीर हिन्दीभाषामें अपा है। इसमें वर्त्तमान श्रीयं समाजियों के जितने (श्राहु व पितृपत्त) कर्म में सन्देह श्राप्या श्राहिप होते हैं उन सर्वोक्ता प्रश्नीतरहृपमें श्रत्यन्त प्रवत्त प्रमाख तथा सद्दुप्तियों से ऐसं निवारण किया गर्मा है कि जिन्हों एक-

वार भी आहिसे अन्ततक पढ़नेसे थोडी बुद्धि वाला भी आर रितक जन ठीक समफ सकता है कि (श्रोट्स व पित्रयज्ञ किर्स कर्मका नाम है, इसका रहस्य क्या-है और वेदादि सच्छास्त्रों में यह कर्म किनका अर्थात जीबितोका वा मृतपितरोका द-शिंत है ?। पुस्तकको साईज १८-१-२२ है॥

[वेदर्स चाविचार]— इंग पुस्तक में वेदादि प्रन्य और निक्कादिने ब्राह्मणपुन्थों का वेदत्व सिद्ध किया है। तथा आर्मेशमाजियोके इसके विषयों दिये प्रमाणों का सरहन है मूंर्र)॥ पुस्तक नागरी भाषामें है॥

(३)-[आर्युनिक संहर्षिकी पोल)-यह दैवट श्री १००८ परमपूर्व कमतुम्क बोह्नारकाशस्त्राचीठाचीश स्वा-भी शङ्कराचार्यजीके सम्मति पत्र भमेत देवनागरी आक्रर हि-

न्दीभाषामें खपाया गया है। इन में स्वार द्यानन्दसरस्रती (वर्तमान आर्यम्मन्योके ऋषि गुरुजीका मंस्कृत व्याकरण में गरववम्रहातामें (अर्थात उनके सत्यवादी होनेंमें) तथा उनके स्वराधित प्रन्थोके पूर्वोपर बिरोध होनेंमें खूब ही पील खोली व दिलायी गई है कि वह सामीजी व्याकरणों कैंसे बिद्धान् ये ?। मुख्य ॥ शास्त्रक अलग ॥

गिलनेका पता-सेक्षेटरी सनातनपर्म भरहलान्तर्गत गीता-पाठशाला सुम्बद्दे बाजार कराची सिन्ध सवा

वैद्यरात्र सेट मृतवन्द्र (साध) श्रीगिरिधारीजीक्रे मन्दिरके पास टट्टा—सिन्ध श्रीहरिः॥

श्राद्धपितृमीमांसा

जिसको

"वेदसंज्ञाविचार" और "आधु-निक महर्षि की पील" नामक पुस्तकों के रचियता

(सिन्ध) क्रांची सनातनधर्म मगडलेके संरक्षक पण्डित गीकुल चन्द्र शम्मा ने निर्माण किया

Printed by B D.S. at the Brahm

Press Ttawahs enty वि० संवत् १९६९ हें सन् १९१२

शहिपतृमीयांसा

_{थिमको} अस्थि। अस्थि

(चिंघु) उद्घा देशीय विद्वद्वर पण्डिन त श्रीवीरभानु शम्मात्मन, करांची "ग-नातन धर्म मण्डलके,, परसक

पं गोकुल चन्द्र शम्मां ने

श्रुति (चेद), स्मृति-घौतमूत्र-पुरास आदि

पर्म याख एवं श्रीरामायस-महाभारतादि धर्म
इतिहासों के महल ममास श्रीर सद्वयुक्तियोंसे

अलंकत करके सर्व आस्तिकजनों के विविधनं-देह निवारकार्थ रचा॥

ं भीर श्रीमान् क्षत्रिय जुलदिवाकर सनातन धर्म

प्रचारोत्साही (सुहासां वंश तिसका) द्वारेशी-य एक उदारचित्त व्यक्ति ने सर्व वेदमता सुया-इयों के उपकारार्थ खपाकर प्रसिद्ध किया ॥ प्रथमकार वे विक्रम संश्रीहरू दियास स्वरं

ई० सन् १९१२

॥ विषयसूची ॥

विःसं	० विषय	चचसे	पृष्ठत ः
8	भूमिका।		₹.
۱ ۶	•	3	₹ ₹
•	सन्मानपत्रम् । प्रार्थेना	ą	
₹		9	5
	॥ प्रथम अध्याय में ॥	•	
8	<i>"</i> श्रादु"क्याहै?श्रर्थात्किसकर्मकानामहै	4	११
¥	श्राहु ग्रब्द का ग्रास्त्रोक्त श्रर्थ।	१२	१५
Ę	श्राहुकर्मका रहस्य (फल) ।	१६	१=
	॥ द्वितीय अध्याय में ॥	•	
9	'श्राहु, मृतपितरोंका ही होता है कि		ź.
	जीवित माता पितादि का ?।	१९	₹8
	॥ तूतीय अध्योय में ॥		,
ū	मरणानन्तर पितादिकों के साय उन		
i	के पुत्रादिकों का विशेष संबंध।	इप्र	४२
	॥ चतुर्थ अध्याय में ॥		
4	कर्मानुसार उच्च नीच योनि में प्राप्त		
١	चन हमारे मृत पितादिको श्राहु कर्मेमें		
1	दिया हुवा पिएड भोजनादि कैसे पहुंच		
١	जाते हैं? श्रयवा उन को श्रांद्ध भोजन		
l	पहुंचाने वाले वे कौन हैं ? कि जिन्हों		
1	में इतनी अलौकिक सामर्थ्य है।	४३	89
१०	श्रीर तक्या, वे इमारे मृत पितर हमारे		
1	किये हुए आहु (वितृपद्य) में भी कभी		
1	आते हैं कि नहीं,, ? इस भाव वा संदेह		
1	चे घटने बाले प्रश्न का भी छत्युत्तम स- माधान		
1	11111	89	84

() S N १ हमारे वितरों के प्रति विषष्ठ भोजनादि 👯 पहुंचजाने की विश्वासदायक वेदोक, रसीदें) र मृत माशी श्रपने किये पाप पुरायकर्नोंकी अनुसार यदि वह पशु, पत्ती, यत्त, रा-घस श्रथवा गंधवं देवता होजाय तो फिर श्राहु कर्म में हमारा दिया हुआ चीर-घी-हलुम्रा-लड्डु-पकवान कचौरी वगैरः पदार्थ उनको कैसे देहानुकूल रुचिकर(विय) होंगे ? प्९ ६२ ॥ पंचम अध्याय में ॥ ş वितृ लोक इस मनुष्य लोक से भिन्न कोई अन्य लॉक हैक्या? और वह कहां है? ६३ वित्रलोक निवासी वितरों का गरीर कैसा होता है ? और वे हमारे देखने में कभी आते हैं कि नहीं ? £Ψ É चन विवृद्धोंका राजा (स्वामी प्रधि-धाता) कीन है? Éc 97 ŝ विवलोक निवासी विवरोंके पूजन सत्का-र (त्राहुतर्पेषा) करने की क्या आध-श्यकता है ? और न करने से क्या हाति वा दोप है ?। 93 ॥ पष्ठ अध्याय में॥ न्नाहुकर्ममें (भूदेव) ब्रान्सणों की क्पा श्रावश्यकता है ? श्रीर क्या ब्राह्मणों को इसके लिये किसी राजा से कोई साटीं फि-केट रूप इकरार नामा भी लिखा हुआ मिला है ? । e.é ۲ų

श्राह कर्म में योग्य (श्रधिकारी) श्रीर

१८

श्रायोग्य (ध्रनधिकारी) ब्राह्मकों का निराय और श्राह भोक्ता तथा कर्ता की

श्राद्व दिन मे शवदय शास्त्रीक्त नियम से रहने की विधि॥ कलियुगमें समयानुदूल शाहुदि कर्मकैयोग्य

सुपात्र ब्राह्मणों का श्रत्युत्तम निर्णय । समयानुकूल सुपान ब्राह्मण के न निः ঽ৽ शने मे, आपत्ति कारा में तथा तमाम द्रिद्रता यानी कगालपने की हालत मे भी गौरा श्राहु करने की अत्यन्त श्रा-

वश्यकता श्रीर श्रीर सुगम विधि। ॥ सप्तम अध्याय में ॥ विय आर्यं समाजी महाश्यो से श्राह

विषयक ३० तीस प्रश्नो का सभ्यता पूर्वे म सप्रमास युक्तियुक्त शीध २ उत्तर मिलने के लिये प्रार्थना।

नम्त्रतया सचना !!

१८२

११७

भेरे प्रिय सभ्यगको को नम्रता से सूचित किया जाता है कि नेरी नन्म भूमि सिन्धु देश होने के कारण मेरा दिदी भाषा लिखने का ऐसा सरल अभ्यास नहीं है इस लिये क-दाचित् कहीं हिन्दी लिखने में अत्तर-गञ्द-वा भाषा शैली

की गलती मालूम हो जाय तो रूपा करके समा करें और हस दत्ति से इस पुस्तक में सेतन्त रूप दूध का ही ग्रहण करें भवदीय कपाभिलापी--गोकुलचन्द्र ॥

·यह पुस्तक सनात्निधर्ममग्डल करांची की सहायतार्थ -)। पांच पैसा धर्मार्थ लेकर विना मूल्य दिया जाता है॥

ZIBRARY.

AV ALLES

तत्पुर्धपायं विद्महे 'धक्षतुग्रहाय धीमहि, तसी दन्तिः प्रचीद्यात् ॥ कृठ यसुठ छारश्यक प्रठ १० अनुठ ५ ॥ श्रीगर्योगायनमः ! श्रीविद्मेष्टरायनमः !! श्रीविद्मनाशायनमः !!

॥ भूमिका ॥

मिय पाठक वृन्द ! ध्यान में रहे कि इस ह-

मारे यनातनधर्म के विरोधी वितरखावादी दुराग्रही अग्रास्त्रीय सम्प्रदाय के जन पूर्वकाल से चले
आते हैं और अपनी माया रूपी बंचना शक्ति से
उक्त धर्म के प्रवंधों को अग्रत्य मानकर अनेक प्रकार के उपद्रवों से आक्रान्त [पीड़ित] करते रहते हैं परन्तु उन पश्चपातियों के विचातों से यह
सनातन धर्म अद्यावधि अनविकेद्म अग्निदम्ध सुवर्ण की न्यांई अपनी कीर्ति रूप निर्मल कान्ति
से प्रकाशवान् ही रहा, प्रत्युत वेही द्वे पी निर्मूल सुर।
और समय २ के अनुसार अनेक मत तथा पंच जो
श्रुति स्मृति विकद्ध मगरित हुये वे भी घोर रजनी
ने खद्योत (सुय् खुवीरे) के तुल्य अपना चमकार चमकाय स्थिक अधिक संधकारके साथ ही लय हो

गये। अब इस वर्तमान काल में आधुनिक नवणि-क्षित युवक जन समाजी भाई जिन्हों की बुद्धि में विपरीत भाषका आवेश हो रहा है वे सनातनधर्म नियंध ग्रंच फूत्य रीतियों को केवल कल्पित मान-कर रापनी प्रमत्त उक्ति युक्ति कपोल करपना की सत्य मान रहे हैं, सीर शास्त्र विरोधी जनों के मि-च्या प्रलाप कूट निर्वधों की नार्वक मानकर प्रत्यय कर वेठे हैं, मत्युत उन्हीं ख़चटित घटना मपञ्च निवन्धों की वार २ मुद्रायन्त्रों हारा प्रवर्तन कर रहे हैं तथा यत्र रिवहंद्वरिष्ठों ने दंश दिया वा नि-इत्तर किया उन पंक्तियों को छोड़ कर स्वकल्पित उक्ति युक्ति स्थापित कर रहे हैं। महा ग्रोक है ? कि इसी सनातन धर्मावलस्वियों के वंश में उत्पन्न होकर प्रयम अपने ही चनातन धर्म रूपी वन को हैयर्थ वितंडा वाम्जाल जुठार से छेदन कर रहे हैं? स्तीर पूर्व ग्रंथ कर्ता ऋषिगण तथा निज पूर्वज सा-चार्यों को अल्पन्न मानकर अपने ही विशिष्ट वृद्धों का उपहान कर रहे हैं। यदापि अनेक बार मत्येक यनातनधर्म प्रभाओं से ये नितंडाबादी निरुत्तर हो चुके हैं तथापि-"जानत हैं बूकत नहीं लानत ऐसी जिन्द। तुलसी इसर्चसारको हुआ मोतिया विंद" इत्यादि केवल हठ मात्र स्थित होकर सनभिन्न सा-्धारता जन समूह की उन्मार्ग से च्युत करने की क्रोचिय कर रहे हैं थी ख़ब इन्होंके स्नन्थिर कुतर्ल

रूप वाग्जाल को श्रुति स्मृति स्नादि धर्म शास्त्रोंके प्रवल प्रमाण और स्नर्काट्य युक्ति युक्त इस "श्राद्ध पितृमोमांचा" नाम पुस्तक रूप पज् से निर्मूल छेदन करने के लिये श्रीमान् सचिय कुल भूषण स- स्म प्रचारोत्माही उदार चित्त मेठ जी प्रते निज भेम पूरित प्रवंध करने में कोटिशः धन्यवाद देकर १ * गुप्त नाम में सन्मान प्रवस्तर्ण किया जाताहै॥

सन्मानपत्रम् ॥

सहर्ममार्ग परिपोपित्रधावतन्द्रः । रुद्धा व्रजाऽधिपति कश्चित् क्षत्रिवोरः ॥ सत् श्राहुं मण्डनं मकार् यदाज्ञ्यादः ।

सच्छास्त्रसिद्धनयसंहतसर्ववादः ॥१॥

श्रवित्-श्रेष्ठ धर्म मार्ग के पालन विधिन्नें आ-लस्य रिहत "ठट्टा" नाम प्रजाने शिधिपति सिचिकुल में बीर किसी एक पुरुष ने पूर्व श्रेम से, सम्पूर्व कु-तकों के निवारण करने वाले श्रेष्ठ शास्त्रों से सिद्ध किये गये पुक्तियुक्त इस "श्राद्ध-पितृ-मीमांसा" नाम पुस्तक के रचनार्थ (स्वोपिकार होने में) शा-चा की ॥१॥ सो-

१ के जिस सित्रिय बीर बैठ जी ने ऐमे परमार्थ क्रय उ सम दान में अवना मास प्रसिद्ध (प्रगट) न कराने में पूर्व उदारता दिवलाई है अर्घात "मुप्तदाग महापुरुष" का ही अनुषरत्व किया है। इम लिये बैठ जी के कहें अनुषार नाम प्रगट नहीं किया गर्था है। दुस्तर्कमानव पराष्ट्रतशास्त्रचिद्धश्राद्वप्रयोग सम नुष्टितसिद्धिसाधुम्। संदर्भमेतदिखलंख्यामिनूनं ठठ्ठाव्रजाधिपतिक्षत्रिवरेणयुक्तः ॥२॥

शास्त्र विषद्ध खोठे तर्क करने वाले मनुष्यों से दूर किये गये जो वेदादि श्रेष्ठ शास्त्र सिद्ध "श्राद्ध कर्म प्रयोग" उन के अनुष्ठान को पुनः सिद्ध करने वाले इस संदर्भ अर्थात् व्याख्यान रूप लघु अन्य को ठठ्ठा नाम अजके अधिपति श्रेष्ठ सिन्न की जाचा ने निश्चय पूर्वक रचता हूं * ॥२॥ सो वह——
"ठठ्ठात्रजस्थितसुधर्म सभास्थ्रसभ्य-

विद्रोणवीरभानवात्मज तद्विलेखि ॥ श्राद्वीयकर्मणि कुतर्किकृतानुयोग-स्तस्योत्तरंभवतु आस्तिकवर्यतुष्टवैण ॥३॥ ठठ्ठा नाम व्रजमें स्थित सनातन धर्म सभाके संरक्षक सभ्य श्रीवर पंo बीरभानु गर्मात्मज व्रा-

स्ति से चिया व्यावर पे वीरभानु ग्रामित्मल ब्रा-ह्मण करके लिखा गया (ब्राह्म कर्ममें कुतर्कि लोगों * यद्यपि नेरे प्रिष सिंधी भाताओं को ग्रुगाता से स-मक्ती के कारण यह पुस्तक मैंने सिंधी भाषा में ही रचा ब्रा

जिसकी सूचना मेरे बनाये "आधुनिक महियकी पोल" और
"वैद संचा विचार" इन दोनों ट्रेक्टों के पिछारी में छपाई
गई यी परन्तु यन्त्रालय वालों से सिंधी भाषा की भाषा गै-शी ठीक गुढ़ न छाप सकने के कारण पुनः यह हिन्दों में ही
योना ठीक समक्ष कर दिन्दी में छपाया गया है इस लिये
मेरे सिंधी भाई सक्षे चना करें॥ में किये गये मिट्या कुतकों का) मत्य समाधान रूप उत्तर आंस्तिक जनों के प्रमन्नतार्थ होत्र ॥ ३ ॥ हे श्रीमान् ! आप सनातनधर्म रक्षक के कर कमलों में श्रीनंदनन्दन के प्रसाद रूप, तथा आशी-

क्षमलों में श्रीनंदनन्दन के प्रशाद रूप, तथा आशी-वाद की कुनुमाञ्जलो रूप यह ''श्राद्ध पितृ मीमांश' नामक ग्रन्थ अर्पित है। जैंगा है आप का हे लीजिये ॥ शान्तिरस्तु! आरोग्यमस्तु ॥ आयुव्यमस्त ॥

तदीय सार्वदिक शुभचिन्तक गोकुलचन्द्र।



11 🕸 11 सत्यमेव जयतिनाऽनृतम् ॥

उत्तिष्ठतजाग्रत प्राप्यवरान्निवोधत ॥

नहिसत्यात्परोधर्मी नाऽनृतात्पातकंपरम्॥



"एकं विवेकं नुमः"

॥ प्रार्थना ॥

ओइम् नमः श्रीसाम्बसदा शिवाय ॥ ओइम्-सहनाववतुसहनी सुनक्तुसहवीर्यंकरवावहै। तेजिस्त्रनावघीतमस्तु माविद्विपावहै ॥ ९ ॥ ॐ-श्रुतिनिगदितधर्मार्कः स्मृतिगतधर्मारु णोदयःशश्वत् । पौराणिकधर्मोढः पाखण्डश्वा

न्तनाशनोजयतु ॥२॥ युक्नांत्रहाविचारसारपरमामाद्यांजगदुव्याः

पुनीम् । वीणापुस्तकधारिणीमभयदांजाङ्याः ऽन्धकोरापहास् ॥ हस्तेस्फाटिकमालिकां विद्-धतींपद्मासने संस्थिताम् । वन्देतांपरमेशवरी-म्भगवतीं वृद्धिपदांशास्त्राम् ॥ ३॥

दोहा धन यीवन उठ जांयने, जैसे उड़त कपूर। भन मृत्यु गोबिन्द भज क्यों चाटे जगधर॥ सभ्यो ! ज्ञाज में ज्ञाप महोदमों के सम्मुख णास्त्रोक्त ब्राद्ध कर्म पर विचार करने के निमित्त्

जमस्यत हुआ हूं। आप इस वातको उत्तमता सें जानते हो कि मैंन कोई ऐसा व्याख्यान दाता हूं फ्रोर न महामहोपाध्याय हूं तथान कदापि इस कार्य को पूर्णतया करने में समर्थ हूं, परन्तु आप धर्म

को पूर्णतया करने में समर्थ हूं, परन्तु आप धर्म वीरों के उत्साह और [परब्रह्म मञ्जदानन्द कंद श्रीकृष्णचन्द्र जी] की सहायतासे साधारण आस्तिकं जनों के सदेह निवृत्त्वर्थ धर्मरक्षक कतिषय क्षत्रिय-वरों की आञ्चाको शिरोधार्य करके, अपना ही क-

वरों की आज्ञाको शिरोधार्य करके, अपना ही क-र्तव्य समभ कर प्रश्न-उत्तर रूप में विविध गहन सं-देहों के निर्मूल करने वाले इस "श्राद्ध पितृ मीमांसा" नाम ग्रंथ को श्रीसद्गुर निखिल श्रास्त्र निष्णात [श्रीवालराम जी] (उदासीन) एवं विद्यावाय-

स्पित विद्वद्वर पं० [त्री भीमसेन शर्मा जी] शास्त्री विद्यावारिधि विद्वद्वर परिडत [श्री ज्वालाप्रसा-द जी] मिश्र तथा सूर्माचल भूपण जयिकुल सं-स्थापक वाग्मियर पंडित [श्री दुर्मादत्त पन्त जी]

न्यादि महामहोपदेशकों की पूर्ण कृषासे एवं उन्हों के युक्ति युक्त चिद्धान्तानुसार अलंकृत करके आप धर्म रक्षकों के कर कमलों मे प्रेम से अर्पण किया जाता है आशा है कि हर्प पूर्वक इस रक्षको आदि से जन्त तक अवश्य देखकर (पढ़कर) सदुर्भ का

पूर्ण लाभ लेकर दीन को कृत कृत्य करेंगे। प्रार्थी—गोकुलचन्द्र शर्मा।

ા જંગ नमोऽन्तर्यानिणे

अथ स्नाद्विपतृमीमांसा ।

S. N.....

प्रथमोऽध्यायः ।

"धर्मे जिञ्चासमानामां प्रमाखं परमं श्रुतिः" मनु०॥ प्रश्नकर्ता समाजी महाशय

और उत्तरदाता सनातनी पण्डित

समाजी-श्री पिडत जी महाराज ! द्यापाले मेरे इस संदेह का निवारण करो कि "ब्राह्म" क्या

है ? प्रयात् बाह्य किस कर्म का नाम है और इस

का रहस्य स्या है ? चनातनी-महाश्य जी ! आप यदि चनातन

एवं वेदोक्त ब्राद्ध समफने की सञ्ची अभिलापा क-रते हो तो मैं आप को मवल मनाख एवं स्रकाटच मुक्तियों ने श्रेष्ठ शास्त्रीक्त श्राद्ध वा भावार्थ और

उसका रहस्य भी शुनाना चाहता हूं। जिसकी शु-नकर ख़ीर पूर्णतया समभकर तथा खपने खन्य मित्र समाजी भाइयों को भी समफाकर इस ग्राह्म

कर्म [पितृयद्य] का शास्त्रानुक्ल श्रद्धा से अनु-ष्ठान करके मद्धर्म एवं मीस का पूर्ण २ लाभ लेकर दुर्लभ इस मनुष्य देह को साफल्य करें, यही मेरी

द्रह सामा है। . अधैतन्मनु:--(श्राह्मिति शब्दो वाच-को यस्य तत्कर्म श्राह्मशब्दम् इति-मदनपारि जातः) श्राह्म शब्दं कर्म प्रोवाच प्रजानिः श्रे यसार्थं तत्र वितरो देवता ब्राह्मणस्त्वाहयनीया-र्थे मासि मासि कार्यमपरपक्षस्याऽपरोह्न्यः श्रेयान्॥ इत्यादि ज्ञापस्तम्बीय मनु सम्मत वचनों से मृत पितरों के निमित्त पितृ देवों के पूजनार्थ होम, पिण्डदान आदि ब्राह्मण भोजन रूप जो सत्कर्म, यही शास्त्रोक्तं श्राद्ध शब्दका मुख्य भावार्य है। तात्पर्यं यह कि प्रजाके कल्याणार्थ वेदार्थ जाता भी महर्षि मनु महाराजने एक ऐसे गुभ कर्मका उ-पदेश किया है कि जिसका नाम "श्राद्ध" वा "पि-तृयज्ञ" है। सो जैसे देवयज्ञ में इन्द्रादि देवताओं का पंजन सत्कार होता है और आहवनीय अग्नि उन के तृष्त्यर्थ होम का आधार है-तेसे इस पितृ यज्ञ में पितर देंगें का पूजन सत्कार और इन्होंके तुष्त्वर्य होम का आधार अग्नि के जगह ब्राह्मणी का मुख है। यह कर्म महीने २ करना चाहिये और इस कर्म के अनुष्ठान में कृष्णपक्ष का अपराह (म-भ्वान्ह) काल ग्रत्यन्त ग्रेष्ठ है। तथा-"ग्रपर पक्षे भाद्धं कुर्वीत" इति कातीयब्राद्धसूत्रे । कातीय श्राद्ध सूचमें कहा है कि कृष्णपत्त में श्राद्ध करे। तथा यतपय ब्राह्मण में लिखा है कि जिस दिन न पर्व में फ़ौर न पश्चिम में चन्द्रमा दीखे उसी दिन पि. तरीं के निमित्त पिएडदान करे। एवं

"अमावास्यायां यद्हश्चन्द्रमसं न पश्यन्ति तद्दः पिण्डपित्रपज्ञं कुरुते"॥ आपस्तम्बीय श्रीत सूत्र

तथा कात्यायन श्रीत सूत्र १।१।१---

प्रथम प्रश्न, उ॰ पटल ॰ कं॰॥ "अपराह्में विगडपित्रयज्ञश्चन्द्राऽदर्शनेऽमा-बास्याम्"।

श्राचीत्र-दो प्रहरों के वाद जिस दिन चन्द्रमा देखने में न श्रावे, उस श्रमावास्ता में पिरड पितृ

देखने में न आवे, उस अमावास्या में पिएड पितृ यज्ञ करे। प्रयोजन यह कि विवाह और यज्ञोप-बोतादि के तुल्य एक खास कर्म का नाम "श्राह्म"

वा पितृयच है। इसी श्राद्ध में जो जो कृत्य जिस २ प्रकार करना चाहिये और इस श्राद्ध के जितने श्रवान्तर भेद हैं वे चव श्रुति स्मृति श्रीत गृह्यसूव श्रीर इतिहास पुराणादि में श्रति प्राचीन समय से

खार द्वातहाय पुराणाद य आत प्राचान समय स विस्तार पूर्वक लिखे हुए हैं जिन्हों के अनुसार अ-नादि काल से पद्धतियां भी चली आती हैं। जिस कृत्य में अद्यपर्यन्त किसी भी आस्तिक को कदापि संदेह नहीं होता कि आद्ध किसकी कहते हैं। परन्तु

प्रव प्रनुसान ३० वर्षों से किन्हीं आसुरी सम्प्रदायों के मनुष्यों ने स्वधर्म मर्गाउनिमन्न स्ववं भी धर्म से च्युत ग्लीर श्रन्य आस्तिक साधारण जन समूह को भी कलिकालके प्रभाव से श्रधोगित में पहुंचाने के लिये प्रत्यक्ष नेत्रोंमें धूलफोंकते हुए केवल धींगा धींगी मे यह प्रकट किया है कि जीवित माता पिता की सेवा करने का नाम ब्राद्ध है। परन्तु इसके लिये लेख प्रमाण वा प्रवल युक्ति इन्हों के पास कोई नहीं। मी अब यह कटता भी जाता है। मारांश यह है कि जैसे विवाह यद्योपवीतादि एक २ विशेष विधिसहि-त कर्म के नाम हैं वैसे ही माद्ध-भी एक कर्म का नाम है-स्रोर जो (ब्रद्धया क्रियते तच्छाहुम्), ब्रद्धांचे किया जाय यह ब्राद्ध है" ऐसा अर्थ करके समाजी लोग त्राद्ध को यीगिक मानते हैं वे लोग यह तो बतावें कि वे अग्रद्धारे अपने कीन २ काम करते हैं? यदि समाजोत्सव व्याख्यानादि सभी काम श्रद्धा से करते हैं तो तुम्हारे सभी कामों का नाम श्राद्ध हो गया फिर यह क्यों कहते ही कि, जीवित माता पिता की सेवा का नाम श्राद्ध है"। क्या मद्मभांस खाने पीने वाले खार्य समाजियों का मांस मदा खाना पीना सादि काम तुम्हारे मत में ब्राद्ध नहीं है ? क्या उन कामों को वे प्रयद्धा से करते हैं ? तथा यदि कोई आ। समाजी महाशय किसी समय प्रारब्ध कर्मानुसार रोग ग्रसित हो जाय तो फिर जब वह महाश्य अपने रोग के शान्त्यर्थ दवा औ-पध) वा अन्य कोई उपाय करे तो क्या वो अग्र-द्धा में करेगा ? क्या अपने शरीर के आरीग्यतार्थ उपाय करने में उसको श्रद्धा प्रेम न होगा ? श्रर्थात वह रोगी समाजी अवश्य ही ब्रद्धा से अपने शरीर

रक्षा के लिये उपाय करेगा-तब तो उस महाशय के मद्धा प्रेम से किये हुये उस उपाय को भी "मद्ध" फहना पड़ेगा । क्योंकि उसने ग्रद्धा में उपाय किया एवं ग्रा० समाजी ग्रपने शरीर पोषणार्थ जो भोज-न करते हैं-सो वह क्या अग्रद्धा से करते हैं ? तथा निद्रा (नींद) करना पायखाने में जाना स्त्रीर गास्त्र नियमानुसार सन्तान उत्पत्ति के लिये स्व-स्त्रीमे संभोग करना इत्यादि मव कुछ वे ग्रद्धा फ़ीर पूर्ण चाहना से करते हैं-तो फिर इन उपरोक्त मब कर्मी का नाम ग्राह्म हुन्ना! फिर "ग्रह्मया क्रियते तच्छाहुम्" इम पंक्तिका अक्षरार्थ करके सरल स-

नातनी मनुष्यों को क्यों नाहक भ्रमाते हो श्री। "जीवित माता पिता की सेवा" यह अर्थ उपरोक्त संस्कृत वाक्य में से किन अक्षरों का है और कहां से निकालते हो ? यदि कही कि हम अनुमान से यह अर्थ निकालते हैं तो अन्य कर्म जो जपर दि-खलाये गये, (उन्हों को भी श्रद्धा से होने के का-रण श्राद्ध कहना) ऐसा अर्थ आप लोगों के वि-शाल बुद्धि में नहीं समा सक्ता ? अर्थात् अनुमानसे जैसा यह अर्थ कि श्रद्धा से जीवित माता पिताकी चेवा का नाम श्राह्म वैशा श्रुद्धा से उपरोक्त श्रन्य कर्मीं को करने का भी नाम गृाद्ध हो सकता है। फिर यह क्यों वेद शास्त्र विरुद्ध सर्थ करके ठगीसे

चरल ग्रास्तिकों की चन्मार्ग से गिराने के लिये

मिथ्या मनगढत संर्घ करते हो ! कि जीवित माता पितादि की चेवा का ही नाम गुद्ध है । इसके लिये आपके पाच कोई वेदादि शास्त्रों का प्रमाण है कि जिनमे यह स्पष्ट मिद्ध हो जाय कि जीवित माता पितादि की सेवा को ही शुद्ध कहना और न कदापि मृतकों के निमित्त दिया जाय उपको । यदि कोई ऐशा (मृतकों के निमित्त पिएडदान के निषेध रूप) वेदशास्त्रों में से प्रमाण खाप जिद्वि-यों के पास हो तो कृपा करके शीच्र स्पष्ट (जाहिर) करके अपना मुख उज्वल करो, अथवा रेसा सावि-त करदेने के लिये यदि कठिबद्ध न होगे तो क्या चनातनी धर्मात्मा जन यह नहीं चमर्भेगे कि-इन मा प्रमाजियों का वेदोक्त धर्म स्रीर जीवितों का गुद्ध भक्तना मिथ्या हल्ला और खास्तिक संप्रदाय को धोखा देना मात्र ही है! परन्तु शास्त्रोक्त शुद्ध क्रम जिन किनी को भी देखना हो तो वह पार-स्कर गृह्यस्य आध्वलायन श्रीत स्य, तथा परिशि-ष्ट कातीय भाद्ध सूत्र आञ्चलायन गृह्मसूत्र में एवं र्याखायन श्रीत, आपस्तम्ब श्रीत इत्यादि अन्योंमें दे-खे तो स्पष्ट चात हो जायगा कि "त्राद्ध" किसकी करते हैं और उनका रहस्य क्या है "त्राद्ध" कोई अमिसद्ध (दिया हुआ) कर्म नहीं है जिसके लिये ममाण देने की आवश्यकता पड़े, तथापि वेद विक द्ध मतावलम्बी जिद्दी मनुष्यों के मद अहंकार रूप

फ्रांधकार को सत्शास्त्र रूपी अखएड मूर्य्य के प्रखर तेज से निवारण करने के लिये दिग्दर्भन माच इस प्रथम अध्याय में और विस्तार पूर्वक द्वितीय छ-ध्याय में यथायोग्य समाधान किया जायगा कि माद्ध शब्द का शास्त्रों में कैसा अर्थ दिखाया गया है स्त्रीर उस का रहस्य क्या है ॥ यया महर्षि मरीचि मुनिजन स्पष्ट करते हैं कि प्रेतं पितृंश्च निर्दिश्य भीज्यं यत् प्रियमातमनः। श्रद्धया दीयते यत्र तच्छाद्वं परिकीर्तितम् ॥ श्रर्थ-सात्विक भोजन जो अपने को प्रियहोय वह मेतयोनि में गये उस मृतक के निमित्त यथा नाम उच्चारण करके श्रद्धाचे जो कुछ दिया जाय उसको ही श्राद्ध कहते हैं या उसी कृत्य का ही नाम श्राद्ध है। तथा महर्षि पुलस्त्य मुनिजनभी स्पष्टकहतेहैं कि संस्कृतंदयंजन।दांच पयोद्धिचृतान्वितम्। श्रद्धयादीयतैयस्मात्तेन श्राद्वंनिगद्यते ॥ देशेकालेचपात्रेच श्रद्वया विधिनाचयत् ।

पितृनुद्दिश्यंविप्रेभ्या दत्तं श्राह्ममुदाहतम् ॥
भावार्थ-दूध दही श्रीरची ने पकावाहुआ अन्न
आदि, त्रद्धां श्रीर णास्त्र विधि पूर्वक देश काल
स्वं सुपात्र बाह्मणों का ठीक २ विचार करके पितरों
के निमित्त श्राद्ध के योग्य ब्राह्मणों को जो कुद्ध दिया
जाय उसको ही त्राद्ध कहा गया है॥ तथा श्री योगी
याच्चवस्वय मुनिजी ने श्राचाराध्याय में भी-

वसुरुद्गाऽदितिसुताः पितरःश्राहृदेवताः । प्रीणयन्तिमनुष्याणां पितृन्श्राह्नेनतर्पिताः २६०॥

आयु:प्रजांधनंविद्यां स्वर्गमोक्षंसुखानिच । प्रयच्छिन्तितथाराज्यं प्रोतानृणांपितामहाः। २००॥

सर्थ-वसुतवा बद्र एवं प्रदिति सुत ये तीनों पितर जो श्राद्धके देवता हैं वो श्राद्ध करके स्वयं तृप्त हुए मनुष्यों के पितरीं को भी तृप्र करते हैं। फ्रीर श्राद्ध कर्ता के प्रतिभी सायु, प्रजा, धन, विद्यास्वर्ग

मोस यथा योग्य मुख प्रदान करते हैं। इन वाक्यों से
मृत पितरों का श्राद्ध सिद्ध किया है। तात्पर्य यह कि
जैसे परमात्मा के मृष्टि में देवलोक श्रादि श्रन्य लोक
हैं श्रीर उन्हीं के श्रिष्ठिता इन्द्रादि देव हैं तैंसे कर्म-

षा पितृलोकः बृहदार्ययक॥ दक्षिणाप्रवणोर्वे पित्रलोकः शतपथ—१३। ८।४।७॥ इत्यादि श्रुतियों के ममाण में एक पितृलोकभी

इत्यादि श्रुतियों के ममाण से एक पितृलोक भी स्वतन्त्र लोक है जिसकी अधिष्ठाता अर्घ्यमा अग्निष्वात्त एवं वसुरुद्राऽदिति सुतादि पितृदेव हैं। 'पितृणामर्घ्य-माचास्मि' श्रीमद्भगबद्गीता अ० १० म्लो० १७५

श्रर्थात्-पितृलीक निवासी जो सर्वमा नामक पि तर है वर मेरा स्वरूप है। यो ये जो अर्थमादि पितृ-देव हैं वेही इस ब्राह कर्म में पूजनीय देवता हैं

भीर दन्हों की ही बेद में देवगन्धर्वी से शतग्छित

अधिक आनन्द का भागी कहा है। अ और मरण अनन्तर पुरुष किस योनि में गया.है—और कीनदेश में है और उसके नाम पर उस के वंशीय पुरुषों ने क्या २ शास्त्रानुकूल कृत्य किया है, इत्यादि सब कमं के वह समालोचक हैं ? और वही पितृ देव वैदिक मन्बों से आहूत हुये मृत पितरों के वंशीय पुरुषों करके किये हुये श्राद्ध कर्म में उपस्थित होते हैं और श्राद्ध प्रदत्त आहुति तथा भस्य भोज्य आदिसामग्री के मारांग्र(तत्व) को वासना रूप से ग्रहण करके श्राद्ध कर्ताके प्रति प्रसन्ता पूर्वक आशीर्वाद देकर वैदिक मबों से विसर्जित हुये मृतपुरुषों को यथा योग्य सुख का भागीकरते हैं। (यह सब आगे सप्रमाण स्पष्ट होगा)

यद्यपि उन पितरों का स्वरूप हम इन वर्भ चक्षु-फ्रों मे प्रवलोकन नहीं कर मकते हैं तथापि शास्त्रीय

^{*} सर्वोच्च, सार्वभीम, चक्रयतीं, निष्कंटक राज्य भोका, निख्ति कलाविणिष्ट को प्रति यसिष्ठ राजा है उसको को प्रमानन्द है (जिसको मनुश्यानन्दकी सीमा कही जाती है) उस मनुष्यानन्द से प्रमानन्द है प्रमानुष्यात प्रधिक प्रमानन्द प्रथा को है। उसे समुद्धात प्रधिक प्रमानन्द देवगथर्वों को है। और उन से प्रतमुखित प्रधिक प्रमानन्द देवगथर्वों को है और उन से प्रतमुखित प्रधिक प्रमानन्द वित्तीक निवासी वितरों को है, यह सब तिलिरीयार्ययक तथा वृहद्गर्यक में स्पष्ट है। इस नियं वे वित्तीक निवासी पित्तदेव सहानु वैभव वाले समये और सर्वेश हैं।

पुरुष (अत्यन्त सत्यवादी पूर्णरीति से शास्त्र मर्या-दा पालन करने वाले टुड़ ग्रद्धालु पुरुष) के मन में पितरों का अदृश्य होकर आना अथवा यों कहें कि उर पूर्ण घद्धावान् पुरुपको ज्ञानचक्षु से पितरीं का दर्शन होना कुछ अर्गभव नहीं है। क्योंकि योग शास्त्र में यह विषय स्पष्ट है कि यदि काय किपमें पुरुष संयम करे तो वह पुरुष अन्यों से अदूरय हो कर यावत् व्यवहार कर चकता है। (योग दर्शन के तृतीय विभूति पाद के २१ वें सूच में यह स्पष्ट है।) तथा थी वाल्मी कि रामायण में सती थी सी-ताजी ने अपने मृत खशुर श्री दशरय जी का श्रा-द्धभोक्ता मुनी स्वरों के देह में दर्शन किया या यह मसंग जागे चतुर्य ज्रध्यायमें स्पष्ट खोला गयाहै।इति॥ महाशय जी ! अब आपको निः सदेह स्पष्ट ज्ञात हुना होगा कि श्राद्ध शब्द का शास्त्रोक्त सर्थ क्या है और किस कर्म का नाम श्रद्ध है। तथा उसका . रहस्य क्या है सो भी मालूम हुआ होगा॥ इति श्री श्राद्धिपतृ मीमांसायां श्राद्धशब्दार्थ तत्स्वरूप रहस्यंच प्रदर्शने प्रयमोऽध्यायः ॥

स्त्रय द्वितीयोऽध्यायः । समाजी-भी परिडत जी ! यह ब्राद्ध शब्द का

थास्त्र सम्मत युद्ध अर्थ तो अच्छी तरह जेरी सम-भ में आया परन्तु अव कृपा करके इस विषय में मुभे कुछ और ज्यादा वेद शास्त्रों के प्रवल प्रमा-णों से स्पष्ट करके बतलाओ कि श्रद्ध मृतकों का ही होता है वा कभी जीवित माता पितादिका भी?

सनातनी-महायय जी ! यदि आप जिज्ञासु होकर इस विषय का पूर्ण रीति से वेदादि शास्त्रों द्वारा निर्णय कराना चाहते हो तो में भी इस तु-म्हारी यंका का वेद शास्त्रों के यवल प्रमाण व सद्युक्तियों से निवारण करता हूं आप अब साद-धान होकर और पक्षपात रूप जिद्द की लाठी की छोड़कर प्रेमसे सुनो !

"श्राद्ध" जिस कर्म का नाभ है वह तो सदैव मृतकों का हो होता चला श्राया है स्रोर हो बक्ता है-जीवित माता पिता श्रादिकों की सेवा धर्म शा-स्त्रों में लिखे अनुसार अवश्य करना चाहिये वह पितृ मातृ सेवा स्वं गुरु सेवा श्राद्ध से भिन्न एक धर्म सम्बन्धी कर्म है जीवितों की श्राद्ध पद्धिति श्रद्धापर्यन्त चल्कि श्रायंस्माजियों मे भी न बनी श्रीर न कपी देखने में श्राती श्रीर न कभी जोवि-तों का श्रद्ध होना कहीं देखने में श्राता है। तथा श्राद्ध कर्म की पद्धतियें जिन ब्राह्मण्यंथ मंत्र तथा श्रीत गृह्मसूत्रों से घनी हैं उन सबों में मृतकों का ही त्राह्म सिंह है। इस लिये जीवितों का श्राह्म कहना निर्मुल केवल हठ मात्र है ॥ अब इस विषय को सिद्ध करने के लिये प्रथम मंत्र मंहिता (वेद) के ही प्र-माण दिये जाते हैं। सबेत होकर सुनो। अथर्ववेद कां० १६ अनु० २ मंत्र १८॥ "उदन्वतीद्यौरवमापीलुमतीतिमध्यमा । स्तीयादप्रद्यौरितियस्यां पितरआसते"॥ म्पर्य-ब्रह्मागढ के तीन लोकों में बीच का मन न्तरिस (भुवः) लोक कहाता है इस मध्य लोकके मंत्र में तीन भाग किये [उदन्वती द्यौरवमा] सूर्य चन्द्र नम्रचादि ज्योतियों का प्रकाश जिसमें फैल-ता है इस लिये वह (प्रन्तिरिक्ष छी) कहाता है। उस में पृथ्वी की श्रीर का भाग जल वाला अर्थात स्रंतरिस (स्राकाश) में जो नीलापन छाया हुआ दीखता है यह मूक्त जल है इस जल वाले सन्त-रिक्ष भाग का नाम "उदन्वती द्यी" है। (पील्म-तीति मध्यमा) और जल से जपरी आकाय का मध्यम भाग "पोलुमतीट्यो" कहाता है। स्रोर (तृ-तीयाह प्रद्योरिति) वह से जपरी अन्तरिक्ष का तोसरा भाग सूर्यादि के मखर मकाश वाला होने चे "प्रद्यो." कहाता है (यस्यां पितर आचते) इसी "प्रद्यो" नामक अन्तरिक्ष के तृतीय भाग में पितृ-

देवरहते हैं। प्रिय महाशय जी! इन्हीं पितरींका श्रद्ध होता है। मंत्र में कहे तीसरे खाकाश में रह-ने वाले स्यूल देहधारी जीवित पितर सिद्ध नहीं हो सकते । स्यूल देहधारी पितर पृथ्वीमें रह सक-ते हैं तृतीय खाकाण में नहीं। इससे जीवितों का पितर होना और उनका श्राद्ध मानना दोनीं खंश .खिरिडत हो जाते हैं। हमारा पक्ष केवल यह नहीं है कि हम मृतक का ही ब्राह्म सिद्ध करें किन्तु ह-मारा मुख्य पक्ष यह है कि स्यूल देहधारी अपने विद्यामान माता पितादि की सेवाका नाम ब्राह्म नहीं है। जीवित और मृत भन्दों में कई कुतर्क हो चकते हैं.जो मृत हैं वो भी जीवित हैं और जो जीवितहैं वे भी मृत हैं। क्योंकि जो मरे हैं वे कहींनकहीं किसी योनि में जन्म लेकर जीवित कहे जा सकते हैं। देव तथा पि-तरों की भी योनि हैं उन में जीवित कहना बन स-कता है। और जो मनुष्यादि जीवित हैं वे भी पूर्व जन्मान्तर में मर चुकने से मृत कहे जा सकते हैं। मृत ग्रब्द की भाषा मुद्दी नहीं है क्योंकि मुद्दी ग्रब्द का संस्कृत ग्रव है। इस लिये ग्रव नाम मुर्दा ग्ररीर का ब्राह्म करना शास्त्रों का सिद्धान्त नहीं। मुदीं का ग्राद्ध कहना उन कुतर्की लोगों का प्रलाप मात्र है। स्नात्मा वा सेत्रज्ञ न मरता है न जन्म सेता है किन्तु भूतात्मा मरता जन्मता है इस लिये [अधा मृताः पितृषु सम्भवन्तु । अधर्व०१८ । ४ । ४८ ॥]

मरे हुए प्राणी (भूतात्मा) पितृ योनि में उत्पन्न हों। इस अथर्ववेद के प्रमाण से भी सिद्ध है कि सत नाम मुद्दें का नहीं किन्तु भूतात्मा का है। शुभ जन युभ जन्म भरण भुतात्मा के होते हैं यह खंश मैं च्यु पनिषद् के तृतीय प्रशास्त्र में अच्छी तरह से वर्णन किया है। यदि मृत शब्द का भाषानुवाद कोई लोग करते हैं तो यह उनको समभ है किन्तु शास्त्रानुकूल नहीं है। इस लिखने से मेरा प्रयोजन यह है कि यदि कोई कुतर्की हमको पकड़े (कि जो लोग पि-तादि मर गर्य उन्होंने किसी योनिमें जन्म ले लिया तो वे जीवित हुये उन्हों का श्राद्ध तुम करते मानते हो इस लिये जीवितों का ही ब्राह्म तुम ने भी माना वा मान लिया) इस लिये इस सुतर्क की पहिले से ही निर्मल काट देने के लिये हम ख़पने साध्य पक्ष-स्य प्रतिचाका स्पष्ट व्याख्यान कर देते हैं कि हम उन पिता मातादि का श्राद्ध शास्त्रान्क्ल मानते हैं स्रीर करते हैं कि जिस भौतिक शरीर से वे हमारे माता पितादि कहाते थे उम ग्ररीर को छोडकर अन्य किसी योनि में परिसत (माप्त) हो गये हों। यही उनका मरना वा मृतक कहाना है॥ तथा-मंत्रवंहिता यु० यजुर्वेद अ० १८।६० मंत्र मे लिग्निष्वात्त स्नविग्वात्त दो प्रकार के पिन तर लिखे हैं। यदा-येअग्रिष्यात्ताये अनग्निष्यात्ता मध्येदियः स्त्रवयामादयन्ते०॥ यजु० १९ १ ६०

चे अग्निद्ग्धाये अनिश्वद्ग्धा मध्येदिवः स्व-धया मादयन्ते ॥ ऋग्वेद मगडल १० सू० १५ मं० ११ तथा अथर्व० १८ । २ । २५

जपर लिखे पतों पर उक्त मद्य वेद की तीन मंहिताओं में हैं, यजुः मंहिता में (अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त) पद हैं उन्हीं दो पदों के स्थान में (अग्निदम्ध अनग्निदम्ध) पद ऋग्वेद अथवेवेदमें लाये

गये हैं (मध्येदिवः स्वथंवा मादवन्ते) इत्यादिपाठ तीनों वेदों में एकचा ही है इवसे चिद्ध होता है कि सम्बेद तथा अर्थवं० में जिनको (अग्निदम्ध अनिश्च दम्ध) कहा है उन्हीं को यजु० में (अग्निप्वास अन-ग्निप्वास)कहा है। क्योंकि स्ववेद तथा अर्थवं में अग्निप्वास अनिव्यास ग्रव्द उन मनों में नहीं आगे तथा अग्निदम्ध अन्निव्यास ग्रीर स्व

आये इस से सिद्ध होता है कि अग्निष्वास और अ-ग्निद्यध का तथा अनग्निष्वास और अनग्निद्यध का एक ही अर्थ है ॥ पाणिनीय व्याकरण के अनुसार इन शब्दों का अर्थ यह है कि—

^{यह हास}— "ऑग्नना + स्वादिता: = अग्निष्वात्ता: १ अग्नि-ना + दग्धा: = अग्निदग्धा: ।

जलाते हुए अग्निने जिनका स्वाद ले लियांचा अग्निने जिनको जलाया वे पितर अग्निष्वात्तवा अ-ग्निदम्थ कहाते हैं। इसीयकार तृतीया समासमें वेदों में- लिखा अन्तोदात्तस्वर[यायघज्तताजिविष्ठकाणाम् ॥
पा० ६। २। १८४ मूच ॥ (गत्यादिभ्यः परेषां यादि
प्रत्ययान्तानामुत्तरपदानामन्त उदान्तो भवति ॥)]
इस मूच में सिद्ध होता है। सूचार्थ यह है कि-गति
कारक और उपपदने परे थ, अथ, घज्, त्त, अच्,
अप्, इच, और क प्रत्यवान्त उत्तर पदों को अन्तोदात्त हो, इससे अग्निकरण कारक में परे व्वान्त और
र दग्ध इन क्त प्रत्ययान्त उत्तर पदों को अन्तोदात्त
स्वर हुआ है। यद्यपि ऐसी द्या में जिल्ला का पाण-

नीय व्याकरण के अनुसार तथा संहिताओं के पर-स्पर मेल से अग्निष्वात्त पद का अर्थ सिद्ध होगया कि जो अग्नि से जलाये गये वही पितर अग्निष्वात्त तथा अग्निद्य हैं तब हमको अन्य ममाण की अ-पेला नहीं। तथापि (अधिकस्याधिकं फलस्) के अनुसार अत्पय बाह्मण वेद का भी ममाण देते हैं।

"यानिनरेव दहन्त्स्वदयित ते पितारेऽग्निष्वा-ताः ॥ यतपथ ब्रा०२।५।२। ॥ "अर्थात्-जला-ता हुआ अग्निही जिनका स्वाद ले लेता है वे पि-तर अग्निष्वात्त कहाते हैं। इस यतपथ ब्रा० वेद के प्रमाणने भी चिद्ध हो गया कि मरने पद्यात् जो अ-ग्नि मे जलाये गये वेही मृत पितर पितृयज्ञ वा आ-

प्रमाणमें भी चिद्ध हो गया कि मरने पद्यात् जो अग्नि ये जलाये गये वेही मृत पितर पितृयज्ञ वा आद्ध में लिये जाते हैं, मरने परही मनुष्य के श्वरीर
अग्नि ये जलाए जाते हैं, तथा जो जलाए गये वे
जीवित नहीं रह मक्ते हैं इसमें श्राद्ध में मृत पितरों

का ही ग्रहण मन्त्र संहिता के प्रमाणों से सिद्ध ही चुका। ऋग्वेदादि भा० भूमिका पुस्तक के पितृयञ्च प्रकरण में स्वामीद्यानन्द जी ने ख्रीनिप्यात्त ग्रब्द का अर्थ यह किया है कि "अगिन को अच्छे प्रकार जिसने ग्रहण किया है वे अग्निष्वात्त कहाते हैं"। यह अर्थ मंहिताओं के परस्पर मेलसे तथा भातपथ ब्रा० वेद से और पाणिनीय व्याकरण इन तीनों से विषद्ध है। उक्त स्वामीजी की प्रतिज्ञा उसी भूमिका पुस्तकमें यह यी कि महीधरादि भाष्य-कारों का किया हुआ वेदार्थ शतपवादि से विरुद्ध है और हमारा किया अर्थ शतपथादि ब्राह्मण भाग के अनुकूल होनेसे सर्वया शाह्य होगा सी वह प्रति-चा प्रव निर्मूल हो गई, स्वमुखसे स्वात्मण्लाचा करनी मानो विद्वताको ग्रमीना है स्वामी जी की स-त्यमितज्ञाकी, एवं संस्कृत में विद्वत्ता की और सत्य-षादीपने की तो बात ही क्या कही जाय ! आपती पूर्ण संस्कृतज्ञ, सत्यवादी और पूर्ण त्यांगी महर्षिया में मुक्ट ये इसीलिये तो आप ऋषिजीकी सेवा में "आ-धुनिक महर्षिकी पोल"नामक एक टैक्ट मेंट की ग-ई है कि जिस में आप श्री की विद्वता का पूरा २ गान किया है अस्तु तात्पर्य यह कि स्वा० ६० जी का किया अग्निप्वास शब्दका अर्थ शतपथ ब्रा० से. संहिता से तथा पाणिनीय व्याकरणसे विरुद्ध वा प्रयुद्ध प्रवश्य है जिसका समाधान वर्तमान प्राप्यमन्यो

में से कोई भी नहीं कर सकता और जो कोई गिरा पड़ा समाधान करेगा वह युक्ति प्रमाणों से अवश्य कट जायगा और अग्निप्वांत तथा अग्निद्ग्ध आ-दि संहिता के मंत्रों से भरे हुए पितरोंका बाह्यवापूजन होना अवश्यिस है जिसमें लेश माझभी सन्देह नहीं। मन्द्यके मरने परदो प्रकार की क्रिया होती है। एक तो मरेहुए मुर्दाको अग्नि में जला देना द्वितीय दो वर्षके भीतर जिन वालकों को वा कुष्ठादि (कोड़) रोग वालों को वा जिन संन्यासी आदि के लिये शास्त्र में प्रग्निदाह नहीं कहा है उन को तथा जिनका श्रग्निदाह किसी खास कारण से न हो सके उन सबकी, जल वाबन में फैंक देनावाखोद के गाड़ देना यह दो प्रकार की क्रिया होती है। ये सब फ़-निग्नवात्त वा अनिग्नदम्ध कहाते हैं। (अनिग्न-दग्ध) वा (अनिनिष्वात्त) का यह अर्थ होगा कि जो र अग्नि से नहीं जलाए गये। उनके विषय में बेद का यह मंत्र प्रमाण है कि अथर्व कां १८।२।३॥॥ येनिखातायेपरोप्ता येदग्धायेचोद्विताः। सर्वा स्तानग्रुआवह पितृन्हविषेअसवे ॥ अर्थ-मरने पर जिनको खोदफे गाढ़ दिया, जो बन वा जंगल में छोड़ दिये गए, जो स्रिम में जलाए ग-ए तथा जो युधिष्ठिरादिके तुल्य इसी ग्ररीरसे स्वर्ग को चले गए, है! अग्रिदेव उन चब पितरों को

हिषप् खानेके लिये इस ब्राद्धादि पितृकर्ममें बलासी।

इम मंत्रके निर्विकल्प मीधे २ श्रक्षराष्टि स्पष्ट ही सिद्ध है कि मरने पद्यात् ही पृथ्वीमें गाड़देना ख़ादि हो सकता है इस ने ख़ाद्ध में मृत पितरों का ख़ावाहन करना सिद्ध है। वर्तमान पार्वणादि ख़ाद्धोंमें—

कायन्तुनः वितरः सेम्यासे।ऽग्निष्वात्ताः पः चिभिर्देवयानैः०॥

श्रीनमें जिनका दाहकर्म होचुका है ऐसे सोम गुओं वाले हमारे पितर देवयान श्रन्ति सार्गसे इस श्राद्ध में आवें। इस मन्त्रके अर्थसे भी मरे हुए पितरोंका श्राद्ध सिद्ध है। तथा—

ये पूर्वापरागताअपराःपितरस्र ये । तैभ्या घृतस्य कुल्येतु शतधारा व्युन्दती ॥ अथर्व० कां० १६ अमु० २ । मं० १२ ॥

कॉ॰ १८ अनु॰ २। मं॰ १२॥ अर्थात्. पूर्वं जो गये और जो जा रहे हैं उन पितरोंके लिये घृतकुल्या शतधारा होकर प्राप्त होवें।

यहां मृतकथाद्ध निन्दकों पूछना चाहिये कि वे यह तो वतावें कि उक्त मन्त्र में वो आपके कीन जी- वित पितर हैं जो पूर्व चलेगये और जा रहे हैं? और किस तरहसे आप उन चलेगए पितरोको पृत की आहु तियें दे सक्ती हो? क्योंकि वे तो गए और आहु ति लेने वाला तो जब समक्षमें अर्थात् सामने

हाजिर होता है तब ले सक्ता है सो तो उक्त मन्त्र के "ये पूर्वापरागता" इस पिक्त में वर्त्त मान क्रिया है ही नहीं वहां तो पूर्व चलेगये पितरोंका जिकिर जनितमपराधुम् (पुष्पता) मनुष्यत्वेन हेतुना (क-राम) वयं कृतवन्तः, हे पितरः तेन केनचिद्पराधेन (नः) प्रस्मान् मा (हिंसिष्ट) विधिष्ठ।

(नः) अस्मान् मा (। हामष्ट) वाधष्ठ। भाषार्य-हे (विश्वे) निखिल पितरो ! स्नाप(जा-नुस्नाच्य) वाम जानु यानी वार्ये घोंटु को भूमि पर

निपात (खोर लगाकर) कर (दक्षिणतः निषद्य) इस अग्नि से दक्षिणकी ओर स्थित होकर (इमं यज्ञम्) इसंहमारे यज्ञ को [अभिगृणीत] स्तवन यानी अं-गीकार की जिये, और [पुरुषता] चाञ्चल्य स्वभावरूप

मनुष्यपने से, श्रापका [यद् श्रागः] [कराम] जो कुछ कर्म वैगुष्ययुक्त [प्रवीत इस यज्ञ कर्म में कुछ कमी वा चुटि होजाने रूपी] अपराध किया हो तो तिस किसी अपराध से [नः] हमको [माहिंसिष्ट] हिं-सन मत करो। इत्यादि

दिग्दर्शन मात्र दिखायेइन वेद मंत्रो द्वारा मृत पितरों के ही निमित्त श्राद्धादि यद्य कर्मों में पितृ-लोक के अधिष्ठाची देवीं का आवाहन-नमस्कारा-दि स्तृति स्त्रीर पूजन चिद्ध हैं। तथा---

्रतिरइव वै पितरो मनुष्येभ्यस्तिर इवेतद्वः वितः ॥ शतपथ ब्रा० २ । ३ । १ । ११ ॥ अर्थात्-पितर लोग मनुष्यों से ब्रहूश्य होते हैं

स्रीर पितरों का भोजन भी स्रद्भय बुदम होता है। इस कथन से भी सिद्ध है कि स्यूल देहधारी पितर होते तो स्रदृश्य नहीं कहै जाते। इसलिये पिएडदा- न संबन्ध में अद्यय पितर कहने से वे ही प्राण श-रीरी वायुकाय सूरम प्रदृश्य पितर लेने हैं। इस से भी जीविनों का खरडन तथा मृत दितरों का श्राह्म

सिद्ध है। तथा- *शतपथ ब्राह्मण में पितरों के लिये प्र-त्येक महीने में एक बार और मनुष्यों के लिये मति दिन सार्य मातःकाल दोवार भीजन मजापति ने नियत किया। यदि जीवित पितरों को मानें तो वे

मनुष्य ही हुए तब बताओं कि वे ऐसे कीन मनुष्य हैं जो महीने में एक वार समावास्या के दिन ही भोजन करते हीं ! ऐसा मनुष्य कोई न हो सकने के कारण मनुष्यों से भिन्न मरणानन्तर पितृयोनि

गये पितर ऐसे समर्थ होजाते हैं-जिनको महीने भर में एक बार ही भोजन मिलने से तृप्ति रहती कए नहीं होता। इसमें भी मृतकों का बाद्ध सिद्ध है। शांखायन श्रीतसूत्र पिण्डपित्यज्ञ प्रकरण

में "न जीव पितुरस्ति," अ० ४ कं०४ सू० ७ ॥ श्रर्थात्-जिसका पिता जीवित हो वह पिगड पितृयज्ञ न करे उस के लिये पिएडपितृ यज्ञ नहीं है। इस प्रमाण से भी जीवित का निषेध करने से

मरे पितरों का ब्राह्म अर्थापत्ति चे चिह्न है। अर्थात् जि-मका पिता जीवित हो वह बाद्ध न करें तो यह आ-

या कि जिसका पिता मर गया हो वह पिएडपित * शतपच ब्रा॰ कां॰ २ प्र॰ ३ मं॰ २ श्रीर ३ मे त्र स्प-ष्ट रूप से आगे अध्याय ५ में वर्णन किये गये हैं वहां देखी।

यज्ञ करे तथा ग्रांसायन ग्रीत सूत्र साक्षमेध पर्वस्य महापितृयज्ञ प्रकरण अरु ३ कंट १६ सूत्र २ ।

ि पित्रभ्यो वा सोमबद्भयः पित्रभ्योत्रर्हिप द्रभ्यः पित्रभ्योऽग्निष्वात्तेभयः] ।

सोमवान्, बहिंबद् और अग्निब्वास इन तीन नाम वाले पितरों के लिये महापितृयच में भाग दिये जाते हैं। इन में अग्निब्वास पितर वोही हैं जो मरणानन्तर अग्निदाह को भाम हुए। इस में भी मृत पितरों के लिये आहु होना सिद्ध है तथा पियड पितृ यच्च मकरण कात्यायन जीत सूब २३ अ 8 कंवर।

[प्रेतेभ्योददाति]

भेत नाम मरे हुए पिता पितामहादि के लिये पिराड देता है अर्थात् देने चाहिये। अर्थापत्ति आया कि जीवितों के लिये नहीं। इस में भी मरे हुआ के लिये पिराडदान देना चिद्ध है तथा आपस्तम्ब श्रीत सूत्र पिराडपितृयद्य मकरण।

यदि जीवितपिता न दद्यादाहोमात्क्रेत्वा विरमेत्॥

यदि जिसका पिता जीवित हो वह पिएडदा-न न करें तो होम पर्यन्त ही पिएड पितृ यज्ञ करके ठहर जावे। इससे भी मरें हुओं के लिये पिएडदान सिद्ध है। तथा मानव करूप सूत्र में लिखा है कि।

यदि ददाह येभ्य एवं पिता दद्यात् तेभ्यो दद्यात्॥ जिसका पिता जीवित हो वह यदि पिएड देवे

तो जिन पितामहादि मरों के नाम से पिता देवे उन्होंके लिये पुत्र भी पिराडदान करे अर्थात् अपने जीवित पिता के नाम से पिराडदान न करे। इससे भी मरे हुए पितादि के लिए पिराडदान विद्व है।

"पिता पुत्री चेदाहितारनी स्यातां येभ्यः पिता तेभ्यः, पुत्री द्यात्। पिता प्रेतः स्यात् पिता तेभ्यः, पुत्री द्यात्। पिता प्रेतः स्यात् पितामहो जीवेत पित्री पिण्डं निधाय पितामहा त्पराभ्याम् द्वाभ्यां द्यादिति ॥

यदि पिता पुत्र दोगों ने विधिष्ष्वक श्रौत स्मा-

याद पिता पुत्र दाना न विषिप्यक श्रात स्मार्म श्रानियों का स्वापन किया हो तो अत्येक, श्रमावास्या के दिन दोनों को पिषड पितृयन्न करना
चाहिये। इस दशा में जिन तीन के, नाम से पिता
पिषडदान करें उन्हींके लिये पुत्र भी विषड देवे
किन्तु पुत्र श्रपने जीवित पिता के नाम से पिराडदान न करें। ग्रीर यदि पिता मर गया हो पितामह
(दादा)जीवित हो तो पुत्र को चाहिये कि पिता
के नाम से पिषडदान देके जीवित पितामह (दादे)

को छोड़ उपने पूर्वके प्रितामह वृद्ध प्रितामह दोनों के लिये पिण्डदान देवे। यह विषय ऐसाही ज्यों का त्यों मनु० प्र०३ प्रलो० २२०। २२९ में भी लिखा है जिस से सिद्ध है कि मृत पितादिके लिये पिएड-दान होता है इशीका नाम श्राद्ध है। प्रयोजन यह कि प्रमार्गा से तो अच्छी प्रकार सिद्ध है कि "ब्राह्स"

मरे हुए पितादिका होता है जीवितों के सत्कारका नाम "याद्ध" किसी यंथ से कदापि सिद्ध नहीं हो मक्ता है, इत्यलम् विद्वतसु ॥

इति श्री श्राद्विपदमीमां सोयां मृत पितृणा-मेव श्राह सिद्धि प्रदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ त्र्रथ तृतीयोऽध्यायः ॥

समाजी-श्री परिष्ठतजी महाराज ! मृतकोंकी ग्राह्मिद्धि में ये जत्यन्त प्रथल, शास्त्रप्रमाण ग्रीर सद्युक्तियां सुनकर अब भेरे हृद्यके संशय रूप क-

पाट खुल गर्म हैं और मुभे दूछ विश्वास हुआ है

कि "बाद्ध" मृतकों का ही होना निःसंदेह सत्य एवं वेदानुकुल है। इसलिये हम-स्रव इन स्नापके दिये शास्त्र प्रमाण रूप अस्त्रोंको लेकर अपने आर्थ्यस-माजी महाश्रवींको श्रविद्या-हठ श्रीर पक्षपात रूपी महाणबुझोंके पञ्जीचे खुड़ाने की एवं वेदोक्त चन्मार्ग पर लाने की यथार्चभव कोशिश करते रहेंगे। परन्तु हे परिखतजी! मुभी यह तो बतास्री कि पिता

पुत्र का संबन्ध शरीरों के साथ है वा जीवात्मा के साय । यदि शरीर के साथ मानी ती यह श्र-रीर यही जला दिया राख भस्म होकर मट्टी में मिल गया अर्थात् रहा ही नहीं उस शरीर रूप पिताका म्राद्ध पुत्र करही नहीं चकता । स्रीरजीवात्मा किशी

का पिता वा पुत्र होता ही नहीं। क्यों कि जैसे जी-वात्मा न स्त्री न पुरुष और न नपंचक होता [श्रुति:-

नैव स्त्री न पुमानेष नचैवायं नपुंछकः] वैसे ही वह किसीका पिता वा पुत्र भी नहीं होता। फिर तुम पिगडदान का फल किन की पहुंचाते हो ?। अर्थात् मरने पद्यात् उस २ पितादिको सुख पहुंचाने के लिये

धाद्धकरना व्यर्थ समभा जाता है। सनातनी-प्रिय महाशयजी ! क्या आप गुक शिष्य पिता पुत्रादिका संबन्ध नहीं मानते ? यदि मानते हो तो ग्रारीर के साथ वा जीवके साथ, किस

के साथ मानते हो ? यदि कही कि हम प्रत्यक्ष वि-द्यमान संबन्ध मानते हैं मरने पश्चात् किसी के साथ नहीं मानते तो यह बताओं कि स्वा० द्यानन्द की

स्वर्गवास हुआ कहने में प्रसन्न और नरक हुआ कह-ने में प्राप्रसन्न क्यों होते ही ! तथा स्वा० द० को कोई ब्रा कहे वा लिखे तो उपके साय। लड़ने की तय्यार वयों होते हो ! क्योंकि स्वा० द० का शरीर भस्म हो

के पंचतत्व में मिल गया उसके साथ तुम्हारा कोई संबन्ध हो ही नहीं सकता रहा जीवात्मा सो जैसे वह किसी का पिता वा पुत्र नहीं वेसे श्री वह किसी का गृह वा उपदेशक भी नहीं ठहर सकता। इसलिये

(美) तुम को स्वा॰ दयानन्द का कभी नाम भी नहीं लेना चाहिये। ख़ीर यदि तुम ख़ब उन की प्रश्वका में स-न्तुष्ट प्रवज्न होते और उन को ब्रा कहने वाले पर स्रमण्य होते हो तो तुम्हारे मन से ही मरे जी घोंके माय मंबन्ध मिद्ध हो गया । यह उत्तर तो वैसा ही है जैसा प्रश्न या अब आगे आप -जिज्ञास महायय को तत्वांश समभाने के लिये इसी संश पर कुछ वि चार तिखते हैं वह प्रश्नका समाधान भी होगा और

शास्त्रानुकूल चिद्धान्त जान् का हेतु भी होगा। प-रन्तु इस गहन विषय को आप पूर्ण ध्यान लगाकर धैर्य से सुनेंगे तो आशा है कि आप शीप्र ही इस उच्च चिद्धान्त को ठीक २ समभ कर पूर्ण लाभ ले चंकेंगे ॥ "जीव वा जीवोत्मा क्या है" इस विषय पर अ-

नेक विचार ग्रथों में मिलते हैं जिनका व्याख्यान यहां छेड़ा जाय तो एक यही बड़ा व्याख्यान चल जावे। इस लिये अधिक शास्त्र सम्मत सिद्धान्त जो वास्तव में वेदानुकून है वही यहां कहते है कि-बेद्के (द्वासुपर्णा०) मन्त्रमें दो आत्मा कहे हैं इन

दोनोंमें (अनक्षत्रन्यो अभिचाकशीति) जी गुभागुभ फल सुख दु:खभीग न करता हुआ केवल प्रकाश करता माजीरूपरे स्थित है जिसके लिये उपनिषदोंमें (माजी-चेताकेवलो निर्मुख्य) इत्यादि कथन लिखा गया है। मो जैमे जयां पुष्पकी खाया (भलक वा सामाम) स्व-च्छ कांच ग्रादि से सभीप होने के कारण पडुने से

कांच ल्रादि ठीक उसी पुष्पके रंग से रंगा दीखता है। उसी के ल्रेनुसार जपर लिखा गया साली ल्रा-रमा का ल्राभास लन्तः करवार्में पड़ता है। वास्तबर्में स्वालः करण जल है। पर चेतन के लालास से चेतन ही

अन्तः करण जड़ है। पर चेतन के आभास से चेतन ही अतीत हुआ करता है। अपने आभास हारा अन्तः क-रण को सचेत करता है इसी लिये उपनियदों में इस

रण को सचेत करता है इसी लिये उपनिषदों में इस आत्मा को चेता कहा गया है। इसी चेता का नाम सेच है यही सातात् ईप्रवर परव्रह्म परमात्मा है। श्री गीता में लिखा है कि—"सेच हे चिप मां विद्या सर्वे सेचे परमात्मा है। श्री गीता में लिखा है कि—"सेच हे चिप मां विद्या सर्वे सेचे परमें स्वी ही जानो। तथा मेनु ० अ० १२ में लिखा है कि—"

"योत्स्यात्मनः कार्ययता तंक्षेत्रज्ञं प्रचक्षते। यः करोतितु कर्माणि समूतात्माच्यते वुधः १२ जीव संज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम्। येन वेद्यते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥१३॥ तावुभी भूतसपुक्ती महान्क्षेत्रज्ञ एवच।

उच्चावनेषु भूतेषु स्थितंतं व्याप्य तिष्ठतः" ॥११॥
- अर्थ-जो इस सचेत गरीरमे कर्म कराने माला
है उसको परिखत लोग सेत्रच कहते हैं, और जो
गुभागुभ कर्म करता है वह भूतात्मा नाम गरीर कहाता है। नाथा गरीर के माथ ही आविर्भृत प्रकट

होने वाला जीव गंचक तीगरा आत्मा उन दोनों

से भिन्न है। गरीरधारी इसी जीव रूप साधन से ग-रीर धारण के समय सब सुख दुःख को जानेता है। वे दोनों जीव नाम महत्तत्व वा बुद्धि तथा के अध पंचभूत रूप स्यूल मूस्म शरीर में मिले हुए मब छोटे बड़े ग्रारीरों में व्यापक परमात्मा के महारे से ठहरे हुए हैं। जैसे सूर्य्य वादीपकादिका बाहरी प्रकाश आंखों से दिखवाता है वैसे ही सेवज सासीरूप से अपनी चेतना द्वारा स्यूल सूदम शारीर से कर्म क-राता है। इसी लिये उपनिषदों में ईश्वरको [चेतन-श्वेतनानाम्] चेतनींका भी चेतन कहा है। जाननेका साधन जिससे मुख दुःख जानते हैं वही जीव है स्त्रीर जानने वाला वा करने वाला भुतात्मा है। भुतात्मा और गरीर एक ही के नाम हैं। गरीर तीन प्रकार का है-एक स्यूल द्वितीय सूक्ष्म तथा तीसरा कारण गरीर है। यद्योप प्रत्यक्ष में स्यूल गरीर कमं करता हुआ दीखता है। परन्तुस्यूल वास्तव में कर्त्तानहीं किन्तु सूक्ष्म शरीर मुख्य कर कर्म करने बाला है। स्यूल ग्रंरीर का नाम अन्नमयंकोष है। प्राणमय और मनीमय कोप का मुख्य संवन्ध सूक्ष्म श्रारीर के साथ है। मैं ज्युपनिषद् में भूतात्मा शब्द से इसी सुक्त श-रोरका गमनागमन जन्म मरण के साथ माना है। यह

हा मन्युपानषद् म भूतात्मा भन्द च इसा सूहम ग्र-रोरका गमनागमन जन्म मरण के साथ माना है। यह चर्वतन्त्र नियम है कि जो पदार्थ जेसा स्यूल दीख-ता है वह वैसा ही ज्यों का त्यों सूहम द्या में भी अवयय होता है। क्योंकि सूहम से ही सब स्यूल प- मूक्म रहा करते हैं। जैसे स्यूल वृक्ष अपने सब अंशी

यहित मत्येक बीज (स्नाम की गुठली स्नादि) में विद्यमान रहता है ख़ीर ख़ाम ख़ादिके पेड़ (युर) में आम के फल और बीज का भी मूक्स कारण वि-धामान है वैसे ही मनुष्यादि के स्यूल शरीरों के भी-तरमुक्त श्रीर कारण धरीर विद्यमान हैं। यही मूक्त श्ररीर नामक भूतात्मा देव-मनुष्य श्रीर तिर्थेग् श्रादि योनियोंमें जाता है यही देव-पितर बनता है इसीके साय जीवसंश्वक महत्तत्व भी तिरीमृत दशामें मर-गानन्तर रहता है। सूक्ष्म ग्ररीर के साथ स्थल ग्र-रीर का ऐसा ही संबन्ध है जैसा ची के साथ दूधका है। अर्थात् स्यूल का साररूप घृतके जगह पर सुक्त श्रारीर है और धृत के निकल जाने पर जो देशा दूथ की होती वहीं दशा मूक्ष्मशरीर के निकल जाने पर स्पूल देह की हो जाती है। फ़ौर जब तक दोनों मिले हुए हैं तब तक टूध के समान हैं। सूक्ष्म श-

दिया है । तदाया— "द्रप्न: सोम्प मध्यमानस्य योऽणिमा स ऊ-ध्वं: समुदीपति तत्सर्पिमेवति ॥१॥ एत्रमेव खलु सोम्यासस्याख्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्घ्यं: समु-

रीर स्यूल ग्रारीर का गार (तत्व) है इनकी मिद्धि के लिये जान्दोग्य उपनिषद्द में स्पष्ट ही खोलकर लिख

दीपति तन्मनी भवति ॥ २ ॥ अपार्थ सीम्य पीयमानानां घोऽणिमा स अध्यः समुदीपति स प्राणी भवति"।३॥ इत्यादि छान्दो० प्र०६। खं०६॥ हे सोम्य खेतकेतु ! जैसे दही के मंथने पर जी मुक्त सार भाग जपर झाजीता वह घी होता है वैसे ही खाये हुए अन्नका, जो मुस्म मारभाग उदर मे ज-पर हृदयादि में आ जाता है वह मन होता है। इस सेमन आदि सुक्षम् शरीर स्यूल देहका सार होना स्प-ष्ट सिद्ध है। यही सूस्म गरीर देव पितृ आदि योत नियों में जाता है। इसी भूतात्मा नामक सूक्षम य-रीर के बाय पिता पुत्रादि वब खंबन्ध मरणाऽनन्तर भी रहता है जीर सुझ्म शरीर में सब खंगीपाझ वैसे ही बने होते हैं जैसे स्यूल में हैं। हरएक वस्तु अन्य देशा में पहुंचने पर भी अपने संबन्ध की अपनी आ-कर्पण मंक्तिने खेनता है और वह खिना हुआ वहीं पहुंच जाता है। वैसे ही सूस्म गरीर जहाँ जिस यी-नि में जन्म लेता वहां अपने स्यूल घरीर के परमा-गुंझों का खेंच करें फिर नया गरीर बनाता है । इं त्यादि संव का सारांश यह है कि जीवातमा कर्मा-नुमार स्यूल देह को बोड़ कर मूं म देहने कड़ा हो-

कर अन्य २ योनियों में जन्म लेता है और मुझम गरीर को भी वह जीवातमा तब छोड़ता है जब कि वह संसार की वासना (अर्थात् वंधन केप संकल्प विकल्प सादि कामनासीं) से निवृत होकर निर्वाण

पद (मोक्ष को प्राप्त करने का अधिकारी बनता है। इस लिये हरएक आस्तिक की चाहिये कि अपने वेद शास्त्रों के आञ्चानुसार शास्त्रविधि से अपने मा-ता-पिता=गुरु क्रादिकों के पृत्न गरीरों हे मुख्य सं-बन्ध मानकर प्रवश्य ही उन मृत प्राणी के दुख मा-प्त्यर्थ फ़्रीर उन की सह्गत्वर्ध चघाशक्ति एवं पूर्छ यद्वासे मन्न-जलं मादिसे विधिप्वंक सत्कार (माद्व) करना चाहिये। श्रीर जब कि श्रित्मावे पुत्र नामा-षि॰] [सात्मावे जायते पुत्रः] इत्यादि श्रुति सीर [मर्भी भूत्वेह जायते] [भार्या पुत्रः स्वकातनः ०] इ-त्यादि स्मृतियों में पुत्र से पिता का अभेद एकता संबन्ध स्पष्ट दिखाया गया है तो फिर धिङ्कार है उन्हों को जो फूट रूप भेद डालते हुए भी यह क-हते रहते हैं कि हम ही माता पितादिके सच्चे से-बक और देश भक्त हैं। वाहरे सुपाध पुत्र ! और दे-श भक्तो !! क्या यह दलील देना तो नहीं चाहते हो कि पितादि ने युरे कर्म किये तो उन को अप-ने कर्मानुसार ईश्वरव्यवस्था से दु.ख मिलना नि-यत है तब पुत्र यदि उनको दुःख से खुड़ाना चाह-ता है तो ईश्वर की व्यवस्था नष्ट होगी, ईश्वर की इच्छासे विरुद्ध होगा। यदि तुम्हारी ऐसी दलील है तो जीवित माता पितागुर छादि की सेवा शुध्र-मा भी तुम लोगों को नहीं करनी चाहिये। छयों कि पिछले जनम के कर्मी का जैसा र शुभास्थ फल ई-

खर ने उनको देना नियत किया है उस ईप्खरीय व्यवस्था में बाधा डालने वाले तुम क्यों नहीं हुए? ऐसी दशामें जीवित माता पिता की सेवा भी तुम को छोड़ना क्यों नहीं पड़ेगी ? ॥ अर्थात् अवश्यही इस तुम्हारी दी हुई दलील से जीवित माता पितादि की सेवा गुत्रुपा छोड़ना पड़ेगी। तो फिर बताश्री कि छाप कैसे माता पितादिके सेवक और देश भ-क्त हुए ? ख़ौर क्या ख़पने मृत पितादिकों की मि-लिक्यत (धन माल) के मालिक होने के लिये तो ठीक २ उस मृतक पितादि से संबन्ध मानकर ज्ञप-ने को उसका हकदार वताओ परन्तु उस मृत पितादि के लिये ग्रास्त्र आचा में किंचित जल ग्रीर श्रम माच दान करनेमें बहाने ख़ौर खुतके करते हो? वाहरे कृतच सार्व्याभाषियो ! स्मृत्योष ! स्मीर ल-ज्जा !!! देखो तो गही कि सन्य धर्मी मुगलमान बादमाह माहजहां अपने पुत्र औरंगजेव से हि-न्दुओं की मातृ पितृ भक्ति की प्रशंका करते हुए तथा हिन्दुओं के प्रतिधन्यवाद देकर यह कहते हैं कि-"ए पिसर तो अजब मुसलमानी। जिन्दगांरा व आव तरसानी॥ आफरीं हिन्दुआंरा सदबार। मुर्द गांरा दिहन्द दाय में आव"॥॥॥ इत्यलम् त्रिद्वत्सु ॥ इति श्री ब्राह्म-पितृ मीमांशायां मृत संवन्ध निरूपणे तृतीयोऽध्यायः ॥

त्र्राय चतुर्योऽध्यायः॥

समाजी—श्री पिएडत जी महाराज ! श्रव मेरे हृदय के संदेह निवृत्त होते जाते हैं। श्रापने बहुत अच्छे ढंग से एवं धर्म श्रास्त्रोंके | प्रवल्त प्रमाणों से
मृतकों के साथ [श्रव्यात अपने मृत माता पितादि
रूप पितरों के सूरम शरीरों से] संबन्ध होना ठीक
र सिद्ध किया दसलिये में , श्राप को अनेक धन्यसाद देकर फिर प्रार्थना रूप में यह भी पूछना चाहता हूं कि कर्मानुसार उच्च नीच योनि में श्राप उन
हमारे मृत पितादि को श्राद्ध कर्म में दिया हुआ
पिएड-भोजनादि कैंसे पहुंचता है ? अथवा उन
को श्राद्ध भोजन पहुंचाने वाले वे कीन हैं जिन
सें द्वतनी श्रवीं किक सामर्थ्य है ?

सनातनी—महाश्वन ! ठीक आपने पूछा है
यह प्रश्न इस समय बहुधा समाजी कोग सरल सीधे
भोले सनातिनयों से पूंछकर फूले खंगों नहीं समाते, अर्थात् इस प्रश्न का पूरा ठीक २ उत्तर व समाधान न होने से कठीर हृदय वाले खं शास्त्रानभिज्ञ समाजी भाई उन विचारे आस्त्रिक एवं कोमल हृदय वाले सनातिनयों को त्रण भर में चवरा
देते हैं और अपनी जय भान बैठते हैं। अस्तु जो
हो॥ अब आप ध्यान देकर सुनो। जैसे गर्भिणी अबला स्व पुष्प करके दिये गर्भपोपणार्च अन आदि को भस्ण कर,स्वतः तृष्त हुई अपने उदर गत

गर्भ (वालक) को भी तृष्त करती है और गर्भपोपणोपयुक्त स्नन्न देने वाले को भी अत्युपकार रूप
पल से संयुक्त करती है स्वर्धात् उस पुरुष को भी
फल भागी करती है। तैसे ही ब्राद्ध के देवता जो बसु सद्ध स्वर्धतिमुतादि पितर हैं वह ब्राद्ध करके तृम
हुए स्वसंगत पितरों को भी तृष्त करते हैं खोर ब्राद्ध कर्ता को भी स्वर्गादि फल से संयुक्त करते हैं इस
सभिमाय से ही—

"देवान् वे पितॄन् प्रीतान्,म-नुष्याः पितरोऽनुप्रीयन्ते, तिस्र

नुष्याः पितरोऽनुप्रीयन्ते, तिस्र ग्राहृतीर्जुहोति,त्रिर्निदधाति,षट् संपद्यन्ते,, ॥॥

कृष्ण यजुञ्जारण्यक अपृश्र अध्याण्ड्अनुश्य। अर्थात् देवता रूप पितरों के तृष्त हीने के स्न-

नन्तर मनुष्य रूप पितर भी तृष्त हो जाते हैं, इसी से ही प्रथम देवना रूप पितरों के अर्थ तीन आहु-ति करनी चाहिये और फिर मृत मनुष्य रूप पि-तरों के अर्थ तीन पिषड देने चाहिये, इस प्रकार पट् ६ संपन्न होते हैं॥ नात्पर्य्य यह कि ब्राद्धके दे-

वता वज्ज ब्ह्रादि पितर ब्राह्म कर्म में— । निमन्नितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् । वायुवच्यानुगच्छन्ति तथाऽऽसीनानुपासते १८६

अध्या० ३॥ मनु०

निमंत्रित ब्राह्मणों के शरीर में प्रदूष्य वायुका-य सूद्रेग रूप से प्रवेश करके पिरुड एवं प्राह्मण भी-जनादि के तत्व # को ग्रहण कर स्वयं तृष्त होके

* शका--किस प्रकार वे ग्रिव्हेब श्राहु भोजन के तस्व को ग्रहेश करते हैं ?

समापान—यह भी हनारे लिये कुछ आधार्य जनक नहीं है क्योंकि जब हम पशु पित कीटों में परनेशवर प्र-दत्त अलीकिक सामध्यें को प्रत्यक्ष देख रहे हैं तो पितरोंके प्रति प्रदत्त अलीकिक सामध्यें हम को कैसे आधार्य जनक होगी।

अयांत — जैसे परमात्मा प्रदात अलीकिक शक्ति किशे प से इस्ती (हापी) कपित्य कल को भवण कर उस के अन्तर्गत सारांग को प्रहण कर किर लीद के संग यथाविष्यत (जैसे अर्गो था वैसाही सारा विना सवाया हुआ) उस फल को निकाल देता है। और जैसे मधुमक्खियां पुर्वों से सकरन्द पहण कर मधुरपमा करती हुई पुष्प के किसी अंग को हा सारांग कर सुगा कि की ही पहण कर लेती हैं। वा जैसे कलीका (जोंक) मित्रित रक्त में से विकत रक्त कर एकांग को पहण कर लेती हैं। वा जैसे कलाका (जोंक) मित्रित रक्त में से विकत रक्त कर एकांग को पहण कर लेती हैं। वा जैसे कलत का किसी अंग को भीन पटाता हुआ समर (भीरा) कमल गर्भ केशर मकरन्द का प्रहण कर लेता है। जैसे जल भिन्नित दुग्ध (सीर) में से इंस पदी। जैस को एयक् कर लेता है। और इसी प्रकार अगुली के स्वर्ण करने से लज्जावती लता (गर्म बूटी) में समुचित होने की शक्ति भी जान लेनी। और

जह लोहे में भी चुंबक के सिवधान से अलीकिक शक्ति जा-नती। इत्यादि पदि पदार्घों की विचित्र शक्तियों का नि- फिर उन मृत मन्द्य पितरों को भी तृष्त करते हैं जिन के निमित्त बाद्ध किया गया है। और अद करने वाले पुरवात्मा को भी यथा योग्य स्वर्गादि फल मदान करते हैं। इस अभिमाय को ठीक श्री-द्ध करने के लिये श्री योगीयाच्चवल्क्य मुनि जी ने भी खाचाराऽध्यायमें स्पष्ट दर्शाया है कि---

वसुरुद्राऽदितिसुताः पितरः श्राद्व देत्रताः । प्रीणयन्ति मनुष्याणांपितृन् श्राह्नेन तर्पिताः २६९ आयु: प्रजां घनं विद्यां स्वर्ग मीक्षं सुखानि च। प्रयच्छन्तितथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहा:२७० वसु तथा रुद्र एवं झदितिसुत, ये तीनों पितर जी श्राद्ध के देवता हैं वह श्राद्ध करके तृष्त हुए-मन्-व्यों के पितरों को भी तृप्त करते हैं ॥ ग्रीर ग्राह्म कर्ताके प्रतिभी आयु, प्रजा धन, विद्या, स्वर्ग, मीक्ष यथायोग्य सुख प्रदान करते हैं॥

एव शंतन्जीने भीष्मिपतामह जी के मित भी यही समाधान किया है कि---

आप्यायिताश्चते सर्वे पुनराप्यायन्ति ॥

(महाभारते)

क्षपण किया जाय तो एक यही वृहत्कथा होजाय, इसी थे इतने में ही सन्तुष्टहोना चाहिये। साराश मह है कि इस ही मकार परमातना प्रदृत्त अलौकिक शक्ति विशेष से पितर देयता भी त्राहीय पढार्थों के साराश (तत्य) की ग्रहणक-

रलेते हैं ॥ इति॥

भव देवता रूप पितर स्थम माप स्वयं तूच्त होकर फिर मन्य मनुष्य पितरों को तृष्त करते हैं।

विष्णधम्मीत्तर ॥

तया च---एते श्राद्वं सदा भुवत्वा पितन् संतर्पवन्त्युत । यत्र क्षचन धर्मज्ञा वर्तमोनान्हि घोगत: ॥

ये जो यसु चद्र स्रदितिसुत, श्राद्ध भोजन से तृ-प्त होकर फिर भृत पुरुपोंकों तृष्त करते हैं चाई वे मृत मनुष्य पितर किसी भी योनि में हों। क्योंकि वह धर्मज पिनृदेव योग वत कर स्रलोकिक सामर्थ्य से हर एक प्राणी को जानते हैं ॥ इत्यादि धर्मश्रा-

स्त्रोंक प्रमाणों वे स्पष्ट चिद्ध है कि हमारे मृत पितर क्ष-पने अच्छे वा बुरे कर्मानुसार चाहे वे किसी भी यो-नि में क्यों न हों तो भी उन्हों को वहां उसी ही यो-नि में पिनृदेवों के अलौकिक सामर्घ्य में पिएडभोज-नादि श्राद्धीय पदार्थ सूक्ष्म रूप में पहुंच जाते हैं। और जो श्री दशरथ * महाराजादि जैसे अत्यन्त उ-त्रम पुषय कर्मों के प्रभाव से देव पितर श्रादि उत्तम श्रीनियों में गये हुए हैं वे स्वयं अनिदेवकी, सहायतासे

बेद मंत्रों द्वारा प्राहूत होकर ग्राद्ध कम में निमंत्रि
• ग्रह ग्री द्यारय महाराजकी कथा आगे पंचन अ
• प्राय में स्पष्ट रूप में वर्णन की गयी है—जहां श्री जानको

की निमंत्रित मुनियों के देह में अपने श्यार द्यारयंजी
का दर्शन करके लिन्जत होकर दियगई थीं।

त ब्राह्मणों के देह में अदूबिय रूप से आकर पिगडमी-जनादि का तत्व (सारांग) ग्रहण करके तृष्त होजा-ते हैं। इस की सिद्धि में वेद का प्रमाण यह है कि-

येऽग्निद्ग्धा † येऽनिग्नद् ग्धा मध्येदिवः स्वध्या माद्य-न्ते । तेभिः स्वराडससुनीतिमे-तां यथावशं तन्वं कल्पयस्व, मंत्र १४॥

चेंग्वेद स्र० ६ वर् १८ मंगड० १० सन्० १ सू०१५ स्राप्त्र । । सु० यजुर संध्यार १८ मं ६० में ('स्रोगेन्-' ध्वात्तार) यह 'पद हैं ॥

ध्वात्ताः) यह 'पद हैं॥ प्रन्वयार्थः-ये (प्रान्तिदग्धाः) प्रमेशानिमा-ध्ताः' ये चं (प्रानिदिग्धाः) प्रमशानकृत्यरहितः

चे च (अनाननद्रश्वाः) यम्यानकृत्य(हितः चे च (दिवो) द्यु लोकस्य मध्ये स्वध्या (माद्यन्ते) तृष्ताश्वरन्ति, हे (स्वराट्) दीष्यमान अग्ने ! (तैः पितृभि) तेभ्यः पितृभ्य (असुनीतिम् (प्राणयुक्तां (स्नाम्) भक्षण योग्यां तन् (यथावश) यथा कामं स्व कल्पयस्य ।

्रं यहां पर जो लिश्चरण पद से जीवित वितरों का य-हणकरें तो उन महाश्रमों को श्रवश्य ही द्वितीय श्रप्याय में उक्त पद की सीमांसा देख कर श्रपना सन्देह निश्त कर् रूत स्पाहित्ये ॥

भाषा-हे स्वराट्-दीप्यमान अग्ने! (ये अग्नि-दग्धाः) जो हमारे पितर अग्नि में दग्ध हुए प्रमधान मंस्कार को प्राप्त हुए हैं और (येऽनग्निदग्धाः)जो प्रमधान संस्कार को [सन्यासी होने के कारण वा किसी अन्य कारण से] नहीं माप्त हुए हैं और (दि-वोमध्ये) अन्तरिक्ष लोक में वा स्वर्ग लोक में स्वधा मन्त्र संस्कृत अञ्चली प्राप्ति सेजो (मादयन्ते) तृप्त हो कर विचर रहे हैं (तें पितृभिः) तिन पितरीं के प्रति (असुनीतीम्) प्राणयुक्त (एताम्) हवि भक्षणके योग्यता वाली इच (तनू म्) देहकी करूपना करो जिससे (यथाकायम्) यथेष्ट यहां आकर हिव भक्षण करें। इस वेद्मन्त्र के सीचे र मावार्थसे स्पष्ट सिद्ध है कि स्वर्गीद उत्तम लोकों में जो अत्यन्त प्रयक्तमीं से गये हैं वे हमारे पितर अग्निदेव की -कृपा एव सहायतासे सूदम शोभन देह धारण करके यथेष्ट यहां हमारे पितृयज्ञ (श्राद्ध) में आकर हवि भक्षण करते हैं। इसलिये नीचे लिखे वेदमन्त्रों से परायक्षान् समर्थ पितरीं की यन्नमें यहां युनाने के लिये तथा मध्यम यानी माधारण पुणयकर्म से म-नुष्ययोनिर्मे प्राप्त एवं (निकृष्ट) पायकर्मानुसार पशुपक्षीस्रादि योनिमें प्राप्त स्रममर्थ पितरोंको व-हांही उसी गोनिमें तृप्त करनेके लिये वा उन्होंकी उच्चाति करने के लिये ग्राह्मकर्म में ग्रानिदेव की

प्रार्थना पूर्वक स्थापना करके उस मे छाहती दी

(qo)

जाती हैं अर्थात् अन्नीकरण (अन्यारी वा होस) कराया जाता है। सो यथा-

चुभन्तेस्त्वानिधीम**स्**भान्तुः

सिमधीमहि । जुश्तुंशत स्त्रावंह पितृन्ह् विष्े ग्रात्तवे ॥ ७०

ष्ट्रपाठ १८ ॥ ३० ॥ मन्त्रार्थ-(उग्रन्त: त्या निधीमहि) हे अग्ने!

तुम्हारी इच्छा करते हुए हम तुमको स्थापन करते हैं (उशन्तः समिधीमहि) यद्य की इच्छा से तुम को प्रव्वलित करते हैं (उद्यन्, उद्यतः पितृन्, ह-विषे, ग्रत्तवे, ग्रावह) चाहते हुए तुम, हवि चा-

हने वाले हमारे पितरों को इस यज्ञ में हवि भक्षण करने के लिये बलाजा ॥ ३० ॥ और-ये चेह पितरो येचनेह यां

पूर्च विद्य याँ शार्च चन प्रविद्य। त्वं वेत्य यतिते जातवेदः स्व-घार्भिय्य ज्ञथु सुरुतिञ्ज षस्व।६०॥

यजु० घर० १८ ॥ ६७ ॥ जो मेरे पितर इस लोक में हैं अर्थात साधा-रख पुरव वा निकृष्ट कर्मानुसार मनुष्य वा पशु पश्यादि योनि में प्राप्त होकर इस पृथ्वीलोक में रहते हैं। श्रीर जो पितर इस लोक में नहीं हैं श्र-र्षात श्रत्यन्त उत्तम पुरुष से स्वर्गादि उत्तम लोकों

र्थात् प्रत्यन्त उत्तम पुराय से स्वगे।दि उत्तम लोकों में हैं (च, यान्, विद्वः च, यान्, न, प्रविद्मः) फ़ीर जिन पितरोंको हम जानते हैं, तथा जिन को स्म-

रण न होने से नहीं जानते हैं, (जातवेदः, ते, य-ति, त्वम्, उ, वेत्य,) हे अग्ने ! वह पितर जितने हैं वे तुम हीं जानते हो (स्वधाभिः, सुकृतं, जुष-स्व) सो पितृयज्ञ द्वारा उन पितरों के तृष्त्यर्थ

स्व) सो पितृयज्ञ द्वारा उन पितरों के तृष्ट्यर्थ श्रेष्ठ अन्न को सेवन करो, ॥ ६० ॥ यहां "इह,, शब्द से जीते पितरों का ग्रहण महीं होता किन्तु जिन्हों ने कर्मवश्य इस लोक में देह धारण किया है अन्यशा "न "मविद्म,, इस

का गब्दार्थ नहीं घट सकता "विद्म, गब्द का ग्रार्थ ग्रह है कि जिनको में अपना पितर जानता हूं परन्तु कहां हैं यह नहीं जानता हूं अपवा जिन को जानता हूं बाप-दादे-परदादे, जिन को नहीं जानता इक्कीय पीड़ी तक यह तात्पर्य है ॥ तथा-

यमंग्ने कांव्यवाहन त्विन्न-यमंग्ने कांव्यवाहन त्विन्न-नमन्यसे र्यिम् । तन्नाः गीर्मिः श्र-वार्यन्देवत्रापनया युर्जम् ॥६४॥ भक्तुः अ० १८॥ ६४॥ ह वितरों को हथ्य पहुंवाने वाले अग्ने ! तुम

भी जिस हिव रूप अज्ञको उत्तम जानते हो (नः,

तं, गीर्भिः, श्रवाय्यं युजम्, देवत्रा, आपनय) इस लिये हमारे उस वषट्कार आदि वाणियों से तुनने योग्य उचित हिंव की पितृ देवताओं के मित सब स्रोरसे पहुंचाओ ॥ ६४॥

इत्यादि वेदमन्त्रों के लागय से स्पष्ट सिद्ध हैं कि अग्नि देवताभी स्वधारूप अन्नकी आहुतियोंको सूक्ष्मरूप से लोजा कर वहां पितरों के प्रति पहुंचा देता है।

चमाजी-पशिडत जी महाराज! यह भी तो सुनाओं कि जब यह किसी,को भी मालूम नहीं कि हमारे पितर स्वर्ग में गये वा नरक में तब उन्होंकी अब वस्तादि भेजना क्या बिना पते के पुरुष को डांक द्वारा वस्तु भेजने के तुल्य नहीं और ऐसी अन् क्या में उन को भेजने के लिये अब वस्त बाखणों के हवाले करना और फिर उन की रसीद का न पहुंचना क्या यह सन्देह पैदा नहीं करता कि न जाने यह माल भेजने वालोंने ही ला लिया हो! इस्लिये हमारे पितरों से माल पहुंचने की रसीद न मिलनेसे हमें विश्वास कैसे हो कि ठीक २ उन्हों को मिला!

मनातनी-महाशय जी! यह तो, में पहिले धास्त्र प्रमाणोंचे स्पष्ट सिद्ध करचुका हूं कि हमारे मृत पि-तर कर्मानुचार चाहे किसी भी उच्च, नीच, योनि में वा स्वयं नकीं ध्यों न गये हों तो भी पितृलोक के निधाता बद्ध-च्द्र-खदिति सुतादि पितृदेव एषं अग्नि देवता भी, अपने योगयलमे तथा अलीकिक सामर्थ्य से उन पितरों को जानकर वहां ही
उन्होंको तृप्त करते हुए सुखभागी करते हैं। वाकी
रही हम लोगोंको पूरा २ विश्वास हो जानेके लिये
उन्हों की "रमीद,,। मो यह भी ठीक नहीं क्योंकि
आद्धका मंकल्प करते ही समय रसीद लिखी जाती
है कि सृष्टिके आरम्भमे वैवस्वतादि अमुक २ मन्वनतर, चतुर्धुगी,युग, सवत्सर, तिथि, वार, मुहूर्त्तादि समयमें, अमुक देशमें, अमुक वर्ष, नाम गोत्रादि, वाला
में पुरुष या स्त्री अमुक २ गोत्रादि वाले ब्राह्मण को

न्तर, चतुर्षेगी,युग, सवत्सर, तिथि, वार, मुहूर्तादि समयमें, अमुक देशमें, अमुक वर्ण, नाम गोत्रादि, वाला
में पुरुष धा स्त्री अमुक २ गोत्रादि वाले ब्राह्मण की
अमुक २ पिता भातादि के निमित्त अमुक वस्तु धा
भोजन वस्त्रादि देता हूं। वहां उस समय बेठे सब मनुद्धों की साक्षी वा गवाही लिखी जाती हैं। और
देवता लोग भी उसमें साक्षी लिखे जाते हैं इसी विचार से मनुजी ने कहा है कि—
मन्य-तेविपायकृती नकश्चित्पश्यतीतिनः।
तांस्तुदेत्राः प्रयश्यन्ति स्वस्यैत्रान्तरपूरुषः॥
मनव कर्वा

पापी लोग मानते हैं कि यहां एकान्त में हम को पाप करते कोई नहीं देखता, परन्तु यह भूल है क्योंकि उन को देवता लोग और अन्तर्यामी ईप्सरे देखा करता है। जो देवादि पाप के गवाह होते हैं

देखा करता है। जो देबादि पाप के गवाह होते हैं बेही ब्राद्धादि पुष्यकर्म के भी गवाह हो जाते हैं। बह रबीद ख़ाकाशमण्डल रूप कागज में वाशीरूप स्पाही से तथा वायुरूप लेखनी से लिखी जाती है।

*

ब्द (राग) भर जाते हैं वैसे ही ब्राद्घादि के दान

की यह संकल्पात्मक रहीद महाकाश में भर जाती है इसीलिये पतञ्जल मुनि जी ने शब्दों का स्थान आकाश (आकाशदेश: शब्दः) को कहा है। आकाश के ही प्रदेशान्तर में स्वर्गीद किसी योनि में प्राद्धादि दान का सुख सन्तोष प्रसन्नतादि रूप फल जब पितरों को प्राप्त हो जाता है, तब यही पाने वाले के उस रहीद पर हस्ताक्षर होते हैं। श्रीर जब शाद्ध करते ही समय वा करचुकने पर मन वाणी शरीर में वा स्त्री पुत्रादि सब कुटुम्ब में सबंत्र कुश्वसा प्रसन्नता आनन्द मंगल दीख पड़े तब यही शाद्ध कल पाने की हस्ताक्षरी रसीद आगई मान लोग चाहिये अर्थात् जानो उसी आकाश म- एडलस्य रसीद पर दस्तवत हो आये। श्रीर यदि अप्रसन्नता अमंगलादि प्रतीत हों तो मानलो कि स-

स्त्रमर्यादा से विरुद्ध करना रूप अपराध दोनों वा किसी एक का हो सकता है उस दशामें केवल ब्रा-अप का ही अपराध मान लेना भी इंकतर्फी डिग-रो कर देना है। अभिमाय यह है कि रसीद नाम विख्यास हो जाने का है—यदि विदेश से आई रसीद पर भी विश्वास न हो तो वा सन्देद हो जाय कि अन्य कैसे हस्ताक्षर अन्य भी बना सकता है और किर पबद्वारा पूळने पर भी उसी की छोर से लिख

फल नहीं हुआ और रसीद पर दस्तखत नहीं किये तय यजमान तथा ब्राह्मादि भोक्ता ब्राह्मण का धा- सकता है कि हां मुक्ते क् मिलगये तब विश्वास न हो तो यहां की रमीद भी रही जानो ख़ीर ग्रब्दम-माण केंपं वेदादि शास्त्री पर जिनका खटल विश्वास है उन को संदिग्धात्मक रसीद की अपेक्षा (इच्छा वा जरूरत) ही नहीं है। यदि किसी ऐसे निकट-वर्ती ख़यवा परम मिंच द्वारा कोई वस्तु समाजो मनुष्य अपने जीवित पिता के पास भेजें कि जिस का सर्वींग में पूरा २ विंखास हो तो वहां समाजी कदापि रहीद नहीं मांगेगा और मांगे तो जानो उस चक्रवा परम मित्र का पूरा २ विश्वास नहीं तव वह चक वा बनावटी भी रशीद पेश कर सकता है। स-'न्तमें जबतक विश्वास न करो सभी रसीद आदि रही हैं जब विश्वास हुड़ होगया तब रसीद की आवश्य-कता सनातनधर्मियों को नहीं है। और सर्वशुद्ध स-नातन धर्मावलम्बियों को वेदादि धास्त्रों पर दृढ विश्वास है कि इस निम्नदर्शित वेदमन्त्र में अग्नि-देवने हमारे पितरींको श्राद्वान पहुंचाया । श्रीर इसी ही बेदमन्त्र को हमारे पितरों की तरफ से ईश्वर द्वारा आई हुई बच्ची रसीद समकते हैं और वह भी विश्वास करते हैं कि श्राद्ध करने से हमारे पितरों की तृष्ति, तथा नि:सन्देह सद्गति होती है। श्रीर ग्राद्ध करने वाले हम लोगों को भी यथायोग्य धन पुत्र-स्वर्गादि मुख प्राप्त होता है--यथा सञ्ची र-भीद रूप वेदमन्त्र-

त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवा-

ड्ढव्यानि सुरभीणि क्तत्वी, प्रादाः पित्रभ्यः स्वध्या ते त्रक्षन्निद्धि त्वं देव-प्रयता ह्वींषि,,।

भार प्रार्थ है यह १९ मरहर १० मनु १ मूर १५ महा उमेर १ शुक्रपणुर प्रारं १९ मर ६६॥ क्षर प्रमुख कार मारह धनुर १२ मंद्र ॥

श्रम्बयार्थ:-हे गग्ने ! त्वमस्माभिः (ईडितः) स्तुत हव्यानि श्रस्मदीयानि सुगन्धीनि कृत्वा (स्र-

वाट्) अवाक्षीत् प्राप्तवानिं जड्ह्वा च (स्वधवा) पितृमंत्रेण पितृभ्यः (प्रादाः) दत्तवानिं ते च पि-तरस्तद् हवि (अक्षन्) भक्षितवन्तः, हे जोतवेदस्त्व-

तरस्तद् हाव (ग्रज्ञन्) भाक्षतवन्तः, ह जातवदस्त मपि (प्रयता) पवित्राणि हवीषि (श्रद्धि) भक्षय ।

भाषा—हे अग्ने ! हम करके स्तुत हुवे (त्वम्) आप हमारे दिये हुए हव्य को सुगन्धित कर हवन

द्वारा स्वीकार किया, ग्रौर स्वीकार कर फिर (स्वध-या) पितृप्रिय स्वधा इस मंत्र से हमारे पितरों के प्र-

ति मदान किया है मत आप करके दिया हुआ को हिंच है उप हिंच को (ते) वे हमारे पितर मक्तण क-रते हैं । हे (जातवेद.) दिव्यमकाशस्त्रकप अग्ने! (त्व-

रते हैं । हे (जातवेद.) दिव्यमकाशस्त्रक्रप अग्ने! (त्व-म्) आप भी इन शुद्ध हिवगें को भक्षण करो और-

"उदीरतामवर उत्परास उन्म-ध्यमाः पितरः सोम्यासः । ऋसुं

यईयुरवका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ गुर्वेद वाजवने० ४०१८ गं० ४८॥

अन्वयार्थः — अवरेऽास्मन् भूलोकेऽवस्थिताः पितर उदीरतामूर्ध्वं लोकं गच्छन्तु । मध्यमा मध्यमस्था अन्तरिक्षस्थाः पितरः उदीरतां परासः परलोकेशुलोकेऽवस्थिता देवत्वं प्राप्ताः पितरः उदीरतां परासः परलोकेशुलोकेऽवस्थिता देवत्वं प्राप्ताः पितरः उदीरतां तताऽ प्यूध्वं ब्रह्मलोकादिषु गच्छन्तु । कीट्ट्रशाः पितरः सोम्यासः शान्तिशीलाः सोमपानाहां वो। ये च असुमीयुर्वायुक्षपं प्राप्ताः वायुकायाः 'सूक्ष्मादृश्याः स्थूलविग्रहाः । अवृकाः शत्रुभावरहिताः समद्शिनः ऋतज्ञाः सत्यज्ञा यज्ञ्जावा स्वाध्यायितष्ठा वाते नेऽस्मान्हवेषु आहूनोषु अवन्तु रक्षन्तु इति प्रार्थयामः॥

भाषा-(अवरे) इस भूलोक में रहने वाले पि-तर लोग (उदीरताम्) जपरी स्वर्गलोक को प्राप्त हों (सोम्यामः) शान्तिशील चन्द्रलोक वासी वा यज्ञों में सोमपान करने वाले (मध्यमाः) मध्य-अन्तरिक्ष लोकस्य पितर (उदीरताम्) जध्वगित को प्राप्त हो और (परामः, उत्) * स्वर्गलोकस्य

^{*} स्त्रगांदि लोको मे रहने वाले पितरोका गरीर वा-युकाय सूक्ष्म अहश्य होता है यह बात उपरोक्त "असुं य हेयुः" इस वेद वाक्याय से स्पष्ट सिंह है कि जिन्होंने के-वल प्राणमात्र को ही भारण किया है। यहां स्पूल गरीर का स्पष्ट निर्पेष है।

पितर उससे भी ऊपर महलेंकि।दि को प्राप्त हों-वे पितर कैंसे हैं कि (असं य ईयुः) जिन्होंने आ-णमात्र को धारण किया है अर्थात् वायुकाय मूक्स प्रदृश्य ग्ररीर वाले स्यूल मनुष्यादि कासा ग्ररीर जिन का नहीं है। (अधृकाः) जिन का कीई शब नहीं (चतचाः) जो सत्य की वा यच की जानने वाले हैं (ते, पितरः) वे पितर लोग (नः) ह-मारी (हवेषु) श्राद्धादि में आवाहनके समय (अ-बन्तु) रक्षा कर यह हमारी पार्थना है ॥ प्रिय महाश्रय जी ! इन दो मन्त्रों से स्पष्ट सिद्ध है कि अग्नि देवता श्राद्ध कर्म में निमन्त्रित ब्राह्मणोंके मन्त्रोञ्चारणचे दी हुई पितरों के निमित्त आहतियों को हमारे पितरों के प्रति वहां पहुंचाके आया, और उन हमारे पितरों की क्रमपूर्वक जपर स्वर्गादि लोकों में गति होना एवं स्वर्गीद लोकों

में रहने वाले हमारे सामर्थ्यवान् पितर श्राद्ध से तृप्त हो कर हमारी रक्षा करना इत्यादि सब बातों का विश्वास कराने वाली सञ्ची साक्षीरूप "रवीद" जव हम को परव्रह्म द्वारा वेदादि शास्त्रों में लिखी मिली है तब हम को संसारी कागज़ी रसीद की कौनसी आवश्यकता है अर्थात् संसारी कागज़ से रसीद की कौनसी आवश्यकता है अर्थात् संसारी कागज़ से रसीद की उन नास्तिकों को आवश्य-

कता है कि जिन्होंका हमारे वेदादि धर्मशास्त्रों पर विश्वास नहीं। इस लिये कहा है कि "नास्तिको वेदनिन्दकः" जिन्हों का वेदशास्त्रों पर विश्वास नहीं अर्थात् जो बेद की निन्दा करते हैं बेही मनुष्य नास्तिक कहाते हैं इसलिये हम लोगोंको चाहिये कि बेद से दिखामे गये गुद्ध ग्राद्ध को विधिपूर्वक करके अपने मृत पितरोंकी सद्गति करें और
बेद की आज्ञाको पालन करके अपने हिन्दू मनु
प्यत्व को सार्थक करें यही मेरी प्रार्थना है ॥
समाजी-श्री पण्डित जी महाराज । यह तो

प्यत्त्व को सार्थक करें यही मेरी प्रार्थना है ॥
समाजी-श्री पिष्टत जी महाराज ! यह तो
बहुत अच्छी न्यायरूप सत्य दलील एवं वेद मन्त्रों
के प्रवल प्रमाण से ठीक रिवध्वास दायक "रसीद"
दिखलाई। अब मुक्ते दूढ विख्यास हुआ लेकिन एक

बात और पूछने की है सो यह कि मृतप्राशी अपने किये पाप-पुष्य कर्मों के अनुसार यदि वह पशु, पत्ती वा यस, रासस, पियाच अयवा देवता होजाय तो किर श्राद्धकर्म में हमारा दिया हुआ कीर, घी, हलुआ, लड्डू, पक्रवान कर्योड़ी वगैरः पदार्थ उन्हों को केंसे देहानुकूल कविकर (भिय) होंगे? अर्थात् पशुओं को घास, मिरुओं को मांस, रासस-पि-शाचों को चिपर और सांस एवं देवताओं को अमृत वगैरः जब अपने २ शरीरों के अनुकूल भिय हैं तब हमारे दिये हुए उक्त लड्डू कर्योड़ी आदि पूरी पक्रवानों से उन्हों की कैंसे रिचपूर्वक तृष्ति होगी?

श्रयात् मेरा दिया हुआ वव उन्होंके मितकूल होने में वृया हो जायगा?॥ सनातनी—महाश्रय जी! घबराश्री मत कुळ अपनी भी श्रक्क का बुद्धि काममें लाश्री केवल मक्र करने ही पर सवार न हो जाओ ? महाग्रय जी सुनी जब कि हमारी खंडोज सरकार के राज्यमें भी ऐसा अन्धेर नहीं है कि जब हम लोग, जर्मन-फ्रान्स वा जापान, रिष्या वगैर: विलायतों में गये हुए अपने मित्र को यदि कुछ हपया भेज देना चोहें तो क्या

गेही हमारे एक तीलेके वजन वाले विक्टोरिया बा एडवर्ड अथवा शहनशाह जार्ज दी फिज्ब के मु-हर (प्रतिमा) वाले रुपये वा नोट वगैरह जो यहां पोस्ट आफिस में मनीआर्डर करके दिये जाते हैं वो क्या वहां उक्त विलायतों में भी हुबहू उसही

मुद्रर वाले रुपये वा उस ही नम्बर वाले नोट ह-

मारे मित्रको मिलेंगे वा उक्त रुपये गीट वहां अन्य बादशाहत होनेके कारण उपयोगी हो सकेंगे? नहीं कदापि नहीं। क्योंकि जैसा २देश और जैसी २ राज्य-सत्तां होती है उस के ही अनुकूस रवाज व हुक्म मूजिब उसी ही सिक्के व मुहर के गिनी वा पाउ-न्ड बगैरह रूपमें हमारे मित्रको मिल जायंगे और उपयोगी भी वन सकेंगे तो इसी ही रीति से पर-

ब्रह्म के अरुत राज्य में पितृत्योक के फरिएएतर वस्तादि पितर यहां थाद्धमें पोस्टमास्टर रूप ब्रा-खणों के मार्फत हमारे पितरों के निमित्त दिये हुए लड्डू-पूरी-कचौरी वगैरह ब्राद्धीय पदार्थ के सा-रांग्र को ग्रहण करके हमारे मृतपितरोंके मित चाहे वे किसी भी योनि में पणु, पत्नी, राज्ञस, देवतादि क्यों न हुए हों तो उसी ही योन्यन्तर्गत देहके अ-नुकूल करके दे देते हैं। इचलिये हमारे (स्नाप्त) यानी पूर्ण धर्मात्मा पूर्ण विद्वान् ऋषि-मुनियों ने कलिकाल में नास्तिकों द्वारा उठने वाले रेसे नि-कम्मे खोटे २ सवालोंको निर्मूल करनेके लिये छीर **आस्तिक जनों को ज्यादा २ सन्तोय या विश्वास** दिलाने के लिये महाभारतादि धर्म इतिहासों में स्पष्ट करके लिखदिये हैं कि देवीयदिपिताजातः शुभकर्मानुयोगतः। तस्यात्रममृतंमूत्वा देवत्वेऽप्यूनुगच्छति ॥१॥

गान्धर्वभोग्यरूपेण पशुत्वेचतुणंभवेत्। **श्राह्मत्रवायुरूपेण नागत्वे**प्यनुगच्छति ॥२॥ पानं मवतियक्षत्वे राक्ष्मस्वेतपारमिपम्। दानवत्वेतथामांसं प्रेतत्वेरुधिरोदकम् ॥३॥ मनुष्यत्वेऽस्रपानादि नानामोगरसोमवेत् ॥ महाभारत स्त्रीदेवल मुनीपवर के बचन ॥ अर्थात् यदि मनुष्य गुभकर्मानुसार मरकर

देवता बनेगा तो उस को वह याद्ध का अन्न अमृत क्ष में-प्राप्त होता है, एवं गन्धवं जाति में भी-ग्य रूप से, पशुयोनि में (तृण) घास रूप से, नाग-

योनि में वायुक्ष मे, यसपोनि में मदिरा रूप मे, राक्षमयोनि मॅ-जामिष रूपमे, दानवयोनिमें मांम रूप से, प्रेतयोनि में विधर रूपसे ख़ीर मनुष्ययोनि में अन्न पानादि रूपसेवह श्राद्धान प्राप्त होता है। इसलिये हम लोगों का जो सात्त्विक गुद्ध पवित्र श्रम्भ घृत-दुग्धादि प्रिय पदार्थ हैं वे ही श्राद्धकर्त में मुपात्र ब्राह्मशों के मार्फत मृतपितरों के निमित्त देना चाहिये दशलिये—शास्त्र में कहा है कि—

'यद्राः पुरुषो भवति तद्ग्रास्तस्य देवताः, - अर्थात् जिस पुरुषकी जो स्वाभाविक अयुराक है वही देव-

ताओं के प्रति भी अपंग करे ॥
तास्पर्म यह है कि इस मनुष्यमात्र की शुद्ध सात्विक अज्ञ, घृत, दुग्ध, फल फूलादि खुराकरे ही

ब्राह्मिद शुभ कमीं में पितृ-देवों की पूजा करनी चाहिये और उस हमारे दिये हुए पदार्थों को सूदम रूप में लेजा कर पितृदेव हमारे पितरोंके प्रति य-यादेहानुकूल करके तृष्त करते हैं और हम लोगों को भी खाशीर्वाद देकर आनन्द सुखका भागी क-रते हैं ॥ ॐ तस्वदिति शम् ॥

इति स्री स्नाहिपितमीमांसायां मृतिपत्तभ्यो भोजन–प्राप्त्यर्थ शास्त्रोक्त मार्गप्रद्-र्शने चतुर्योऽध्यायः॥

* हम मनुष्यमामकी स्वाभाविक यही स्रक्ष-पृत-दुाध -फल फूलादि सात्विक शुद्ध पवित्र सुराक है। स्रीर यह म समक्षना चाहिये कि -जो मासाहारी मनुष्य हैं वे मांस ब-गरह देवतास्रोके स्रत स्रपंक करें -नहीं नहीं, कदावि नहीं!!

हम मतुष्यमात्र की स्थाभाविक बुराक मास वगैरह कदािय महीं है देखो मेरा बनाया हुआ "मांसमत्तवनिषेय" नामक देक्ट कि जिस में सूब विचार पूर्वक यह सिंह किया गवा है कि मतुष्यमात्र की स्थामाविक सुराक स्नन्त है ॥

्रत्रय पञ्चमोऽध्यायः ।

समोजी--श्रीपिएडत जी महाराज! अब कृपा करके यह बताओं कि पितृकोक इस मनुष्यलोक से भिन्न कोई अन्य लोक है क्या और वह कहां स्थित है! तथा उस लोक के अधिष्ठातृपितृदेशिका शरीर कैंसा है और उनका राजा कीन है! तथा है म-हाराज! द्यापाल! यह भी बताइये कि हम मनुष्य मात्र को इन पितृकोक निवासी पितृदेशों के पूजन सत्कार (श्राद्ध-तर्पण) करने की क्या आवश्यकता है! सर्थात्र थाद्ध तर्पण न करने से क्या कोई दोष वा हानि है!

शनातनी-महाशय जी ! वे आप के प्रश्न यथा-र्थ और ठीक २ हैं। अब आप श्रद्धापूर्वक क्रमशे इन प्रश्नों का वेदादि सच्छास्त्रप्रमाणों से एवं प्रवल यु-क्तियुक्त समाधान श्रयण करो॥

यथा—प्रथम स्नाप का प्रश्न यह है कि पितृ-लोक मनुष्यलोक से भिन्न कोई स्नन्यलोक है स्नीर बह कहां है ! सो हे महाशय जी देखी शतपम ब्राठ बेद में स्पष्टकप से दिखलाया गया है कि-पितृ-लोक एक स्वतन्त्र लोक है। जैसे कि---

अथ त्रयोगावल्डीका मनुष्यलोक: पितः लोको देवलीक इति । शत्व झा० ९२ । ३ । २२ ॥ प्रचति तीन भोग भूमियें हैं—मनुष्यलोक, पि- तृलोक फ्रीर देवलोक। इनमें जीव कर्मानुसार मा-प्त होता है। फ्रीर केवल निषिद्ध कर्मों का कर्ता जीव नरक को ही प्राप्त होता है। इससे सिद्ध हुआ।

जीव नरक को ही प्राप्त होता है। इससे सिद्ध हुआ कि पितृलोक, मनुष्य और देवलोकों से जुदा एक स्वतन्त्र लोक है। तथा च—

"दक्षिणाप्रवणोवै पित्रलोकः" यतः झाः १३१ वाशः॥ "कर्मणापितृलोकः" वृहदारण्यकः।

दक्षिण दिशामें पितृलोक है। शुभकर्मी करके पितृलोक में वास होता है। यथा—

तेवाएन आहुतीहुते उतकामतस्ते अन्त-

रिक्षमाविश्वतस्ते अन्तरिक्षमेवाहवनीयं कुर्वाते इत्यादि॥ शतपथ ब्रा० ११।६।२।६॥ तथा—अथ ये यज्ञेन द्विन तपसालीकं जयन्ति ते यूममभिसमर्चनितं, यूमाद्वात्रं रात्रेपक्षीय-माण प्रवापस्यात्यात् प्रणासानदक्षिणादिः

ते घूममभिसमर्चन्ति, घूमाद्रात्रि रात्रेपक्षीय-माण पक्षमपरपक्षान्यान् पण्मासानदक्षिणादि-त्य एति मासेभ्यः पितृष्ठोकमित्यादि ॥ शतपथ-प्रवात्–मरण समयमें इस माणीकी तीन गति

स्रवीत्-मरण समयमें इस प्राणीकी तीन गति होती हैं, देवलोक पितृलोक, स्रधोलोक, उसमें पि-तृलोक का गमन कहते हैं कि-यज्ञ दानादि कर्म करने वाले मनुष्य धूप से राजि में कृष्णपत्त, उस से दिस्तिणायन स्रोर वहां से पितृलोक को गमन करते हैं। स्रोर जो सत्कर्मा नहीं वे कीटादि गोनि को प्राप्त होते हैं। इस से स्पष्ट सिद्ध हुसा कि पितृ-

यज्ञादि शुभ कर्म करने वाले पित्लोकादि उत्तम लोकोंमें जाते हैं। ग्रीर पितलोक एक स्वतन्त्र चि-रकाल आनन्दप्रद लोक है। यथा-

(स एक: पितृणां चिरहोकलोकानामानन्द:०) तैतिरीयोपनिषद् ॥

सो यह पितृलोक (विधूर्ध्वभागे पितरी वसन्ति) [सिद्धान्ति श्रिरोमणी]

चन्द्रलोक के भी जपर है जहां पितरींका नि-वास है। तथा-

उदन्वतीचो रवमापीलुमतीति मध्यमा । तृतीया ह प्रद्योरिति

यस्यां पितरत्रासते।

अधर्व वेद कां० १८ अन्० २ मं०॥ ४८॥ इस मन्त्रका सम्पूर्ण भावार्थ आगे द्वितीय श-ध्याय में स्पष्ट करदिया है वहां ध्यान देकर पहें ने तो अच्छी तरह चान होगा कि "प्रद्यी" नाम वाले माकाश के तीसरे भाग में पितृ लोक है जहां पितर देव रहते हैं॥

अब आपका द्वितीय मन्न है कि पित्लोक चि-वासी पितरीं का ग्ररीर कैंसा होता है और उन्हों का राजा कीन है?

सो है महाशय जी ! इन पितृलोक निवासियों का प्रारीर वायुत्तत्व प्रधान है। यथा-

त्र्राप्यतेजसवायव्यानि लो-

कान्तरे श्रारी हा शा । अपर्वत् ३।१।२।२॥
स्मर्थात्—जलतत्व, तेजतत्व सम्यवा वायुतत्वमधान श्रारे वनकर, जीव लोकान्तरों को जाता है।
पार्धिवतत्व (पाञ्चभौतिक पृधिवीतत्वप्रधान स्यूल)
श्रारे से नहीं जाता। है। इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि
जीव वायु ख़ादि तत्वप्रधान श्रारे धारण करक्षे पितृ ख़ादि लोकान्तरों में जाता है इससे वहां
के निवासियों का श्रारि सम्बद्धा ही बाय ख़ादि तत्व

के निवासियों का शरीर अवश्य ही वायु आदि तत्व प्रधान है। अर्थात् वायु कायरूप वे पितर हैं। और वायु इन चर्म चसु यानी सांसारिक नेश्रों से देखने में नहीं आता है इसलिये ये पितर वायुतत्वप्रधान सू-हम शरीरधारी होने से हरएक मनुष्य को देखने में नहीं आते हैं इसलिये येदमें स्पष्ट दरशाया है कि-

तिरइववे पितरी मनुष्येभ्यः ०- यतपथ० २ १ १ । ४ । २१॥

सूक्ष्म होने के कारण वा ययेच्छाचारी होनेके
कारण पितर मनुष्यों से खदुश्य छिपे से होते हैं।
इमु से सिद्ध हुआ कि जो सूक्ष्म अदृश्य हैं जो सर्व
साधारण मनुष्यों के दृष्टिगोचर नहीं होते वे पितर

भवांच ही सूदम गरीरी वायुकायरूप होने से प्रादृ-हैं परन्तु पूर्ण गुद्ध-पूर्ण ग्रद्धा भक्तियुक्त, पूर्णध-

े भास्तिक मनुष्यको ये पितर सान

सात भी दीख पड़ते हैं और दर्शन * देते हैं। इस लिये उक्त श्रुति में "इव" शब्द कहा है। यही वा-युकाय सूक्त देहधारी पितृदेव श्राद्धकर्ममें आवाहन मन्त्रों से [तत् पितृलोकाडजीवलोकं अभ्यायन्ति] शृत्येण श्रा० ७ कां १३ म० ४ कं० ६॥

* एकवार श्रीमयुंद्रापुरुषोत्तम (परमात्मा के पूर्वावतार) श्रीरामयन्द्रजी महाराज ने बन में पिता श्री दशराज जीका एकोहिए, श्राह किया - यह कथा बही मनोहर है - श्राह समय में श्राहमोक्ता मुनियों के देह में श्रीजानकी जी (सीताजी) ने अपने ख्युर दशरथजीके दर्शन किये।
श्री वाल्मीकीयरामायको --

मपास्रचितित्रस्ये कालेकुतुपकेतथा ।
आयाताश्रवपस्कर्वे ये रामेश निमन्त्रिताः ॥ १ ॥
सानागतान्युगीन्द्रृष्ट्रा वेदेहीलनकात्मका ।
अपासर्पत्ततोदूरे विप्राशां मध्यतःस्थिता ॥ २ ॥
अन्यत्र च गुतासाध्वी सन्येषाहंत्रपान्विता ।
किन्ताबद्गीलयेविष्रान् सीतामन्वेषयानिकम् ॥ ३ ॥

गतेयुद्धिममुख्येयु प्रियांरामो व्रवीदिदम् ।
किमयेस्य नप्टासि सुनीन्द्रपृ समागतान् ॥ ४ ॥
एवमुक्तातदाभर्त्रा त्रपयापोसुखीतथा ।
मुझ्नतीचात्रुमङ्कातं राघवं वाक्यमञ्जवीत् ॥ ५ ॥
दितातवमयादृष्टी व्राष्ट्राक्षाङ्गेयु राघव ! ।
प्रमुत्रपनिवतावाहमयकान्तातवान्तिकात् ॥ ६ ॥
याद्यराचापुराष्ट्रश सर्वालङ्कारम्पिता ।
सा स्वेदगलदिग्पाङ्गी कर्षं पश्यामि मुनिपम् ॥ ७ ॥

स्वहस्तेन कर्ष राश्चे वानेषं भोजनं त्विदम् । दासानामिषपद्दामा नोषमुञ्जन्ति कहिंचित्॥ ६॥

पित्लोक से जीवलोक अर्थात् मनुष्यलोक में माते हैं। इसलिये वेदमें माचा है कि-

भावार्य-कृतुपकाल (अपराह्म) में जब श्रीरामचन्द्र जी श्राहु करने लगे तो जिन २ ऋषियों की निमन्त्रण दे

त्राये ये वह सब मुनिमगहली जागयी, उन्हें जाता <u>ह</u>जा देखकर जानकी जी उठकर भागगई खीर दूर जाकर लता

पताओं में अपने की द्विपालिया। तब श्रीरपुनाथ जी की

बहा आद्यर्य हुआ कि आज जानकी जीने मुनियों से क्यों परदा किया। श्रव मुक्ते क्या कर्त्तं व है, जानकी को ढूंढूं या मुनियोंको भोजन कराऊं। श्रन्त में यही स्थिर किया कि श्राहुकाल का लोप न होवे। विगडदान करके ब्रह्मभोज पूर्ण

किया-आशीर्वाद देती हुई सब ऋषिमग्रहली घलीगई । उन सव के विदा होते ही जानकी जी आगर्यों, तब श्रीराम-चन्द्र जी कहने लगे कि है प्रिये। तुम कहां गई घीं तुमने ऋषियोंका बड़ा अनाद्र किया और न उनकी प्रताम किया

इतना जनकर लज्जायमान जानकी नीचेकी मुखकर रीती हुईं वोली कि हे नाय ! ब्राह्मणोके खहु में महाराज श्री दश-र्घजीको देखकर मैं लज्जावश हो लता श्रोमें जा छिपी क्योंकि

जिन स्वतुर जी ने सर्व अलंकारों से भूषित सुके देखा था ज्याज उन के सामने जटा और वल्कल धारण करे कैसे इस चेष को दिखाऊं गी इसी से उस समय छिप जाना ही उ-त्तम था। दूसरा-यह (वानेय) बनका भोजन अपने हाथ से कैसे परोसंगी-जिन महाराजको पूर्व पट्रस परोसती थी इस क्यारे सिद्ध होता है कि श्राद्धभीका ब्राह्मकोके साथ पितर मूक्तकप में आते हैं शीर श्रीसती जानकी जी जैसी पूर्व पतिव्रतार्ये या पूर्व धर्मात्मा ननुष्य ही उन पितरोक्षे र्शान पा सकते है।

डभे दिशावन्तरे विद्धाति प्राचीं च दक्षि-णां चैतस्यार्थः ह दिशि पितृलोकस्य द्वारं द्वारे-वैनं पितृलोकं प्रपादयति ॥ शतपष्ट त्राट १३।४। ४।॥॥॥

ग्राम नगरादि से पूर्व और दक्षिण दिशा के बीच आग्नेयकीण में चतुष्कीण वेदी (प्रमथान म-न्दिर) बनावे, क्योंकि इसी आग्नेय दिशामें पितृ-लोक का द्वार है। ऐसा प्रमशान बनाने वाले अपने

लाक का द्वार है। एसा प्रमान बनान बाल अपन मृतक को द्वार के मार्ग से पित्लोक को पहुंचाते हैं।

इत्यादि में स्पष्ट विदित हुआ कि पितृलोक एक स्वतन्त्र लोक है और वह दक्षिण में है—उनका द्वार आग्नेयकोण में में हैं। वहां अत्यन्त पुण्यवान् जीव जा ककते हैं तथा उन के निवासी पितृदेवोंका श-रीर वामुकाय रूप सूस्म है। पूर्णपर्मात्मा—श्रद्धायुक्त सत्यवादी मनुष्योंको ही उन पितृदेवोंका दर्णन होता है। स्त्रीर वे ही वेदके आवाहन मन्त्रों में निमन्त्रित ब्राह्मणों के शरीर में अद्रथ रूप से यहां श्राद्ध कर्ममें

आते हैं। परन्तु दिव्य चंत्रु वाले ही उनका दर्शन कर सकते हैं। इति॥ हे महाशय जी! श्रव आप यह भी सुनी कि उन पितदेवों का राजा (स्वासी-श्रविष्ठाता)

उन पितृद्वा का राजा (स्वास

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये० । पशुर्वेद वाजधनेप ऋ० १८ मं० ४५ ॥

पितृलोक का राजा यमराज है। ग्रर्थात् जो जाति तथा रूपादि करके तुल्य एकमे अन्तः करणों वाले पितर यम देवता के राज्यमें रहते हैं। तथा-

यो मनार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रयाय प्रथमो लोकमेतम् । वै-

वस्वतं संगमनं जनानां यमं रा-

जानं इविषा सपर्यंत॥ प्रयर्वे । कां० १८ । प्रान्० ३ मं० १३ ॥

अर्थ-मृष्टिके आरम्भ में जो मनुष्यों के बीच सबसे पहिले मरता है, और मरणानन्तर जो इस पि-तृलोक में पहिले जाता है पीखे ग्रन्य मनुष्य मर २

के जिस के अधिकार में जाया करते हैं इस कारण यह जनों का "संगमन" कहाता है [सम्यग्गच्छन्ति जना यस्मिन् यत्स्विधी स सङ्गमनस्तम्] उस वि-

वस्वान् के पुत्र "यमराज" का हे मनुष्यी ! हविर् यज्ञ द्वारा पुजन करो। जैसे पितर सनातन हैं श्र-र्यात् मनुष्योंके समान योड़े २ कालमें उन का जनम मरण नहीं होता वैधे पितरों का वा मरर्कर पुण्य-

कर्मों से पितृलोक में जाने वालों का राजा यम भी

पितृलोकमें जाने पद्यात् श्रस्मदादि की श्रपेक्षा स-नातन कहाते हैं। कभी जिन का नाग्र न ही ऐसे तो यायु जादि सूदम तत्व भी नहीं हैं क्योंकि प्रलय के समय वे भी नहीं रहते इंस से सापेक्ष नित्य वा स-नातन सूदमतत्वों के तुल्य पितर भी हैं। जैसे मनुष्य का ग्ररीर पृथिवी तत्वमधान है और स्यूल है वैसे पित्लोक के राजा यम का और पितरों का ग्ररीर

वायुतत्वप्रधान सूदम है। जैसे मनुष्यदेहों का ग्रधि-ष्ठाता एक २ जीवात्मा होता है वैसे पितृदेहों के साथ भी एक २ ग्रधिष्ठाता जीव है। इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि पितृतोक का राजा, यसराज है। उक्तञ्च—

त्रप्रेमंजीवा त्र्यस्थन् ग्रहेभ्य-स्तं निर्वहत परिग्रामादितः। स-त्युर्थमस्यासीद्दूतः प्रचेता त्र्रसून्

पितस्यो गमयाञ्चकार ॥ अयर्थः कार १६ । २। २०॥

अ०-हे जीवाजीवित जना इमं मृतं देहं
गृहेभ्यः एथगपारुधन् निस्सारयत तमितो ग्रा-मात्परि-बहिनिवंहत नयत । प्रचेताः प्रकृष्ट्यु-द्विर्मृत्युर्यमस्य दूत आसीदस्ति समृतस्यासून् पित्रभ्यः पित्रभावाय गमयोञ्जकार गमयति व-र्त्तमाने लङ्खिटौ॥

त्तमान ७७,००० । भावार्घः ठ∼हे जीवित पुरुषो ! इस मरेहुए मुर्दा ग्रारीर को घराँसे बाहर निकालो और उस को इस याम से वाहर ले जाओ । यमराज का टूत बड़ा बु-द्धिमान् मृत्यु नामक है जो मरे हुओं के प्राणों को पितर वनने के लिये यमलोक अर्थात् पितृलोक में पहुंचाता है। तथा—

ये नः पितुः पितरो ये पिता-महा य स्त्राविविशुर्स्त्रेन्त्ररिक्षम्। तेभ्यः स्वराडसुनीतिनी स्त्रद्य य-यावशं तन्वः कल्पयति॥

श्रपर्वः कां ० १६ । अनु ० ३ । मं० ५८॥ अर्थ- जो हमारे पिता के पितर पितामहादि

(दादे वगेरह) तथा प्रितामहादि कि जो मरणा-नन्तर महान् श्रन्तिरिक्ष लोकमें प्रवेश करचुके हैं उन हमारे पितरों के लिये, प्राणों का ले जाने वाला स्वतन्त्र राजा यम कर्मानुसार उत्तम शरीर देते। इ-त्यादि वेदमन्त्रों से निःसन्देह सिद्ध हुआ कि पितृ-

लोक का राजा श्रीयमराज है श्रीर वही मनुष्पादि माणीमात्र को (मरणानन्तर उत्तम-निकृष्ट कर्मानु-पार) यथायोग्य शरीर देकर सुख दु:खादि भुगाता है। इति॥

हे महायप जी ? सब आप के उस संययका भी समाधान किया जाता है जो कि पितृलीकनि-पासी पितरों के पूजन सत्कार (श्राद्ध-तर्पण) क- रने की क्या आवश्यकता है और न करने से क्या हानि वा दोव हैं।

हानि वा दोव है। समाधान-प्रजापितं वैभूतान्युपासीदन् प्रजा वैभूतानि विनोधेहियथा जीवामेति। ततो देवा यज्ञोपत्रीतिनो भूटवा दक्षिणं जान्वाच्योपासीदं-

स्तानब्रवीद यज्ञी वोऽन्नममृतत्वं व ऊर्क् सूर्व्यों वो उपोतिरिति ॥१॥ अथैनं पितरः प्राचीनावी-तिनः सन्यंजान्वाच्योपासीदंस्तानब्रवीद् सा-

सि मासि वोऽरानं स्त्रधा वो मनोजनश्रन्द्रमा वो ज्योतिरिति ॥२॥ अर्थनं मनुष्याः प्रावृता उ पस्थं कृत्वोपासीदंस्तानव्रवीत् सायं प्रातवोऽ शनं प्रजावो मृत्युरग्निवों ज्योतिरिति ॥३॥

शनं प्रजावो मृत्युरिनर्वो ज्योतिरिति ॥३॥
यजुः भनः काः र धः ३ व्राटिशः
भाषा भावार्थः - मृष्टिके सारम्भ में देवता तथा
थितर और मनुष्य ये तीन प्रकार के भूत (जिस
प्रकार के हमारा जीवन- कत्कार- पूजन हो को प्रकार हमारा विधान करें) इच कथन के सभिप्राय
के प्रजापति (ब्रह्मा) के समीप गये, वहां प्रथम दे-

कार हमारा (वियान कार) दूर कारा या जानान की प्रजापति (ब्रह्मा) के समीप गये, वहां प्रथम दे-बताओं ने यज्ञोपनीत को धारण कर दिल्लिणानु का भूमि पर पात कर ब्रह्माजीके पन्मुख उपस्थित होकर जीविका एवं पन्मान होने की याचना की तब प्रजापतिने यह कहा कि यज्ञ आप का अज्ञ ते अमृत आपका उर्ज् (वीर्यमद) है और पूर्व आप के लिये प्रकाग हैं ॥ १ ॥ फिर पञ्चात्-प्राचीनावीति (अपसन्य यानी

यज्ञीपवीत बायें तरफ करते) हुए बांबा (जानु) घोंट्र पृथ्वी पर नवाय कर पितर लोग उपस्थित हुए, तब उन पितरों के प्रति प्रजापतिने यह कहा कि महीने २ भरमें १ * एकवार अमावास्याके दिन स्राप का भोजन होगा। तुम्हारे लिये कर्मकाएडमें "स्वधा" शब्द बोला जायगा। वह स्वधा पदवाच्य

वस्तु तुम्हारे लिये मनके तुल्य वेग वाला होगा। स्रीर चन्द्रमा तुम्हारा ज्योति स्रर्थात् तुमको प्रकाश पहुंचाने वाला होगा ॥ २ ॥

फिर प्रावृत "निवीतं कएठलम्बितम्" (प्र-* यह भी ध्यान में रहे कि मनुष्यके एक महीनेका समय वितरीं का एक दिन-रात सब शास्त्रोंमें माना गया है। इस

लिये कृष्णपद्मरूप रात्रिकी समाप्ति में प्रातः काल अ-मावास्या की वितरोंको अपने दिन के हिसाब से नित्य भी-जन मिला और मानुष दिन के हिसाव से महीने २ में भी-जन निलना कहा गया है तथा उक्त कथन से यह भी आया

कि प्रपसन्य रहने वाले एव बांया घोंटू टेक के बैठने वाले श्रीर महीने २ में श्रमावास्या की एकवार भोजन करने वाले तया चन्द्रमा जिन का ज्योंति है वे पितर हैं। वा जिनका गाम पितर है वे उक्त प्रकार से श्रपसब्यादि रहने वाले हैं।

मनुष्य प्रति दिन भोजन करते हैं श्रीर पितर महीने २ में एकवार श्रमाधास्या की भोजन करते हैं । इस कारण पितर मनुष्य नहीं श्रयांत् मनुष्यों से एयक् हैं। इस से भी स्यूल देह धारी जीवित वितरों का स्पष्ट रायडन है॥

र्चात् गलेमें मालाकी तरह येचीपवीत पहिने) हुए दोनों (जानुस्रों) चोंटुसोंको भूमि पर नवाय कर म-नुष्य उपस्थित हुए, तब उन से प्रजापित ने यह कहा कि सार्थ और प्रातःकाल आपका भोजन होगा सीर पुत्र-पीत्रादि प्रजा आप लोगों का मृत्यु है और अग्नि आपकी ज्योति यानी प्रकाश है ॥ ३॥ इत्यादि वेद की श्रुतियों में स्पष्ट आचा दि-खायी वा कही गयी है कि हर एक वैदिकधर्माव-लम्बी मनुष्यमात्रका यह अवश्य कर्त्तव्य है कि ब्रह्मा जी द्वारा नियत किये यज्ञों से देवताओं का, तथा प्रत्येक महीनेंकी समावास्या में पितृयच (श्राद्ध) द्वारा पितरों का पूजन-सत्कार करें जिससे कि वे देवता और पिनर अपने अभीष्ट (यानी मुकरिंर) पुजन सत्कारको यहण करके सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा-चाकारी मनुष्योंके प्रति सन्तान-धन-धान्य समृद्धि क्रादि मुख देकर तथा उन्हीं के मृतिपतरीं की भी मद्रगति करें वा करते रहें। और जी मनुष्य वेद तथा श्री ब्रह्माजीकी साम्रा उल्लंघन करके वेदोक्त देव-पितृ यचादि कर्म नहीं करता वह ब्रह्माचा वि-रोधी होकर वेदमार्ग से अप्ट होकर खनादर और दु: खको प्राप्त होता है ख़ौर उन देव पितरीं को-पद्वारा वह मनुष्य जनर्थ और दोषका भागी होता है। तथा और भी स्पष्टरूप से वेद में दिखलाया गया है कि

एष * पन्था एतत्कर्मतद् ब्रह्म तत् सत्यं तस्मान प्रमाद्येत् तस्मान प्रमाद्येत्तन्नातीयाद्द न ह्यत्योयन् पूर्वे चेऽत्यायंस्ते परावभूबुः तदुक्त मृषिणा—"प्रजा ह तिस्तीऽत्यायमीयुन्यंन्या अ-कंमभितो विविश्रे, वृहदु ह तस्थी म्वनेष्वन्तः

पत्रमानो हरित आविवेश" इति, "प्रजा ह ति-स्रोऽत्यायमीयुरिति" या वै ता इमाः प्र-जास्तिस्रोऽत्यायमायंस्तानीमानि वयांसि व-द्वावमधाश्चेरपादाः, 'न्यन्या अर्कमभितो वि-

बिन्ने, इति, ता इमाः प्रजा अर्कमिमतो निवि
* एतच्छव्दः सम्निहतार्षपरानर्यकः, सम्निहतदार्षो

ऽतीत आगामीचेत्येव द्विविधः, तथा च (एप) विभयिवथोध्यर्थः (पन्याः) पुरुषार्थस्य मार्गः, सापनमितियावन्,

तदुभयं विस्पष्ट निर्दित्रयते (एतत्कर्म एतद्वस्य) अग्निमीस

इत्यारम्य, अद्योक्षयम् इत्यन्तेनातीत समिहितयन्येन प्रति

पादितयस्कर्मतया उक्तम्-इत्यारभ्य आषार्ये इत्यन्तेन स-

निहितेनारस्यक द्वय क्षयेकोत्तर यथेन निक्षित यत्समुणं निगुंचं प्रश्न एतदुभयमपि पुरुपार्थं साधनं, व्यवहार परमार्थं
भेदेनोभयमिषस्त्यम्, क्षव्रक्षंश्रव्देन तन्धानपूर्वंक्षनतुष्ठानं
प्रकाश्रदेन च तिहृषयं धानमात्र रह्यते, यथोक्कस्योभयिनपस्य नार्गत्व द्ववितुनयोगव्याय्तिनन्ययोगव्यावृत्ति च
विपत्ते (तस्माक प्रमाद्येत) कर्मानुष्ठानत्रस्त्रज्ञानयोरस्वपाद्मं
प्रमादः, तथा सपाद्यितु प्रयुत्तेनाप्रस्याहस्यादिना तत्यिर
त्यागोपवि प्रमादः, एतदुभय न कुष्यांह् धृति-।

ष्टा इममेवाग्नि, वृहद्ध ह तस्यौ भुवनेष्वन्तः इति, अद उ एव वृहद्द भुवनेष्वन्तरसावादित्यः पवमानो हरित आविवेश, इति, वायुरेव पव-माना दिशो हरित आविष्टः"॥

अध्येद-धेतरेवारायवस र फ० १ सं० १॥
भाषार्थः - (एतत्कर्म-एतद्ब्रह्म) यह जो पूर्वीतारं ब्रन्थसे देव-पितृयज्ञादि कर्म और ब्रह्मका निरूपण किया है (एप पन्धाः) यही पुरुपार्थका मार्ग
है अर्थात् भीग मोक्षका देनेवाला है (एतत् सत्यस्)
यही वेदोक्त कर्म तथा ब्रह्मज्ञान अवश्य फंल देनेसे
सत्य है। और अन्य जो अवैदिक अनुष्ठान हैं वह
अनर्थ पर्यवसायी होनेसे मिथ्या हैं (तस्मान्न ममा-

क्षेत्र प्रविधाय हान्स मिट्या ह (तस्मान्न प्रभान् द्येत्) तिस अम्नायमार्गसे प्रमाद न करे और (त-द्वातीयाद्) तिस मार्ग का अतिक्रमण भी न करे किन्तु आकस्य तथा अन्य कुमार्गीको त्यागकर इसी का ही अनुसरण करे; इसीसे ही (नह्यत्यायन् पूर्व) जो पूर्व मनु-विषष्ठ आदि महायुख्य हुए हैं वह इस मार्गका अतिक्रमण यानी उल्लंचन नहीं करते रहे

ज़ीर (येऽत्यायन्) जो नास्तिक लोग इस घेदोक्त मार्गका उल्लंघन करते रहे (ते परा वभूवुः) वह पुरुषायंसे अष्ट हुए निराद्रको माध्त हुए हैं ॥ इस ब्राझणोक्त अर्थकी दूड़ताके लिये मन्त्रवा ममाण देते हैं कि(तदुक्तमृषिणा) इति, अब इस मन्त्र का स्वयं ही ब्राझण ब्याख्यान करता है कि

भन्त्र का स्वय ही ब्रोह्मण व्याख्यान करता है कि प्रजा (प्रजा ह तिस्रोऽत्यायमीयुः इति, यावै ता इमाः प्रजास्तिस्रोऽत्यायमायन् तानीमानि वयांषि वङ्गा अवगर्धीयचेरपादाः) अर्थात् ब्राह्मणादि भेदरे

जो अनेक प्रकारकी प्रजा हैं उनमें से तीन भाग जो प्रजा हैं वह वैदिक कर्मके उल्लंघन करने वाली हैं श्रीरं एकभाग प्रजा वैदिककर्ममें निष्ठावाली है। वहां

जिन प्रजासीने वैदिककर्म का त्याग किया है उन

प्रजाफ़ोंकी गति कहते हैं-(तानीमानि वयांषि) सर्यात् जिन्होंने श्रीत यानी देव-पितृ यज्ञादि कर्म का त्याग किया है उनमें से स्क्रभाग तो काक आदि पित योनियोंको माप्त होते हैं जो कि साकाय में

विचरने वाले हैं और एक भाग बङ्ग * (वृक्ष) और अवग्ध (स्रोषिधर्षे वा वनस्पतियें) हैं स्रीर एक भाग ईरपाद हैं अर्थात् पृथिवी के विलमें निवास क-रने वाले पादोदर (सर्प) आदि हैं, अर्थात् जिन २

लोगोंने पूर्वोक्त ग्रीतमार्गका त्याग किया है वह मर कर नरक भोग के अनन्तर पश्यक्तादि-कीट स्थावर आदि अनेक तिर्म्यग् योनियों को प्राप्त होते हैं। इस-प्रकार वैदिकमार्गके उल्लंघन करने वाली

तीन प्रकारकी प्रजाकी व्यवस्था कहकर शब एकभाग याली जो आस्तिक प्रजा है उस की गति कहते हैं कि "न्यन्यासर्कमिती विविध्रे" इति।

 (वङ्गाः) वनगता वृत्ताः, प्रवग्धाः-प्रवन्ति-रत्तन्ति मनुष्यादीन् इति अवाः, यध्यन्ते-अभिकाङ्हयन्ते जनैरिति गयाः धनस्पतिन्त्या ब्रीह-यवादि कृषा श्रीवध्य, श्रूटपर्यः ॥

द्वीका विवरण करते हैं (ता इमा: प्रजा ख़-र्कमिभितो निविद्याद्यमेवाग्निम्) इति, अर्थात् आ-स्तिक प्रजामें से कोई एक तो आहवनीय रूप (अर्क)

स्रर्चनीय जो स्रग्नि है उसकी उथासना करते हैं और कोई एक (वृहद् इतस्त्री भुवनेष्वन्तः) इसीका वि-

वरण कहते हैं कि (श्रद उ एव वृहद् भुवने वन्त रसावादित्यः) इति, प्रायति यह जो ब्रह्मायंडमें व्या-पक तेजोमय मार्त्त एड-(मूर्य) है उसकी उपासना करते हैं। और कोई एक [पवमानो इरित आविवेश] इसका विवरण कहते हैं कि (वायुरेव पवमानो दिशो हरित आविष्ट) इति, अर्थात् निवित दिशा में पं-

चारी जो पवित्र रूप वहन गील वायु हैं तिसकी उ-पासना करते हैं, अर्थात समष्टि वायु रूप हिरएय गर्भ की उपासना करते हैं॥ ताल्पर्य यह है कि आस्तिक लोग अग्नि आदि की उपासना द्वारा सद्दगित की माप्त होते हैं सौर नास्तिक लोग पन्नि स्नादि रूप स्रधोगित की माप्त

होते हैं.॥ तया मनु भगवान् एवं योगी श्री याज्ञवस्क्य मृनि ने भी-अकुर्वन्विहितंकर्म निन्दितंचसमाचरन्। प्रसक्तरचेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयतेनरः ॥

मनु० घटवा० ११ । ४४ ॥

विहितस्याननुष्ठानान्त्रिन्दितस्य घसेवनात्।

अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नर:पतनमृच्छति

याचा प्राप्त ३१२१९॥ स्रवीत्-विहित (यानी वेदीक्त देव-पितृय-

न रोकनेसे पुरुष पापको प्राप्त होता है।

चादि) कर्मके न करने से और निषिद्ध कर्मीके क-

कहते हैं कि-विहित कमें के न अनुष्ठान है और नि-न्दित (परस्त्रीगमनादि) के सेवनसे तथा इन्द्रियों की

इत्यादि वेद-स्मृतिशास्त्रोंके प्रमाणींसे निस्स-न्देह चिद्ध होता है कि मृतुष्यमात्र, वेदादिशास्त्रोक्त श्रीत-स्मान कर्मी के सेवन न करने से पतित होकर अधोगतिको प्राप्त होता है। इचित्रि, हरएक वेद-मतानुवायी आस्तिक जनका यह अतीव मुख्य और स्वरय करने योग्य कर्तव्य है कि वह निरालस्य होकर विना शक ठीक २ शास्त्रदर्शित विधिसे देश-काल पात्रका विवार करके ग्राह्यादि (देवपितृयज्ञ) करके अपना जीवन सफल करे। ख़ौर उपरोक्त कर्मकायड का त्याग करने से निःसन्देह दोषं सर्व अत्यन्त हानि होती है ॥ इत्यलम् विद्वत्य--इति स्रो स्राद्धपित्सीमांसायां पित्लोकस्थि-तिस्तस्याऽधिष्ठारुपितृदेवानां स्वरूपव-र्णने चैवं तत्कमाऽनुष्ठानस्याऽत्यावश्य-कता प्रदर्शने समाप्त्रोंऽयं पञ्जमोऽध्यायः

रने से तथा विषयों में अति आसक्त होनेसे पु-

रुव प्रायश्चित्त का भागी होता है। एवं याज्ञवल्प्यजी

ॐ-मच्चिदानन्देश्वराय नमः ॥

·त्र्यय षष्ठोऽध्यायः ॥

समाजी-श्रीपिडत जो महाराज ! श्रव कृपा

करके यह भी तो सुनाओं कि श्राद्धमें केवल ब्राह्मगोंको ही निमन्त्रण देकर भोजन करानेकी क्या छाबश्यकता है ? क्यों नहीं उन हमारे मित्र (दोस्त)
वा छन्य किसी गरीब छनाय छयवा छव नवीन
छार्य्य हुए [मुसल्मीन, प्रब्दुलगफूर वगैरह जिन्हों
का छार्य नाम धमंपालादि रक्खे गये हैं उन] महाश्योंको छपने पितरोंके निमित्त आदुमें भोजन
करावें ?क्या केवल ब्राह्मगोंकोही इसके लिये किसी

महाराजां है इकरारनामा लिखा मिला है वा कोई इनको किसीने साटीं फिकेट लिखदिया है ? सनातनी—महाश्रय जी ? चवराओ सत, थोड़ा धैर्य धारण करो और ध्यान लगाकर सुनो कि बा-स्मणों के लिये श्रीमहाराजाधिराज महिष् श्रीमनु भगवान् ने क्याही सुन्दर साटीं फिकेट कर में पह्ला इकरारनामा लिखदिया है कि जो सब वेदमतानु-यायी आस्तिक हिन्दुओं को परम माननीय है ॥

यथा-मनुस्मृ० अध्वाय १ प्रलोक देन से १०१ तक

क्रध्वंनाभेर्मध्यतरः पुरुषपरिकीर्तितः । तस्मान्मेध्यतमं त्वस्यमुखमुक्तंस्वयंभुवा ॥१२॥ उत्तमाद्गोद्ववाउज्यैष्ट्याद् झाह्मणश्चैवघारणात्। सर्वस्यैवास्यसर्गस्य धर्मतोब्राह्मणःप्रभः ॥६३॥ तंहिस्वयंभु:स्वाद्रीस्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसूजत् इव्यक्टवाभिवाह्याय सर्वस्यास्यचगुप्रये ॥९१॥ यस्यास्येनसदास्त्रन्ति ह्यानित्रिदित्रीकसः। कव्यानिचैत्रपितरः किंमतमधिकंततः ॥ ८५ ॥ भूतानांप्राणिनःश्रेष्ठाः प्राणिनांवृद्धिजीविनः । वुद्धिमत्सुनराःश्रेष्ठा नरेषुद्राह्मणाःसमृताः ॥५६॥ ब्राह्मणेप्चविद्वांसो विद्वत्सुकृतवुद्धयः। कृतबृद्धिपुकर्तारः कर्तृषुब्रह्मवेदिनः ॥ ९७ ॥ उत्पत्तिरेवविप्रस्य मूर्त्तिर्धर्मस्यशाश्वती । सहिधर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ६८ ॥ ब्राह्मणोजायमानोहि एथिव्यामधिजायते । ईश्वर:सर्वभूतानां धर्मकीशस्यगुप्तये ॥ ८९ ॥ सर्वस्वव्राह्मणस्येदं यत्किञ्जिज्जगतीगतम्। श्चेष्ठघे नाभिजनेनेदं सर्ववैद्राह्मणोऽर्हति ॥१००॥ स्वमेवब्राह्मणोभुड्क्ते स्वंवस्तेस्वंददातिच । आनृशंस्याद्वबाह्मणस्य भुञ्जतेहीतरेजनाः ॥१०९॥ . अर्थात्-ग्री ब्रह्माजीने पुरुषोंको नाभिषे जपर

के भागमें अधिक पविच कहा है। ग्रीर इसके मुख को तो उससे भी पविच कहा है॥ दं ॥ ब्राह्मण सब अंगों में उत्तम परमात्मा के मुख से उत्पद्म हुआ है, क्षित्रियादि तीनोसे पहिले जन्मा है ग्रीर बेदको मु- खात्र रखता है-इस कारण ब्राह्मण धर्म का उपदेश करनेमें इस सब सृष्टिका गुक (शासक) है ॥ देश ॥ स्वयम्भू ब्रह्माने तप करके देवताओंको 'हब्य, और पितरींको 'कव्य, पहुंचानेके लिये तथा इस सब ज-गत्की [यज्ञादिके द्वारा वर्षा आदिने] रक्षा करने के लिये खारम्भमें खपने मुखने ब्राह्मशोंको रचा है ॥ पंध ॥ जिसके मुखसे देवता हब्योंकी और पितर कव्योंको सदा खाते हैं, तिससे बढ़कर कीनसा माली हो सकता है ? ॥ ८५ ॥ पृथिब्यादि पञ्चभूतों से बनाये स्यावर जंगम सब प्राणियों में कीट पतंगादि पाणी श्रेष्ठ हैं कदाचित् किञ्चित् सुखलेश के प्राप्त होने से श्रीर उन्ते (बुद्धिजीवी) सार्थ निर्णंक स्थानमें जाने

न जाने वाले पशु खादि श्रेष्ठ हैं-उनसे प्रकृष्ट ज्ञान के सस्वन्ध्रमे मन्द्रम ग्रेष्ठ हैं-उनमें भी सर्वपूज्य जीर मोक्षाधिकारके योग्य होनेसे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं॥ दं६॥ ब्राह्मणोंमें भी स्वर्गादि फल देनेवाले उपोतिष्टोमादि

कर्मकागडके विद्वान् अधिकारी श्रेष्ठ हैं-उनसे अना-गत के लिये प्रथम सत्कर्म करने वाले श्रेष्ठ हैं-उन से भी हितादित प्राप्ति परिहार भागी होनेसे (कर्त्ता) अन्याता श्रीष्ठ हैं-जन से भी भोक्षणलके लाभयोग्य होनेसे ब्रह्मबादी श्रेष्ठ होते हैं॥ ८० ॥ ब्राह्मणका देह

जन्म मात्रमे ही अविनाशी धर्मकी मूर्ति है जिस से वह धर्मके लिये उत्पन्न हुआ है । धर्मानुगृहीत आ-समञ्जानसे मोसकी प्राप्ति के लिये योग्य है ॥ दंद ॥

जिसमे ब्राह्मण उत्पन्न होता हुआही पृथिवीमें (अधि)
जं चा और श्रेष्ठ है। सर्व धर्मोंको ब्राह्मणद्वारा उपदेश किये जानेसे तथा सब जीवेंकि धर्मके समृह की
रक्षाके लिये समर्थ हैं॥ ८८॥ जो कुछ पृथिवी में
धनादि पदार्थ हैं वह सब ब्राह्मणका खपना स्वत्व है
यह बात ब्राह्मणकी स्तुतिके लिये कही है—तात्पर्य
यह है कि ब्राह्मण के खपने स्वत्व के तुल्य है इस से

ब्राह्मण ब्रह्माजीके मुख से उत्पन्न होने, श्रीर वंश से ब्रिष्ट होनेसे सबं पदार्थी श्रीर द्रव्योंके ब्रह्मणके योग्य है ॥ १००॥ ब्राह्मण जो दूसरेका भी अन्न भक्षण करता है सो अपना ही करता है, दूसरे का जो सस्त्र पह-रता है और जो दूसरेका पदार्थ सेकर श्रीरके अर्थ देता है वह भी ब्राह्मथका अपना ही पदार्थ है ऐसा

होनेसे ब्राह्मणकी कृपा ही से श्रीर सब लोग भोज-नादि करते भोगते हैं ॥ १०१ ॥ इत्यादि श्री महाराजाऽधिराज महेर्षि श्रीमनु भगवान्ने ब्राह्मणोंकी प्रशंसा करते हुए देवता श्रीर पितरोंको यज्ञ में "हुब्य" श्रद्ध श्रीर श्राह्म "कुब्य" श्रद्ध पहुंचाने के लिये तथा वेद मितपादित धर्म का

मत्योपदेश करने के लिये इस पृथ्वी पर ब्राह्मणों को ही मुख्य भूदेव ठहराकर मार्टीफिकेटकप इकरा-रनामा लिखदिया है इसी कारण यक्त फ़ीर श्राद्धा-दिमें ब्राह्मणोंके मित श्रादर मत्कार पूर्वक निमन्त्रण देकर भोजनादि दान देने की अत्यन्त श्रावश्यकता है। इसलिये प्रथम भूदेव ब्राह्मशोंका पूजन सत्कार करके पीके यथायक्ति प्रनुसार भले ही प्रपने मित्र वा प्रन्य किसी प्रनाथादिका भोजनसे सत्कार क-रना चाहेतो करेयही वेदादि धर्मशास्त्रोंका सुख्य,

रना चाहे तो करे यही वेदादि धर्मशास्त्रोंका मुख्य, चिद्धान्त है ॥ समाजी-श्रीपरिंडत जी महाराज ! यह तो

विकास निर्माण कर्ता का महाराज : यह ता ठीक साटीं फिकेट रूप अच्छा माननीय इकरारनामा सुनाया परन्तु इसमें मुक्ते औरभी यड़ा सन्देह हुआ है कि ब्राह्मादि शुभकर्मी में सुपात्र, विद्वान् तथा

योग्य श्राह्मणको ठीक २ देखकर निमन्त्रण देना चा-हिये कि नहीं; चाहें चो कैंसा भी हो ? अर्थात् मदा मांसाहारी-व्यभिचारी-निन्दित ज्ञाचरण वाले मूर्ल को भी केवल उब के नाम मात्र श्राह्मण होने से

दिया जाग ! ॥

सनातनी-महाशय जी ! यह आपका सन्देह सहुत सत्य आच्छे सारक्ष्य निर्णय कराने वाला है।

परन्तु आप निष्पसपाती हो कर समयको विचार

परन्तु श्राप निष्पक्षपाता हो कर समयका विचार करके श्राद्धमें अधिकारी स्त्रीर सनिषकारी ब्राह्मणों को सुनो। यद्या मनुक सध्याय १ में— श्रीत्रियायेवदेयानि हव्यकव्यानिदातृमिः। अहंत्तमायविद्याय तस्मैदत्त महाफलम् ॥१२८॥ एकैकमिपिवद्वांस देविपित्र्ये च भोजयेत्। प्रकलंफलमाप्नोति नामन्त्राज्ञान्बहुन्पि॥१२८॥

दूरादेवपरिक्षेत ब्राह्मणंवेदपारगम्।

त्तीर्थंतत्हृज्यकव्यानां प्रदानेमोऽतिथिःसमृतः ॥१३०॥ सहसंहिसहस्र।णामनृचां यत्रभुञ्जते । एकस्तानमन्त्रवित्वीतः सर्वोनहितिधर्मतः ॥१३९॥ ज्ञानीत्कृष्टायदेयानि कव्यानिषहवीषिष । नहिहस्तावसूरिदरघो रुधिरेणैव शुद्धधनः ॥१३२॥ यावतीग्रसतेग्रासान् हव्यकव्येष्वमनत्रवित्। तावतोग्रसतेप्रेत्य दीप्तशूलष्टर्घयोगुणान् ॥१३३॥ नन्नाद्वेभोजयेन्मित्रं धनैःकार्योऽस्यसंग्रहः। नारिनमित्रंयंविद्यात्तंत्राह्नेभोजयेदुद्विजम् ॥१३८॥ सम्भोजनीसाभिहिता पैशाचीदक्षिणाद्विजै: । इहैवास्तेत्साछोके गौरन्धेवैकवेशमनि ॥१८९॥ यथेरिणेवीजमुप्त्वा न वप्रालभतेफलम् ॥ तथाऽनुचेहविर्दत्वा नदातालभतेफलम् ॥११२॥

दातृन्प्रतिग्रहीतृंश्च कुरुतेफलभागिनः ।
विदुपेदक्षिणांदत्त्वा विधिवत्प्रेत्यचेहम् ॥११३॥
यत्ने नभोजयेच्छाद्वे बहुचंवेदपारगम् ।
शाखान्तगमयाध्वयुंछान्दीगनतुसमाप्तिकम्॥१४५॥
एपामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्धमर्चितः ।
पितृणांतस्यतृष्णिःस्याच्छाश्वतीसाप्तपीरुषी ॥१४६॥
नब्राह्मणंपरिक्षेत दैवेकमंणि धमंवित् ।
पितृयेकमंणितुप्राप्ते परिक्षेतप्रयत्नतः ॥१४९॥

येस्तेनपतितक्कोया येचनास्तिकवृत्तयः । तान्हस्यकव्ययोविमानन्द्रांनम् स्वत्रीत् ॥१५०॥ जटिलंचाऽनधीयानं दुर्वलंकितवंतथा । याजयन्तिचयेपूर्गा-स्तांश्वश्वाद्वेनभोजयेत् ॥१५१॥ चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा । विपणेनचजीवन्तोवल्यांस्युहंव्यकव्ययोः ॥१५२॥ ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाऽग्निरिवशाम्यति । तस्मेहस्य नदातव्यं नहिभस्मनिहूयते ॥१६८॥

दाताओं को चाहिये कि वेदपाठी सदांचरण बा-द्माणको ही देव-पितृकर्ममें अन्न आदि दें, क्यों कि-ऐरेको दिया हुछा दान महाफल देता है ॥१२८॥ देव कर्म (यश्च) फ्रौर पितृकर्म (ब्राह्ममें) में एक २ वि-द्वान ब्राह्मण को भी जिमादेग तो बहुत, फल पाता है और वेदमन्त्र न जानने वाले बहुत्रे ब्राह्मणोंको भी भोजन करानेसे वह फल नहीं होता ॥१२८ वेद में पारंगत ब्राह्मणकी दूरने ही (अर्थात् पिता-पि-तामह आदि भी कैंसे श्रीष्ठ गुणीये इस प्रकार) प-रीक्षा करे, क्योंकि-वह आह्मण हव्य कव्य देने का तीर्धरूप होता है और उचको दान देनेमें अतिथि के पजनके समान फल माप्त होता है ॥ १३०॥ जहां वेदकी न जानने वाले दशलाख ब्राह्मण भोजन क-रते हों वहां उन सबके भोजनका फल, भोजन करने

चे प्रसन्न हुआ एक ही वेदवेता ब्राह्मण धर्मानुसार दे सकता है ॥१३१॥ पितरोंके निमित्त दियेजाने बाले बलिरूप "कट्य" और देवता और देवताओं की दिये जाते हुए बलिरूप "हब्य" चानसे ब्रेष्ट ब्रा-

स्मणको देय, मूर्जी को न देय, क्यों कि-रुधिरसे सने हुए हाथ रुधिरसे ही गुद्ध नहीं होते ॥१२२॥ बेदमंत्र हीन ब्राह्मण देवकमं ख़ीर पितृकमं में जितने ब्रासी को निगलता है उतने ही धंधकते हुए सोहेके ग्रस

स्रिष्टि और गोले यजमानको निगलने पड़ते हैं (३३॥ श्राद्ध में मित्र [दोस्त को न जिमाने, मित्रोंका एं- ग्रह धनसे करे, जिसको न जपना मित्र समफता हो न ग्रनु समफता हो उस ब्राह्मणको ही ब्राद्धमें जिन्माने ॥ १३८॥

रके भोजन कराता है वह पैशाची दक्षिणा कहाती है फ़्रीर यह दक्षिणा (भोजन दान फ़्रादि) [जैसे फ़्रन्थी गो एक घरमें हो रहती है उसमें से बाहर नहीं निकल सकती तैसे] दस लोकमें ही रहती है ख़ौर

जो पुरुष श्राद्धकर्ममें मित्रमण्डलको इकट्टा क-

ानकल सकता तस । इस लाकम हा रहता: ह म्हार इससे परलोकमें पितरों का कुछ उपकार नहीं होता है ॥ १४१ ॥ जैसे ऊषर (कलरवाली) भूमिमें बीज योकर योनेवाला फल नहीं पाता है तैसेही वेदमन्त्र

न जानने वाले ब्राह्मण की हव्य कव्य देने पर दाता को फल नहीं मिलता है ॥१४२॥ विद्वान ब्राह्मण की विधिवत् भोजन कराकर दक्षिणा देने पर वह देने वाले श्रीर लेनेवाले यानी दोनों यजमान पुरोहित को इस लोकमें और परलोकमें फलका भागी करती है ॥१४३॥ त्राद्धमें परमयत्न करके वेद पारंगत ऋग्वेदी मात्रायको, या सकल पाखाके ज्ञाता यजुवेदी प्राप्त-णको अथवा समाप्ति पर्यन्त सामवेद जानने वाले ब्राह्मणको भोजन करावे ॥१८५॥ इनमेंसे कोई भी ब्रा-हाल जिसके बाद्धमें सत्कारके साथ भोजन पाता है उसके सात पीड़ी पर्यन्तके पितर तृष्त होते हैं ॥१॥६ धर्म च पुरुष देवकर्म में ब्राह्म लकी परीक्षा न करे प-रन्तु पितृकर्म (श्राद्ध) में तो यह करके परीक्षा करें ॥१४८ं॥ जो चोर-पतित वा नपंचक हों, और ना-स्तिक मतके वा नास्तिकोंकी जीविका खाने वाले हों तो उन ब्राह्मणोंको मेनुजीने देवकर्म तथा पित्र-यज्ञमें अयोग्य अनिधकारी कहा है ॥१५०॥ वैदाध्ययन शान्य ब्रह्मचारी, दुवंल, ज्वारी, तथा बहुत से यज-मानींको एकसाथ बैठाकर यद्य कराने वाले. धन ठ॰ हरा कर पूजा करने वाले पुजारी, तथा मांसविक्रेता रेसे जो निन्दित व्यापार से जीविका करते हों तो उनको देव-पितृकर्भमें न जिमावे ॥१५१॥ १५२॥ बेट न पढ़ने बाला ब्राह्मण तिनकों (तृण-वा-घार) की अगिनके समान निर्जीव हो जाता है, ऐसे ब्राह्म-शोंको हब्य और कव्य न देना चाहिये क्योंकि वह राखमें होमा हुआसा बृया जाता है ॥१६८॥

इत्यादि संक्षेपतासे दिखाये वा कहे गये अधि-कारी और अनधिकारी बाह्यणों को ब्राह्मादि गुभ कम्मीं में परम यक्षमे ठीक २ देख विचार करके पि॰ तरींके निमित्त भोजन कराना चाहिये। ग्रीर नीचे बताई गयी विधिषे ग्राह्मक्तां श्रीर भोक्ता इन दोनीं को बैसे ही नियमसे रहना चाहिये। यथा मनुष् अ-ध्याय ३ के १८० से १८० प्रलोक तक-पूर्वेदारपरेदानां प्राद्धकर्मण्युपस्थिते। निमन्त्रयेतत्र्यवरान् सम्यग्विमान्यधोदितान्।१८० निमन्त्रितीद्विजःपित्रये नियतात्मामवेत्सदा । नचछन्दांस्यधोयीत यस्यश्राहुंचतदुवेत् ॥१८८॥ निमन्त्रितान्हिपितर उपतिष्ठन्तितान्द्रिजान्। वायुवञ्चान्गच्छन्ति तथासीनानुपासते॥१८९॥ केतितस्त्वथान्यायं हव्यकव्येद्विजोत्तमः। कथञ्जिदप्यतिकामन्पापः सूकरतांव्रजेत् ॥१६०॥ अर्थात्-प्राद्धकर्मके माप्त होने पर ब्राह्मके दिन में एक दिन पहिले और यदि न होसके तो उसीही दिन जिनके सक्षण कहचुके हैं ऐसे तीन अथवा एक

विन जिनक लक्षण कहुनुक ह एवं तान अथवा एक ब्राह्मण को चत्कार पूर्वक निमन्त्रण है, ॥१८०॥ ब्राह्म में निमन्त्रण दिया हुस्रा ब्राह्मण निमन्त्रणके दिनचे ब्राह्मके दिनकी रात्रि तक नियमके रहे स्रर्थात् स्त्री-चंग खादि न करे स्त्रीर अवश्य करने यीग्य कास्य जप खादि के चिवाय-वेदका लध्ययन न करे लीर ऐसे श्राद्ध करने वाला यजमान भी इसीही नियमसे रहे ॥१८८॥ क्योंकि—निमन्त्रित आग्रणों में पितर श्र- हृग्य रूपमें स्थित होते हैं और प्राणवायुके समान चलते हुएके साथ चलते हैं श्रीर बैठने पर समीप बैठते हैं इसिलिये उन ब्राह्मणोंको नियमसे पित्र रहना चाहिये ॥१८८ ह्य्य कव्यमें शास्त्रके श्रनुसार निमन्त्रण दिया हुआ ब्राह्मण निमन्त्रण को श्रंगीकार करके यदि किसी कारण * में भोजन न करे तो उस पापमें हुसरे जन्म में वह श्रूकर होता है। इसिलिये श्राद्ध करने वाले को भी जिस ब्राह्मणको निमन्त्रण

'* जो ब्राह्मण गरीव यजमानका प्रथम निमन्त्रज पाकर पीछे यदि साहूकार धनाढ्य चत्रिय छादि आकर निमन्त्रल दे तो लोभवग होकर प्रथम छाये उस विचारे गरीब को छोडकर धनाढवके पास पहिले जावे और असमर्थ पक्षमान की छोड़कर सप्तर्यवान् यजनान के पास जाना अर्थात वह सुमर्थवान् प्रजमान श्रहंकार और धन के मद से कहे कि-ऐ ब्राह्मण । यदि तुम पहिले मेरे पास श्राहमोजनादि खानेको नहीं आते हो तो हम तुमको छोड़कर अन्य किसीको आह चिला देंगे और तुनको आगके लिये देखेंगे अर्थात पुरोहित करके नहीं मानेंगे ऐसे लोभदायक यजमानके मदरूप वंचनों धर लीभित होकर जी न्यायपथका परित्याग करता हुआ प्रथम निमन्त्रण दिये हुए उस गरीय यजमामके पास भी-जन करने को जो नहीं जाता-यह लोभी-पत्तपाती और इरपीक वा उग ब्राह्मण उस लोभ वा काहिलता छप पाप से दूसरे जन्ममें अवस्य ही शूकर होता है ॥

दिया हो उसीको ही ग्रद्धा (नम्रता) से ग्राद्धमें ले आ़कर भोजन कराना चाहिये॥ इति॥

समाजी-म्ही पण्डितजी महाराज ! स्नाप म्ही-वरोंने तो ठीक ही सत्यरूपसे ब्राद्धके योग्य सीर ख्र-

योग्य ब्राह्मणोंका वर्णन किया परन्तु ख्रापके कथना-

नुसार इस वक्त ऐसा वेद पारंगत पूर्ण पवित्र विद्वान् स्रव मिलना महाकठिन है। स्त्रीर ऐसे शास्त्रीक्त नि-यम पालने वाले वेदवेता सदाचारी ब्राह्मणोंके सि-वीय जन्य मूर्ख दुराचारी ब्राह्मणकी ब्राह्ममें खिला-ना अवश्य निषिद्ध है-क्योंकि-धर्मशास्त्रके आजान्-

सार असंस्कृत मुखं ब्रोह्मणको ग्राह्ममें भोजन करा-ना वैसाही है जैसा कि भस्म (राख) में घीकी

माहति निष्फल होती है। इसलिये माद्ध कैसे सिद्ध हो चकेगा ?॥

सनातनी-प्रिय महाशयजी ! आप जैसा वि-चार रखते हो वह निः छन्देह सत्य है-परनतु इस स-मवानुकुल आप समिय-वैदय वगैरह प्रथम अपने गुण-आचरणोंकी तरफ भी कुछ ध्यान देकर न्यायरे

हाश्यम जी ! रेसे स्नापके [स्नवत्रय कर्त्त व्या कर्म का

गोचो और कहो-िक नहीं, केवल ब्राह्मणोंको ही दो-पयुक्त ठहरानेका भूंठा बहाना करके अपने अवश्य कतंत्व देय-पितृवज्ञादि कर्म करनेसे भागते हो । म-

त्याग (लोप) करने वाले] पाप-रूप निवंस वचन साप जैसे गच्चे सिचय बेरगों के सन्तान के मुख से

निकलें-तो इससे ज्यादा। अपने बड़ोंकी [पूर्णभक्ति नमुताभावने होनेवाले अश्वमेध राजमुवादि यज्ञोंमें पाई हुई] वीरता सीर मितहामें धब्बे लगाने वाले श्रीर कीनसे वचन बाकी रहे ?! श्रा हा ?! "विना-यकाले विपरीतवृद्धिः" इस महावाक्य के अनुसार ठीक देखा जाता है कि कलि महाराजके मताप से बुद्धि और वीरता तथा नित्य कर्मकाएडों में प्रेम विपरीत (उलटा) हो गया ?!? तीभी है ऋषि म नियोंको सन्तानो ! और सच्चे ग्रुरवीर पवित्र स-विय-वैत्रयोंके पुत्रो ? ख़ब जरा जागो और विचा-ररूपी आंखने देखो- मोचो कि हमारे ही जैंमे निर्वल मंतान पर दयाके भगडार महर्षि श्रीमनु महाराज ने अपने द्याभाव से अवश्य करने योग्य श्राद्धादि कर्मी की रहा होनेमें कलिकालके समय योग्य और अयोग्य ब्राह्मणादिकोंका किम तरहमे निर्णय करके बतलाया है कि-अन्वेक्टतयूरोधर्मा-स्त्रेतायां द्वापरेऽपरे । जन्येकिष्यमेनृणां युगहासानुहपतः ॥ ८५ ॥ तपःपरंकृतयुगे त्रेतायांज्ञानम्च्यते । द्वापरेयज्ञमेवाह-र्दानमेकंकलीयुगे॥ ८६॥ ल्लर्थात्-सत्ययुग में ज़ौर धर्म, चेतामें ज़ौर, द्वापरमं श्रीर तथा कलियुगमं और । चेतादि यगों में पर्गाकी हीनता (घटती-बढ़ती) होनेसे धर्म सीर सधम की भी विलक्षणता हो जाती है।

colours and nourishment at thier due time, such as"
"spring season" and less in the other seasons similarly
in the times of Sityayuga spirituality and religions
are more Predom mants and very much less in respective Yugos Treta, Dwaper and much less in
Kaliyuga"

अर्थात्-जैमे ऋतुओं में पदार्थोक्षे स्वभाव बदल जाते हैं तैसे ही युगों में भी शक्तियों के फेरफार से पदार्थीका स्वभाव वदल जाता है ज़ीर रस, कस, यक्ति-आकार-उमर और कर्म फल आदि भी युगों में बदल जानेसे बदल जाते हैं। यदापि तपश्चर्या-आत्मञ्चान-यज्ञ और दान वगैरह सब कर्म सत्य आदि सब युगोंमें सदा सेवन योग्य हैं तथापि सत्य-युगर्मे तपञ्चर्या प्रधान (मुख्य) और अत्यन्त फल-दायक है। चेतामें आत्मज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगर्मे दान ही मुख्य फलदायक है। इसलिये वेद्यास्त्र पठन और उनके अनुसार धर्म कर्म-अनु-ष्ठान करनेमें जो हीनता हुई है वह केवल ब्राह्मणों में नहीं किन्तु सब वर्णाश्रमोंमें कलियुगके प्रभावसे समान ही हो रही है। फिर केंबल ब्राह्मणोंका ही श-धिकार मनुस्मृतिके अनुसार देखा जावे तो किञ्चित् सपने सापकी सोर भी सब लोगोंसे दृष्टि की जावे कि मुभमें विशेष धर्मीकी स्थिति तो किनारे रही

परन्तु मनुष्यमात्रका सदा शाचरणीय सामान्य धर्म भी कोई है या नहीं। किन्तु केवल ब्राह्मणों के ही अधिकार का निर्णय करने पर ओर लगाना और अपनी ओर कुछ नहीं देखना यह बुद्धिमानों और न्यायवर्ती विचारवानींकी रीति नहीं है। क्योंकि श्राद्वादि कर्म करने वाले क्या ब्राह्मण क्या और जातियोंके सब मनुष्यमात्र । अर्थात् सब वेदमता-नुयाइयोंको सत्-धर्मका आचरण अपने वर्णाश्रमके मुताबिक ठोक २ करना चाहिये। जैशा कि-महा-भारत अनुशासन पर्वमें लिखा है कि-न्यायार्जितधनस्तत्व-ज्ञाननिष्ठोजितेन्द्रियः। श्राद्वकृत्सत्यवादीच सत्कर्मामुच्यतेनरः ॥ १ ॥ अर्थातु न्यायरीति से जो धनसंचय करता है, ईश्वरके तत्वज्ञानके विचार मे जिसका निद्यय है, जिसने अपनी इन्द्रियोंको खोटे विषय भौगोंसे रो-काहुआ है अर्थात् गृहस्याध्रमके धर्मोमें दढ स्थित है तथा ब्राह्मदि देव-पितृकर्म जो बदा करता है शीर सत्य बंचन बोलता है तथा इष्टापूर्तादि सत्-कर्म करता है वह मनुष्य सब कोई चाहे किसी भी वर्ण का हो तो जन्म मरणरूप संसारवलेण से कृट

जाता. है। यही श्लोक याज्ञवल्क्यस्मृतिमें है परन्तु क्द भेद है । इस प्रलोक में लिखे बाद्धादि सत्कर्म करने वाले सब मनुष्यों में जी र गुण चाहिये सी वे ही लोग न्यायद्धि से अपने २ में देखें कि उन में जवर लिखे-गुण कितने और कहांतक हैं-तो सो-चने से निश्चय हो जायगा कि इन गुणोंमें से थोड़ा संग भी सब के , ब्राह्म कादि करने वाले सब मनुप्यों में किठनता से प्राप्त हो सकेगा। तो फिर केवल ब्राह्मणों के ही धर्म का निर्णय करने में किठबढ़
होकर प्रवृत्त होना छोर अपनी छोर [कि कैंसे २
कुक्म सेवन करने छोर केसे २ झन्यायों से धन संचय करना छोर शास्त्रोक्त सदाचार किंचित् भी
कभी झाचरण नहीं करना] दृष्टिमान नहीं करनी
यह कीन न्याय छोर बुद्धिमत्ताकी बात है। महा-

यह कीन न्याय और बुद्धिमत्ताकी बात है। महा-यय जी! ब्राह्मशों में तो कोई न कोई कुछ न कुछ वेदशास्त्र पहें हुए और उनके अनुनार अपना धर्म कर्म अनुष्ठान करने वाले शायद मिलही जावें प-रन्त ऐसे मशकर्ता महात्मा को अपनी ओर अपने

साथियोंकी श्रोर दृष्टि करके न्यायसे सोचना चा-हिये कि वे लोग सनातनधर्मको रीति से नित्यक-

संब्य धमं कर्मका अनुष्ठान (चेवन) करना तो जाने दो परन्तु उनके नवीन मतके गुरु के उपदेश किये यन्थों के अनुसार भी कितने संस्कार उन्हों के हुए हैं और होते हैं। और कितना वेद और वेदाङ्गों का तथा और शास्त्रोंका अध्ययन और प्रतिदिनके सन्ध्यादि पंचयज्ञ कर्म कितने किये जाते हैं कि जिन महाग्रयोंको दो चार वेदमन्त्रोंके स्वर सहित गुद्ध पाठमात्र उच्चारण करनेका जान नहीं है तो

उनका अर्थ जानने की तो क्या वात है। तो इन सब ऊपर लिखे वा कहे कारणोंसे यदि विद्वान् स-स्कर्मी पात्र प्राद्यण जहांतक ब्राह्यकर्म करनेके वास्त मेलें तहांतक वे अवश्य खोज करके भी ब्राद्धकर्ममें ताने योग्य हैं –परन्तु जो समयके सनुसार प्रधिक उत्तम अधिकारी पात्र ब्राह्मण न मिले ती धर्मरक्षक महर्षि मनुभगवान्ने अध्याय २ प्रतोक १९८ में --गायत्रीमात्रसारोऽपि वरंविप्रःसुवन्त्रितः। नायंत्रितंस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशोसर्वविक्रयो ॥११८॥ अर्थात्-केवल गायत्रीमात्र जानने वाला भी यदि (सुयन्त्रित) शास्त्रनियमित श्रर्थात् स्रभद्दय भ-क्षणादि रहित और व्यभिचारादि कर्मी रहित है तो वह थोड़ा पढ़ाहुआ भी ब्राह्मण समयानुसार अ-त्यन्त ग्रेष्ठ और ब्राद्धादि कर्मीमें योग्य पूजनीय है। परन्तु (अर्थवित) जो निषिद्ध मद्ममांसादि भक्षण करने वाला और वेंचने वाला है तथा नित्य कर्त-ष्य संघ्योपासनादि कर्म नहीं करने वाला ख़ीर व्य-भिचारी वह यदि वेदवेत्ता महान् परिवृत भी हो तो भी वह श्रेष्ठ नहीं औरन श्राद्धादि कर्मीमें लाने योग्य है। अब विचारपूर्वक देखो कि अन्तमें ्त्री म-हर्षि मनुभगवान् ने कम से कम केवल गायवीमाव जानने वाले मुलक्षण मुपाच येटणव ब्राह्मण को ही श्रीष्ठ मीर श्राद्ध के योग्य सिद्ध किया है। इसलिये महिषं श्रीमन्जीकी खाजा से सत्यन्त विद्वान् धर्मज ब्राह्मणके सभाव में केवल गायत्रीमात्र जानने वाले ज़ीर सदाचारी सुपात्र ब्राह्मण को ही सत्कारपूर्वक

निमन्त्रण देकर शाह्यमें श्रृह्वाचे भोजन कराकर पि-तृयज्ञको चिद्ध करना हम वेदमतानुषायियोंका मुख्य कर्त्तव्य है। सीर जंगल वा म्लेच्छादि देशमें सर्वया ऐसा केवल गायत्रीमात्र जानने वाला भी यदि सु पात्र ब्राह्मण न मिल सके ती-अलाभेब्राह्मणस्यैव कोशःकार्योबदुःप्रिये। तथा=विधायवादर्भबट्न् आसनेपुसमाहितः। प्रेपानुप्रेवसंयुक्त-विधानंप्रतिपादयेत् ॥१॥ महर्षि श्री देवलस्यृति, प्रयात्-सुपात्र ब्राह्मण के ग्रभाव में दर्भी की खोटी प्रतिमार बनाकर उन को ही ब्राह्मणरूप में

कल्पित करके पविच स्नासनों पर बैठाकर शाद्ध के मन्त्रीसे (मैपानुमेष) एष गन्ध-सुगन्ध-धूप दीप नैवेद्यादिकों में सर्थात् गंध (चन्दन) पुष्प धूप दीप भीजनादि को उन कल्पित ब्राह्मणो के प्रति ग्रद्धारे अर्पण करके नाप ही ग्राद्धकर्मका अन्छान पूर्ण करे। यदि वैसा भी न हो सके तो श्रीकात्या-यनस्मृतिके वचनानुसार-आपद्मनम्नीतीर्थेच प्रवासेपुत्रजनमनि । आमन्नाद्वप्रकृवीत भार्यारजसिसंक्रमे ॥ १॥ अनिनरधनीवापि तथैवद्यसनान्वितः।

आमश्राद्व'द्रिज.कुर्याद्व घृष**टस्तुसदैवहि ॥ २** ॥

अर्थात्-आपत्कालमें, तथा अग्नि के न मिल सकनेमें, तीर्थमें प्रवास वानी मुसाफरीमें, पुत्रजन्म के समयमें और रजीधमं में तथा मंक्रान्ति अर्थात् पुरवकालमें "श्रामण्याद्ध" यानी कच्चा चीधा लेकर पितरोंके निमित्त यच्चोपवीत वामपार्थ्व करके "स्व-धा पितृभवः इदं अञ्चं समर्पर्यामि" ऐसा उच्चारण क-रके सुपान चदाचारी गरीब ब्राह्मणके घरमें वह सन्न देकर भाद्धकर्म पुराकरे परन्तु भूद्रजाति हमेथा "आमगाद्ध" करे अर्थात् कच्चासीघा संकल्प करके ब्राह्मणोंको दे। यदि इतना भी न हो सके तो-सर्वोऽभावेक्षिपेदग्नौ गवेदचादथाप्सुवा । नेत्रप्राप्तस्यलोपोऽस्ति पैतुकस्यविशोपतः ॥ १ ॥ महर्षि देवलस्मृति॥ ल्लात्-कुछ भी नहीं हो सके तो भी किंचित कञ्चावा पकाया हुआ भोजन पितरोंके नामसे श-निनमें, अथवा जलमें वा गीको देवे परन्त् पितृकर्म का सोप न करे। ख़ीर यदिमनुष्यदरिद्री (कंगाल) श्रथमर्थ होनेके कारण इतना भी न कर सके तो-वृहन्नारदीय पुराणशास्त्रके वचनानुसार-अथवारोदनंकुर्यात्-अत्युच्चैविजनेवने । दिद्रोहंमहापापी वदेदितिविचक्षण:॥॥ व्हवारदीय पुराग अध्याय २६॥ इस नारदीय वाक्यानुसार श्राद्धके दिन निर्जन

वनमें जाकर "मैं महापापी दिरद्री (कंगाल) हं"

सर्वाभावेवनंगत्वा कक्षमूलप्रदर्शकः ।

भी संकोच करे तो-

पितृकर्मका त्याग न करे। श्रीर यदि रोदन करनेमें

सूर्व्यादिलोकपालानामिदमुच्चै:पठिष्यति ॥५०॥ नमेऽस्ति वित्तं न धनं न चाऽन्यत्, श्राहु-

स्य योग्यं स्वपितृत्रतोस्मि । सप्यन्तु भक्तया पितरो मयैते भुजीततोवहर्मनिमारुतस्य ॥५०॥ श्रीवाराहपुराण श्रध्याय १३ में ॥ अर्थात्-वन में जाकर दोनों भुजाओं को जपर करके नमुता और दीनभावने हाय जोड़कर मूर्यादि लोकपालोंके सन्मुख अपनी कुद्धि दिखाकर उच्चस्वर में कहे कि-हैपितृदेवी ! मेरे पाम इतना अज्ञ, धन तथा अन्य कोई भी श्राद्धोपयोगी-पदार्य कुछ भी नहीं है-इचलिये में अपने पितरोंको केवल नमस्कार पूर्वक प्रार्थना करता हूं कि हे मूर्यादि लोकपालो ! इस मेरी भक्तिरूप प्रार्थना से मेरे पितर तृप्त होकर मुभपर प्रमन्न रहें ॥ इति ॥ समाजी-श्रीमान् पण्डित जी महाराज ? यह म्भे लाप श्रीवरों ने ऐसा न्यायरूव युक्तियुक्त ब्रा-स्मणोंका निर्णय करके वतलाया है कि जिस से सब मुभे कोई भी मन्देह वाकी नहीं रहा और आपत्ति में भी ग्राह्म करनेका ऐसा धर्मशास्त्रीक्त उत्तम सर्व

मान्य मार्ग वतलाया कि वस अब मैं पूर्णकृतार्थ हुआहूं॥ हे प्रिय परमपुज्य परिडतजी ! परब्रह्म परमा-मा ख्राप जैसे धैयंवान् सुधील विद्वान् सत्योपदेशक बाह्म शकी सदा मितिष्ठा यश बढ़ाये और आप श्री-वरोंको सदा प्रसन्न रक्खे कि जिन श्रीवरोंने निता-न्त् परमार्थरूप महान् उपकार करके मेरे छीर व-लिक अन्य मेरे समाजी भाइयों के तथा आस्तिक साधारण सनातनी भाताओंके भी अति कठिन स-न्देह रूप सन्धकारको प्रवत्तयास्त्र प्रमाण और स-काट्य सद्युक्तियुक्त वचनों से ऐसे दूर किया है कि जैसे मूर्यनारायणके प्रखर तेजने संपूर्ण जगत्का अ-न्धकार नाम व हर ही जाता है-इसलिये में इस ब्राद्धविषयमें तो निःसन्देह आप धर्मरक्षकको गुरु समभ कर छाप सद्गुक्झोंके चरणकमलों में प्रेम से शिर नवाता हूं। हे प्रभी! मुभपर समा करी ख़ीर मुभको आशीर्वाद देखी !? मनातनी-प्रिय महाशय जी ! मदामुखी भव ? श्रायुष्मान्-भव ! ? इति श्री श्राह्मपित्रमीमांसायां श्राह्मकर्मणि

ब्राह्मणानामधिकाराऽनधिकारनिर्ण-यने समाप्नीयं पष्ठीऽध्याय: ॥ श्रीसाम्बर्शिवार्पणमस्तु ॥ ओ३म्-शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

"ॐ-नमोऽन्तर्यामिणे"

॥ त्र्राय सप्तमोऽध्यायः ॥ 👕

मेरे प्रिय आधुनिक आर्यंचमाजी महार्ययोंको निम्नदर्शित बाद्धविषयक त्रिशत् (३०) प्रश्नों के शास्त्रमाण युक्तियुक्त उत्तर देनेके लिये प्रार्थना॥

प्रम्न १-स्वा० द्यानन्दजीने बन् १८९५ के सत्यां र्धमकाशमें ''जितने जीवित हों उनके नामचे तर्पण न करे किन्तु जो २ मृराये हों उनके नामचे तर्पण करें" लिखा है चो इचको तुमममाण क्यों नहीं मानते ?। यदि मानते हो तो जीवितोंको श्राह्मतर्पण कहना मिथ्या क्यों नहीं हैं । यदि कहो कि स्वा० द० ने ऐसा नहीं कहा और न लिखा किन्तु खपाने शोधने वालोंने वैंसा बनादिया है, तो क्या तुम में से कोई भी समाजी महाश्रम बेंद पुस्तक हाथमें लेकर श्रपयंचे कहदेगा कि यह सत्य हैं। श्रयांत् स्वान्मी जीने नहीं लिखा किन्तु खपाने शोधने वालोंने ही मिलादिया ॥

प्रमु २-जय स्थायंचेद १८। ११ ४४ ॥ (स्रबंध स्वा

अश्व र जिपने क्षेत्र प्राप्त । १ । वह ॥ (अप्तु प ईयुः) मन्त्रांग्रका अर्थ प्राणवायुमान सूदमदेहधारी पितर निषक्तके अनुमार सिद्ध हो चुका है तो जी-यित स्पूल देहधारियों में वह मर्थ कैसे घट सकेगा। क्या उससे मृतिपतर सिद्ध नहीं हैं! तथा अववंबेद १८। २। ४६ (य झाविविगुहर्वन्तरिसम्०) जो पि-

तर बड़े अन्तरिक्ष लोक में प्रवेश करचुके सी क्या

तुम्हारे जीवित ही पितर खन्तरिक्ष खाकाशमें मवेश कर सकते हैं ?। यदि नहीं कर सकते तो मृतपि-तरोंका ग्राह तर्पण उक्त मन्त्रसे सिद्ध क्यों नहीं है ?॥ मश्र ६-जब सम्पर्ववेद १८। ३। ४४ ॥ (सन्नि-ष्वात्ताः पितर एह गच्छत)यहां हविष् खानेके लिये उन पितरोंको बुलाया गया है कि जो मरणानन्तर अग्निमें जलाये गयेथे। क्योंकि (यानग्निरेव दह-न्तस्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः) जिनको जलाता हुआ अग्नि चार जाता है वे पितर अग्निष्वास कहाते हैं यह अग्निष्वात्त पदका खर्च शतपथ ब्रा॰ में लिखा है तब वे अग्निप्वास पितर जीवित कैसे हो सकते हैं। इस प्रमाणमें भी मरोंका ब्राद्ध होना चिद्ध क्यों नहीं है ? क्या तुम्हारे मतमें जीवित ही जलादिये जाते हैं ज़ौर क्या जलजाने पर भी वे लोग जीवित ही बने रहते हैं। यदि ऐसा हो तो दाहकर्म होजाने पर किशी समाजी को क्या जी-वित दिखाओंगे ? ॥ प्र०४ – ऋषर्ववे० १८ । ३ । ७२ (ये ते पूर्वेपरा-गता:) जो पहिले पितर पूर्वकालमें व्यतीत होगये उनके लिये भी तपंश करना चाहिये। क्या इस प्र-माण में मरेहुंगे पितरों का ब्राद्ध तर्पण सिद्ध नही होता ! ग्रीर क्या ऐसा कथन जीवितों में घट सकता है !

प्र- प्र- अवर्षने १८ । ४८ । (मृताः पितृषु गंभवन्तु) मरे हुए पितर पितृयोनिमें प्रगट हों उ-न्होंके लिये ब्राद्ध तर्पण होता है । क्या यहां मूल-येदमें मृत शब्द नहीं ? स्त्रीर क्या इससे मरीका ब्राद्ध तर्पण सिद्ध नहीं होता ।॥

मर्व-अथर्व० १८ । ४। ६३ (अधामानि पुन-रायातनो गृहान्०) यहां पार्वणादि मासिकश्राद्धमें पितरों का विसर्जन करके महीनेभर वाद फिर बु-लाना कहा है। सो क्या जीवित पितरोंको तुम म-हीने २ में एकही वार भोजन देते ही? क्या वे ऐसा करने से जीवित रह सकते हैं? यदि हां कहो तो ऐसे कौन हैं ? ग्नीर (नमः पितृभ्यो दिविषद्भ्यः०) अयर्व वे० १८। ४। ८०। दिवि नाम स्वर्गलोक में रहने वाले पितरींको यहां नमस्कार कहागया है। मो क्या जीवित ही समाजियों के पितरस्वर्गमें जाते हैं ? यदि कोई जीवित स्वर्गमें जाते नहीं दीखें तो इसमे मरोंका ग्राह्म करना सिद्ध क्यों नहीं है?॥ प्र0 अ-क्या तुम लोग (अपराह्यः पित्लाम्) इस ग्रतपथ प्रमाणके अनुसार भूखे पिताको भी दो-

इस ग्रातपय मनायक अनुसार मूख ।पताका मा दा-पहरके बाद ही भोजन दोगे ? श्रीर मनुष्यके भी-जनका समय मध्यान्ह लिखा है तो क्या तुम्हारे जीवित पितर मनुष्य नहीं हैं? जब कि मनुष्य हैं तो मनुष्यों श्रीर पितरोंका भिन्न समय क्यों रक्खा है? क्या इससे जीवित मनुष्यों से पितरोंका भिन्न होना सिद्धें नहीं ? तया जद ग्रतपय कारड २ । इ ४। में लिखा है कि (तिरद्ववै-पितरो मनुष्वेभ्गः) मनुष्यों से पितर छिपे नाम अट्टश्य होते हैं । सो क्या जीवित सनुष्य पितर सनुष्यों से कभी छिपे नाम प्रदृष्ट रह मकते हैं ? क्या इससे मृतपितरींके लिये श्रद्ध स्पष्ट सिद्ध नहीं है ? एवं शतपथमें पिरखदान के क्षाद पीठ फेर लेनालियां है मो क्यातुम जी-वित यितरोंको भोजन परोच कर उनकी छोर पीठ करदेना ठीक सममते और वैसा ही करते हो ?॥ प्रश्न ८-पदि सापके ही मतमें स्वामी द्यानन्द जीने स्वव मंस्कारविधि खदी स० १८४० के पृष्ठ १०४ समावर्तनसंस्कारप्रकरण में लिखा है कि "हाय में जल लेका, अपस्व यानी यच्चोपवीत वामपार्श्वक-रके दक्षिणदियाकी तरफ मुख करके "ॐ पितरः शु-न्धध्वम्" इस मन्त्रसे यह जल पृथ्वी पर छोड़े" सो क्या तुम इससे भी जीवितींकी जलहान मानीगे यदि जीवितों का ही तपंश मानना चाहते हो तो (भूक्ति पर जल छोड़े) को काटकर (पिकाको भूमि में लिटाकर उस के मुख में जल छ ड़े) ऐसा क्यों नहीं बना देते हो ? क्या स्वा० द० के ऐसा लिखने से प्राव भी मरोंका तर्पण मानना फिद्ध नहीं है ? ॥ प्र० ट-संस्कारविधि सं० १८४३ पृ० १९८-गृहास्रम म-वारणमें वलिवेशवदेवविधि-(शोइम् पितृभ्यः स्वधा-विभ्यः स्वधानमः) इस मन्त्रसे एक ग्राम दक्षिणमें रखनेको लिखा है मो यह ग्राम वा भाग किनको दिया जाता है ? और दक्षिणमें क्यों घरा जाता है ? क्या इसमे मृतग्राद्ध मानना सिद्ध नहीं है ?॥

प्र० १०-ऋग्वेदादि भूमिकामें स्वा० द० ने "अ-ग्निष्वात्त" का अर्थ अग्निविद्याको जानने वा अ-ग्निसे विशेष कार्य साधन करने वाले खंजनके डाई-वर ख़ादि किया और ख़ागरे शास्त्रार्थ में स्वा० तु-लगीराम आदि भमाजी उपदेशकों ने जलेहुए मुर्दा के परमाणु अर्थ किया इन परस्पर विरुद्ध दोनोंमें कौन अर्थ सत्य और दो में कौन एक मिच्या है? प्र० १३ क्या समाजी लोग ग्रन्निष्वात्त पितरी को वुलानेके समय काले २ अंजनके ड्राईवरींका आ-षाहन करते हैं अथवा पं० तुलसीरामके किये अर्था-नुसार जले हुए मुदिक परमाणु मोंको (अग्निय्वा-त्ताः पितरएह गच्छत चदस्यदस्यदत) महते हैं कि है जले हुए मुद्दिक परमाणुख़ी ? तुम लोग यहां छा-क्रो, जपने २ आसन पर बैठो और भोजन करो त-या भोजनके वाद हमको बहुतसा धन दे जालो। मो वया मुद्कि जले हुए परमाणु आते, आपनींपर बैठते, जीर भोजन करके धन दे जाते हैं। इससे क्या ममाजियों के पितर मुर्दा के जलेहुए परमाणु चिद्ध नहीं हैं ? ॥ प्र० ९२-सम्बेद भाष्यभूमिकामें स्वा० द० ने प्र-

तिज्ञा की है कि हम निहक्त-यतपथादि भाषीन

आषंग्रन्थों के प्रानुक्ल वेदार्थ करते और मानते हैं, फिर अग्निच्वात्त पदका अर्थ शतयय से विसद्ध मन-माना व्याकरण की स्वरमिक्रवा से भी विरुद्ध किया है-सो मिटवा क्यों नहीं ? और ऐसा करनेसे स्वा० द० की पहिली प्रतिज्ञाका खग्डन क्या नहीं होगवा? इसका तुम क्या जवाब रखते हो ?॥ प्रश्न १३-सत्यार्थ-प्रकोश छपे सन् १८८३ के पृष्ठ ंटं में स्वामी द० जीने ग्राद्धतपंश का अर्थ करके अखीर में कहा है कि यह जीवितों को है मरों को नहीं, फ्रीर फिर ऋषितर्पण पितृतर्पण शिखके इस से म्रागे लिखे मर्थ सिद्ध किये हैं कि-११ ग्यारह प्रकार के पितर ये हैं---नं १-नो परमेश्वर परमात्मा और पदार्थवि-द्यामें निपुण हो वह (शोमसद) नं २-जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि के जानने वाले हों वे (ग्रग्निप्वात्त) नं १-जो उत्तम विद्या वृद्धि युक्त उत्तम व्य-वहारमें स्थित हों वे (वर्हिपद्) नम्बर ४-जो ऐश्वयके रक्षक महीपधिके पान करनेसे रोग रहित और अन्य के ऐखर्य रक्षक, औ-पधियों की देकर रोग नाशक हों वे (सोमपा)

पितर हैं। नम्बर ५-जो मादक (नग्रेकारक) श्रीर हिं-भाकारक द्रव्योंको छोड़कर भोजन करते हैं वे (ह-विभेज) पितर ॥

नम्बर ६—जो जाननेके योग्य श्वस्तुके रक्षक स्रौर घृत दुग्धादि खाने पीने वाले हों वे (स्राज्यपा)

पृत दुग्धाद खान पान वाल हाव (आज्यपा) नम्बर ७-जिनका अच्छा धर्म करनेका सुखरूप

समय हो वे (सुकालिन्) पितर हैं ॥ नम्बर ८-जो दुष्टोंको दएड और श्रेष्टोंका पा-

लन करने हारे न्यायकारी हों वे (यम) ॥ नम्बर ं-सन्तानोंके अनु और सत्कारसे रक्षक

व जनक हों वे (पिता)॥

नम्बर १०-जो सन्न स्वीर सत्कारीं से सन्तानींका मान करें वे (माता)॥

नम्बर ११-अपनी स्त्री, भगिनी, सम्बन्धी ख़ीर एक गोचका तथा ख़न्य कोई भद्रपुक्त व वृद्ध हो तो उन्ह मुखको सुरुषक सुद्धाने उत्तम सुन, सुन्दर

उन सबको अत्यन्त श्रद्धासे उत्तम श्रद्धा, बस्ल, सुन्दर पानादि देकर अन्न प्रकार जो तृष्टित करना है वह श्राद्ध व तर्पण कहा जाता है॥ इति ॥

श्रव समाजी महाश्रय यहां पर स्पष्टरूपमे बतावें कि नम्बर एक १ के पितरों में पदार्थविद्या जानने वाले चाहे वह हिन्दू हों या मुसलमान या ख़गरेज,

प्रयथा सभी ही पितर होंगे वा नहीं ?॥

नम्बर २ दूसरेफे पितरोंमें अग्नि और विद्युत्
(यानी विजुली) आदि को समक्तर उससे टेलीग्राम और टलीफोन खादि काम करने व बनानेवारों
तारवास समेरह और अग्नि से रेल का श्रञ्जन तथा

और मधीन वगैरह बनाने व चलाने वाले इद्धिनि-

में पितर होंने या अन्य कोई ? वयों कि इस वक्त अ-

ग्नि और विजलीको ज्यादा समभने व काममें लाने वाले तो ये ही उपरोक्त विलायत के महाश्रय श्रीर हिन्दुस्तानके मिस्त्रो वगैरह हैं ॥ नम्बर ३ में तो श्रंयेजों के चिवाय शीर, कोई होंगे ही नहीं। क्योंकि वे ही १०० में ८८ तक पहें हुए और चायन्समे इस वक्त सबसे बढ़े चढ़े हैं कि जिन बुद्धिमानोंकी राह लेकर व उन्होंके रिवाजकी पसंद करते हुए अपनी समाजिनी लेडियोंको खंगरेजी ले-डिवॉके समान छूट चूमने फिरने खीर जलगों (उ-त्मवीं) में महस्त्रों मनुष्यों के वीच बैठने व लेक्चरारी करनेमें स्वतन्त्रता देकर हमारी भारतवीरांगना श्लोक चनातन पतिव्रत धर्ममर्यादा को तोड़ते हुए स्त्रियोंके परम लज्जारूप आभूपर्णीको अपने ही हाथोंसे खीन रहे हैं कि जिसका नतीजा अब यह निकल रहा है कि वे समाजिनी विदुषियें नियोग और विधवावि-बाह करना मंज्र करके ग्यारह ११ पति तक खश्चम करना चाहरही हैं और दूमरा खमम तो बहुतेरी खान्दानी समाजिनी विधवालों ने किया है विस्क संडित तुलसीरामादि समाजी उपदेशकों ने तो इस निन्दित, व्यभिचाररूप नियोग वा विधवाविवाह पर और भी जोर लगाकर पचकन्याचिर्चादि * छोटे कोटे ट्रैक्ट रचकर मसिद्ध करते हुए उन तप्त वि-दुचियोको मसन्न किया है। बाह ! वाह ! ! ये ही ती

इन आर्थ्याभाषिथों के धर्म हैं !!! अफ्षोस ! स्रीर स्रीर लज्जा ! हे प्रभो ! हे नाय : तू ही भारतवी-रांगनाओं के पतिव्रतधर्म व सनातन आर्थ्यमर्थादाकी रक्षा कर ॥ अस्तु ॥

नम्बर ४ में शायद डाक्टर ख़ीर हकीम ही होंगे। क्योंकि वही लोग ख़ीयिध जानते व दूसरों को ख़ीयिधयें देकर ख़ाराम करते हैं॥

नम्बर ५-में बरावगी, वैष्णव, श्रेव यह होंगे।
क्योंकि इन लोगों के बराबर हिंगाकारक मांच श्रीर
मिदरा श्रादि मादक द्रव्यों से ज्यादा परहेज दूसरों
को नहीं होता॥

नम्बर ६ में तो सम्पूर्ण संसार ही पितर होगा क्योंकि घी दूध सब ही खाते हैं। विलक भंगी च-मार ख़ादि ख़ौर पशु भी दूध पीते हैं। इसिलये घी ख़ौर दूध खाने पीने बाले सब ही इन समाजियोंके "ख़ाउयपा" नाम बाले पितर होंगे॥

"आजया" नाम वाल पितर होग ॥

नम्बर ९ के पितरों में चिर्फ अमीर लोग ही
होंगे। क्योंकि उन्हींका मुखरूप अच्छा चमय जाता है
और नम्बर ६ में तो चिवाय राजाके कोई हो
ही नहीं चकता? क्योंकि दुधें को दण्ड देनेवाला

 इन व्यभिषार प्रचारक निन्दित पुस्तकोका मुखतीड अवाय और सद्युक्तियुक्त ख्रव्हन श्री सनातमधर्मरक्त वि-द्यावायस्पति विद्वद्वर ५० भीमसेन शर्मादि महोपदेशको के रिषत "विधवाविवाहनीमासा" और "पञ्चकन्यायरित्रा-दि" पुस्तकोर्मे देसो ॥ न्यायकारी राजा ही हो सकता है। अब कहिये कि स्वामी जी के लेखानुसार तो संसारभर चाहे कोई जाति हो स्नाप का पितर सर्घात् पिता हुसा स्नीर पुत्र का नाम ही न रहा क्या यह बात यथार्थ है? और इसको छाप मानते हैं कि नहीं। छगर मानते हैं तो वस खबरदार हो जाइये? व झाजसे रिश्तेका नाम मिटा दीजिये क्योंकि जाहिरा देखनेमें स्नगर्चे वह आपका भाई या भतीजा या लड़का है या कोई दूसरी कम कीम है परन्तु उस ने भी दूध पिया है व अभीतक दूध पीता होगा आजरे उस को पिता ही कहिये और फिर अगर आप के समाजियों में से किसी को कोई जाति जंच नीच भली बुरी गाली दे या मारबैठे तो इस का बुरा न मानिये क्यों कि वह भी शायद स्वामी जीके लेखानुसार किसी कि-स्मके वितरीं मंसे आपका वितर जरूर ही होगा और कदाचित् अगर और किसी नम्बर में न भी छाया तो द्रध पीने वाले पितरोंमें तो ख़वश्य ही ख़ावेगा सिवाय इसके अब किसी आदमीकी ताबेदारीमें व-ल्कि जुतातक उठानेमें खापको परहेज न करना चा-हिये क्योंकि संसार में पितृमेवा ही मुख्य * धर्म है

हिये क्योंकि संसार में पितृसेवा हो मुख्य क धर्म है

+ बाह! स्थामोजीने क्याही अच्छा (जीवित कि
तरोका) आहु तर्पल कराया। धन्य भाग्य है उन आधुनिक आर्थ्योंके कि जो सम्पूर्ण संसारभर के मनुष्योंको अ-

स्रगर स्राप इतने पर कहैं कि पितृशंब्द्वे पिता का सर्य नहीं है तो स्राप ही किहवे क्या होगा ? जरा

स्वामी जीका लेख सत्यार्यमकाश पृ० ८८ पंक्ति २३ वा उन्हींका यजुर्वेदभाष्य अध्याय १८ को देखली जिये। अग्र १४-स० प्र० ५०० के "धनवन्तरये स्वाहा।

अञ्च १४-स० प्र० पृ० १०० में "धनवन्तरये स्वाहा। सहस्रावापृचिवीभ्यां स्वाहा। ॐ सानुगायेन्द्राय नमः।

सहस्थानापृथिवास्या स्वाहा । अ वानुगायन्द्राय नगर। स्रो३म्-चानुगाय यमाय नमः । स्रो३म्-वनस्पतिभ्यो नमः । त्रिये नमः । भद्रकाल्ये नमः । दत्यादि लि-खकर कहा है कि रेती वा पृथिवी ही पर पत्र विद्या-

कर उन पर पूर्विदिशादिके क्रमानुसार उपरोक्त मंत्र पढ़कर अन्नके भाग यानी याम रक्खे, पीछे जो कोई अतिथि हो उम को खिला देवे और नमक मिला-हुआं अन्न अर्थात् दाल भात रोटी शाक वगेरह उ-

हुआं अन्न अर्थात् दाल भात रोटी प्राक वंगैरह उ-ठाकर (६) छै भाग पृथिवीमें धरे ॥ इति ॥ े है प्रिय महाययो ! अव जिद्द और पत्तपात कें पर्दे नेवों से हटाओ और अपने उपदेशकों से पूडो

पर्दे नेंडों से हटाओ और अपने उपदेशकों से पूबो कि स्वार्व द० जीने इन उपरोक्त मन्डोंका अर्थ स्व- एतया क्यों नहीं लिखा ? क्या इस में कोई भेद है क्योंकि और जगह तो स्वाभी जी ने एक ग्रन्द भी

पना पिता माता समकक्षर उनका अत्यन्त प्रेम य अहारी आहु तर्पण करते हैं। परन्तु न मालूम कि वह समाजी अ-पनी खियोको (स्वा० द० रचित नम्बर ६ के "नाज्यवा" माम बाले पितरोमें समकते व मानते हुए भी) क्या मा-नेंगे वा कहेंगे अर्थात हुए पी राने के कारण अप्रथ्य ही

दम शपनी खियोको पिन-मन्ता में निर्नेते ॥

(43) व्यर्धनहीं छोड़ा है फिर यहां अर्घीका क्यों भोजन करगये ? क्यों सादव ! इन भागोंसे क्या प्रयोजन हे ? म्राप तो विद्वानींका नाम देवता कहते हैं फिर यह भाग किसके ?क्षा वनस्पति और ल्इमी रोटी खाती है या पृथिवी खाने जाती है? ई्या मूर्तिके सामने तो भीग रखनेमें आप को बड़ा होता है और आप पृथिवी जड़ पदार्थको भीग रखते हैं यह क्या सात है जीर फिर अनुवर्धे (लश्कर व केना) स-हित इन्द्र, वरुण, यम इत्यादिके नानोंने रखना और उन को भाग देना यह तो आप सनातन कया ले क्षेठे, खगर पुरानी नहीं है तो किह्ये यम का नाम महां भी हाकिम ही का होगा या नही ? सीर जब गागद वह अनुवरी के सहित आजावेंगे तब कहिये गरीवका क्या हास होगा उस का तो एक हो दिन मे दिवाला नियालता है फिर ये रोज २ का नियम प्र १५-माप तो विद्वानी को ही देवता कहते कहांतक चलेगा ॥ हैं फिर कहिंवे यह भद्रकालो, बनस्पति, जा भए।

हैं फिर कहिंगे यह महकाला, जनरवात, जा नवर इत्यादि भी काई विद्वान् घर र फिर्ने वाल हैं जि-इत्यादि भी काई विद्वान् घर र फिर्ने वाल हैं जि-नहें पृथ्व र भाग देने को बतानाया है, जीर जब वि-द्वान् ही देवता हैं तो यह पन्द्रह सोलह नाम जल-द्वान् ही देवता हैं तो यह पन्द्रह सोलह नाम के साथ हदा जलहदा क्यों, क्या उन विद्वानों के नामके साथ यह भद्रकाली वनस्पति इत्यादिका विश्वानों से रहा है सिवाय इनके इन पन्द्रह सोलह विद्वानों को रोज रोग कहातक बोई खिलाविमा इस पर जगर जाय कहें कि एक २ ग्राम निकालें तो कहिये कि क्या वे एक ग्रामने मन्तुष्ट हो सकते हैं कभी नहीं! सगर आप कहें कि ये ईखर के नाम हैं तो हम कहते हैं कि ईखर एक है एक ही भाग निकालना योग्य है और अगर आप कहें कि उनके अनन्त नाम हैं ती नामान्सार भाग भी अनन्त होना चाहिये फिर ये पंद्रह गोलह ही क्यों ? स्रोर स्रापका ईश्वर निरा-कार है फिर निराकार ईश्वर कैंग्रे इन गाकार प-दार्थी को खावेगा क्या निराकार ईखर को पाञ्च भौतिक प्राणीदी तरह भूंख लगती है ? यदि नहीं कहो तो फिर ये ज्ञापके दिये सब भाग व्यर्थ हैं? अगर्चे हां कही कि ईखर हमारे इस भक्ति को व्या-पक रूप से देखकर प्रसन्न होता है तो ख़ब ख़ाप ही फैंगला करो कि हम मनातनी फ़ौर खाप ममाजि-थों में पक्के (कट्टर) मूर्त्तिपूजक कौन हुए ? प्रश्न १६-(ल्राम्। श्विक्ताः पितरश्वप्रीणिता एका क्रिया द्वर्धकरी मिसद्धा) व्याकरण महाभाष्य के इस प्रमाण से भी मृत पितरोंका तर्पण करना सिद्ध है। तब ऐसे प्रमाण वेदोक्त होने पर भी मरों के थाद्ध तर्पण मानने में तुम क्यों हिचकिचाते हो। क्या इमने मृत पुरुषों के श्राद्ध तर्पण की चिद्धि में बेदादि के जो अनेक प्रमाण दिये हैं उनके लिये तुम्हारा कोई उपदेशक वा पण्डित हाय में वेद पुस्तक लेके अपय कर कह सकेगा कि मृत श्राद्धके सिये ये **फत्य २ प्रमाण नहीं हैं** ॥

प्रश्न १९-(तृतीयाह प्रद्योरिति यस्यां पितर सामते सथवं० १८। २। ४८) यहां में जपर प्रदाी नामक तीवरा लोक है जिस में पितर लोग रहते हैं। मो क्या तुम्हारे जीवित पितर कहीं आकाश में लटका करते हैं। श्रीर मंत्रमें कहे वे ही पितर हैं जिन के लिये ग्राह्म तर्पण किया जाता है। तब वया इससे जीवितों के ग्राह्म माननेका खरडन नहीं होता ?॥ प्रश्न १८-सिद्धान्त थिरोमणि पुस्तक को स्वा० दं ने प्रामाणिक माना है उसमें लिखा है कि (ततः श्रेषाणि कन्याया यान्यहानितुषोडग । क्रतुशिस्ता-नितुल्यानि पितृभ्योदत्तमसयम् ॥) वया यह सन्या के सर्घ्य में होने वाले कनागत बाह्रों के लिये आ-र्ष प्रमाण नहीं है ?। प्रश्न १८-व्या तुम लोगों ने यह मिच्या कृतर्क नहीं किया है कि राजा कर्ण से चलने के कारण कर्णागत कहाये फिर कनागत अपभंश हो गया। इस से कर्ण राजा के पहिले कनागत श्राह नहीं थे। क्योंकि जब सिद्धान्त थिरोमणि के प्रमाणा-नुसार कन्यागत शब्द से कनागत हुआ कनागत श्राद्ध सनातन अनादि काल से बिद्ध होने पर तु-म्हारा कृतर्क मिथ्या चिद्ध क्यों नहीं हो गया। क्या अपनी ऐसी २ ऐसी २ मिडवा कल्पनाओं का निर्मल खर्डन ही जाने पर शब भी लिजित नहीं होगे ? ॥

प्रश्न २०-(श्राद्धे घरदः । पाo ४।३। १२ ॥ ম-रदि भवं छारदिकं ब्राह्म) पासिनि आचार्य के व्याकरण का यह मुच है। अर्थ यह है कि शरद् चतुनाम कार्तिक मे हीने वाले श्राद्ध शारदिक कहाते हैं। यहां अन्य ऋतुन्भें के ब्राह्में का विचार कोड़ के शरद् ऋतु के खाम श्राह्मों का अमाण होने से पया इन कनागतों का प्रचार पाणिनिः आचार्यसे भी पहिले खति पाचीन कालने चला निद्ध नहीं हैं।। मश २१-यदि तुम्हारा यह मत है कि पुत्र के दिये श्राद्ध का फल पिता को नहीं पहुंच सकताती-मृतानामिहजन्तूनां, श्राद्वचेत्र प्रिकारणम् । जीवतामिहजन्तूनां, वृथापाथेयकल्पनम् ॥ मरे हुए प्राणियों को यदिः ब्राद्ध का फल ,मिल चकता है तब जीवित मनुष्य जब मुचार्फिरीमे जावे

चता है तव जीवित मनुष्य जब मुमाफिरीमें जावें तब जीवित मनुष्य जब मुमाफिरीमें जावें तब घर के मनुष्य ग्राह्म द्वारा उमकी तृष्ति मार्गमें क्यों नहीं कर चकते। इम नास्तिक चार्विके ग्रीर तुम्हारे मत में क्या भेद है ? यदि कुछ भेद नहीतों तुम भी नास्तिक चिह्न क्यों नहीं हुए ?

जन्मान्तर मे ब्राह्म तूर्पण का फल मिलने का कीई
प्रत्यक्ष प्रमाण वा उनके हायुकी रमीद नहीं जाती
तो फल पहुंचता है यह कैसे मान लेखें। तर्व तुमसे
पूजा जाता है कि पपने किसे शुभाऽश्रुभ कमों का
फल जन्मान्तर में जपने की मिल जाता है इस में

क्या प्रमाण है ! क्या द्समें प्रत्यक्ष प्रमाग वा रसीद दिखा सकते हो ? जब नहीं दिखा सकते तो यहां

भी चार्वीक नास्तिक का मत (ऋगुंकृत्वा घृतंपि-येत्) क्यों नहीं मान लेते हो ? ॥ प्रश्न २३ तुम कहते हो कि सरजाने पर अन्य के किये कर्म का फल अन्य को नहीं पहुंच सकता

ती यदि कोई राजां रईम द्यालाख रुपयों का कि-ची खाउँ के नाम वा सभा के नाम वसीयत नामा

कर जावे कि इस धन से अनावालय, सदावंस वा पाठणाला स्नादि धर्म के समुक २ काम किये जा-या करें, सीर वे काम ठीक र वेसे ही हों तो क्या उन कामी से होने वाले उपकारी का फल उस धन दाता की जन्मान्तर में नहींनिमलेगां ? पदि कर्ता-

भीको मिलना कही तो उन का कमाया धर्न नहीं है स्रीर जिमने वसीयत नामा किया उसको फर्ल न मिले तो क्या रेसा पुरुष का काम निष्फल होगा? फल पहुंचना मानना पड़ा तो उसी कायदे से आ-.... प्रमं करनेके लिये पिता सपने पुत्रको धनादि स्नादि धर्म करनेके लिये पिता सपने पुत्रको धनादि मर्वस्व सी पता है तव पुत्र कृत म्राह्मादि का फल

पिता की क्यों नहीं मिलेगा?॥। प्रम २४ – जर्ब कि (ज्ञात्मार्वे पुत्रनामाचि) (ग्रात्मावेजावते पुत्रः) इत्यादि मुति श्रीर (ग-भीभृत्वेहजायते) (भार्यापुत्रःस्वकातन्ः) इत्यादि इसृतियों में पुत्र से पिता का समेद वा एकता दि-्ट है तब तुम फूट रूप भेद वा सन्य २ होने का भगड़ा क्यों लगाते ही !

उपसंहार में निवेदन

श्रीवर परम पूर्वनीय श्रात्वर प्रिय मूदेव ब्राह्मणी के चरणारविन्दों में सयिनय प्रार्थना यह है कि वे क्रवया इस कराल विश्विकाल समय का ठीक विचार करके अपने बाल-को का वेदानुकूल संस्कार कराकर उन्होंके पूर्ण ब्रह्मचर्यकी रता व पालना करने के लिये ब्रह्मचर्घादि आध्रमों में भेज कर निज सातृ भाषा संस्कृत बिद्या का पूर्णतया अध्ययन (;श्रम्यास) कराने में दिल व जानसे कोशिय क्रें। जिससे: कि वे वालंक सुशितित होकर कम पूर्व कर्मकाग्छ -उपास-ना खीर चान रूपी अमूल्य रहीं से जड़ी हुई तेजीनय स्फ-दिक मालाको धारण करके सदाचार रूपी ज़िरह (कवच) पहिनकर और ब्रह्म बिद्या रूपी संपूर्ण के य नाशक अस लेकर वर्णात्रम धर्मानुसार, अशिवित अनिमन सुतर्कवादी युवको के महामीह रूपव सनातन सन्मार्ग मे गिराने वा-ले शतुकी की निर्मूल करते हुए अवयवी (अंग) रूप च-न्निय-वैर्यादि द्वारा वेदोक धर्न यानी वेदोक देव-पिट्या-दि प्रजी का विधि पूर्वक ठीक र प्रचार कराकर यीच ही इस भारत भूमि यांनी भारत माता का गीमाग्य बढावें और सनातन धर्म को रक्षा करें !!! को तत्वत-इति शान्तिः ३ ॥ ः सु० ब्राह्मणो का दास र्भ गाँउ निवेदक-मोकुलचन्द्र ॥ ठठा ॥ ब्रत्तमान स्थान करांची (सिंधु) ॥ समाप्तम् ॥

नवीन पुस्तकों की सूचना।

१-ग्राद्धिपतृमीमांसा-पद्म पुस्तक देवनागरी क्रजर श्रीर हिन्दीभाषामें छपा है। इसमें वर्त्तमान श्रार्थं समाजियों के जितने (स्राहुव पितृयज्ञ) कर्ने में चन्देइ स्रयवा स्राज्ञेप होते हैं उन सर्वोक्ता प्रश्नोत्तरक्रपमें श्रत्यन्त प्रवत प्रमाण तथा चट्युक्तियों से ऐसा निवारण किया गया है कि जिनको एक-बार भी आदिसे अन्ततक पढ़नेसे थोही बुद्धि वाला भी आर स्तिक जन ठीक समभ्र सकता है कि (श्राहुव पितृयज्ञ किस कर्मका नाम है, इसका रहस्य क्या है और वेट्रिंट् सच्छास्त्री

में यह कर्म किनका ऋर्यात् जीवितोंका वा मृतपितरोंका द-र्शित है ? । पुस्तककी साईज १८४-२२ है ॥ [वेदसंचाविचार] – इस पुस्तकर्मे वेदादि ग्रन्थ और

निरुक्तादिने ब्राह्मणग्रन्थों का वेदत्व सिद्ध किया है। तथा आर्यसमाजियों के इसके विषद्यमें दिये प्रमाणों का सरहन है मू०)॥ पुस्तक नागरी भाषामें है।।

.(३)-[आधुनिक महर्षिकी पोल)-यह ट्रैक्ट श्री १००८ परमपूष्य जगत्गुरुश्रीद्वारकाशारदापीठाघीशस्त्रा-मी शङ्कराचार्यजीके सम्मति पत्र समेत देवनागरी अत्तर हि-

(वर्तमान स्नार्यस्मन्योंके ऋषि गुरुजीका संस्कृत स्याकरण में चत्यववत्तार्मे (प्रचात् उनके चत्यवादी होनेर्मे) तथा उनकी

ये ?। मृल्य)॥ हाकसर्च ऋलग ॥

पाठशाला सुम्बई वाजार करांची चिन्ध वैद्यराज नेठ मृलवन्द्र (साध) श्रीगिरिधारीजीके

मन्दिरके पास ठट्टा---सिम्प

न्दीभाषामें खपाया गया है । इस में स्वा० द्यानन्द्सरस्वती स्वरचित ग्रन्थोंके पूर्वापर विरोध द्वानेमें खुब ही पोल खोली व दिखायी गई है कि वह स्वामीनी व्याकरणमें कैसे विद्वान

मिलनेका पता-सेक्रेटरी समातनपर्म मदहलान्तर्गत गीता-